DASHĀVATĀRA IN LITERATURE AND ART

साहित्य एवं कला में दशावतार

डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2002

शोध-पर्यवेक्षक
डॉ0 हरि नारायण दुबे
रीडर
प्राचीन इतिहास, संस्कृति
एव पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधकर्ता
सतेन्द्र सिंह
प्राचीन इतिहास,
संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
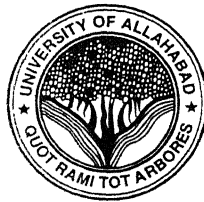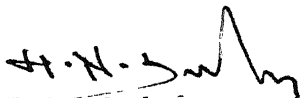
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
सेण्टर ऑफ एडवान्स स्टडी
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

CERTIFICATE OF THE SUPERVISOR

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the work entitled "Dasavatara in Literature and Arts"is a piece of Original Research work done by **Mr.** Satendra Singh under my guidance and supervision for the degree of Dr. of Philosophy of Department of Ancient History University of Allahabad and that the candidate has put in the required attention in the department to the best of my knowledge and belief the thesis:-

i) embodies the work of candidate of himself ,

ii) has duly been completed,

iii) fulfill's all the requirements relating to the 'D.Phil' degree of the Allahabad University is upto the standard both in respect of contents and language for being referred to the examiners.

H.N. Dubey

(Dr. ~~H.N.~~ Dubey)
Reader
Ancient History Deptt.
Allahabad University

पूर्व पीठिका

अवतारवाद भारतीय संस्कृति में अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" में पूर्ण विश्वास रखने वाली वैदिक-पौराणिक मनीषा ने ऋत से लेकर लोकजीवन तक सम्पूर्ण व्यवस्था को जिसे गीता में मोटे तौर पर "धर्म" कहा गया है को सुचारू रूप से संचालित एवं व्यवस्थित करने के लिए तथा लोक कल्याण के लिए परमेश्वर के द्वारा समय-समय पर अवतार लेने का दर्शन प्रस्तुत किया है। ईश्वर सर्वत्र और सभी जीवों में व्याप्त है ऐसा विश्वास प्रस्तुत करते हुए प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अनेक रूपों में अवतार ग्रहण करते हुए वर्णित किया गया है।

विष्णु के दशावतार रूपों का वर्णन प्राचीन भारतीय वाङ्मय में विशद् रूप से निरूपित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में भी कुषाण युग तथा उसके उपरांत मध्ययुग एवं बाद तक विष्णु के दशावतार रूपों को बहुतायत में मूर्तित करने की परम्परा प्राप्त होती है। इन साहित्यिक उल्लेखों तथा मूर्तियों को देखकर विष्णु के दशावतार रूपों का गहन अध्ययन एवं शोध की महत्ता बढ़ जाती है। अभी तक विष्णु के दशावतार परिकल्पन तथा मूर्तन पर कोई शोधकार्य नहीं हुआ है। अस्तु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस दिशा में अध्ययन का एक लघु प्रयास है।

शोध पर्यवेक्षक गुरुप्रवर डा० हरि नारायण दुबे जी ने शोध प्रबन्ध को पूरा करने में पग-पग पर मेरा मार्गदर्शन किया है अतः मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। संपूज्य आचार्यगण प्रो० विद्याधर मिश्र, प्रो० ओम प्रकाश, डा० आर० पी० त्रिपाठी, डा० जी० के० राय, डा० जे० एन० पाण्डेय, डा० जे० एन० पाल, डा० रंजना बाजपेई, डा० ओम प्रकाश श्रीवास्तव, डा० यू० सी० चट्टोपाध्याय, डा० ए० पी० ओझा, डा० पुष्पा तिवारी, डा०

अनामिका राय, डा० हर्ष कुमार, डा० एस० के० राय, डा० प्रकाश सिन्हा, डा० देवी प्रसाद दुबे, डा० चन्द्रदेव पाण्डेय के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर मेरा उत्साहवर्द्धन किया है।

शोध प्रबन्ध लेखन में स्थान-स्थान पर उद्धृत उन समस्त विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी कृतियों एवं विचारों से सहायता लिए बिना शोध प्रबन्ध पूरा नही हो सकता था। मैं अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ आर्ट स्टडी गुड़गांव हरियाणा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिनके पुस्तकालय एवं छायाचित्रों से शोध प्रबन्ध लेखन में बड़ी सहायता प्राप्त हुई है।

मैं अपने जिलाधिकारी (सीधी, म० प्र०) श्री एस० एन० मिश्र का विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर शोधकार्य पूरा करने के लिए हर प्रकार की सुविधा एवं सहायता प्रदान की है।

संपूज्या माता श्रीमती रामश्री देवी एवं पिता श्रीमन्ना सिंह जी से ही मेरा शैक्षणिक जीवन संचालित रहा है अतः मैं उनके चरणों में नतमस्तक हूँ। धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमलता सिंह तथा अनुज श्री पुष्पेन्द्र सिंह का मुझे सतत् सहयोग मिला है, अतः मैं उनके प्रति साधुवाद ज्ञापित करता हूँ।

22.12.2001

सतेन्द्र सिंह

शोध छात्र

प्राचीन इतिहास,

संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद।

विषयानुक्रम

अवतारवाद की अवधारणा तथा विष्णु का दशावतार परिकल्पन

अवतार शब्द अव उपसर्ग तृ धातु घञ प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ होता है– उदय ऊपर स्थान से अथवा उतार नीचे की ओर अथवा देवता का भूमि पर अवतरण अथवा जन्म लेना या पदार्पण।[1] अवतरणम् अवतारः अर्थात् उच्च स्थान से नीचाई वाले स्थान पर उतरना 'अवतार' कहा गया है। भगवान का बैकुण्ठ धाम से मानव अथवा जीव-जगत के कल्याण हेतु अथवा लीला हेतु भू-लोक पर अविर्भाव अथवा अवतार को भारतीय मनीषियों ने 'अवतार' कहा है।[2] महाभारत के हरिवंश पर्व में ईश्वर के 'अवतार' के स्थान पर 'आविर्भाव' शब्द का प्रयोग किया गया है। सामान्यतया 'अवतार' का अर्थ यह निकाला गया है कि ईश्वर अथवा विष्णु का अपना अदृश्य 'निर्गुण' रूप त्यागकर किसी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भौतिक अथवा दृश्य 'सगुण' रूप धारणा करना अथवा रूप बदलना। अवतारवाद की धारणा तथा प्राचीनता को लेकर अनेक मत प्रतिपादित किए जाते हैं। अधिकांश विद्वान इस मत के पोषक दिखते हैं कि सभवतः भक्ति एवं अवतारवाद की धारणा साथ-साथ विकसित हुई होगी। सामान्यतया हमें भक्तिवाद के उदय के पूर्व अवतारवाद की

---

1. आप्टे, वामन शिवराम : संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, प्रा० लि०, दिल्ली, 1989 पृ०108
2. 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।
श्रीमद्भगवद्गीता, 4.8

धारणा के स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होते हैं। कतिपय विद्वानों की यह धारणा असमीचीन प्रतीत होती है कि अवतारवाद की धारणा का सम्बन्ध बुद्ध की देवताओं के समान गणना होने तथा पूजे जाने के उपरान्त लोकप्रिय हुई, जिसे अवान्तर युगीन पुराणों में क्रमशः प्रतिस्थापित एवं विशेष प्रचरित किया गया। इस मान्यता को असंगत मानने के लिए हमें वैदिक वाङ्मय में प्राप्य अवतार सम्बन्धी उल्लेखों का आलोक ग्रहण करना अपेक्षित प्रतीत होता है। अवतारवाद के बीज वैदिक वाङ्मय में अनेकत्र प्राप्य हैं। सृष्टि के अन्तर्गत उत्पत्ति, स्थिति और विनाश एक शाश्वतक्रम में अथवा नियम के रूप में चलता रहता है। भारतीय मनीषा ने इस शाश्वत प्रकृति-नियमों के प्रतिनिधि देवता के रूप में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को प्रतिष्ठित किया है। सृष्टि के पालनकर्त्ता अथवा स्थितिकर्त्ता के रूप में इन त्रिदेवों में विष्णु सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। अतः इन्हीं के अवतार-ग्रहण को प्राचीन धर्मग्रन्थों में अधिक महत्ता प्रदान की गई है।

अवतारवाद का सर्वप्रथम परिकल्पन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। इसमें विष्णु के प्रथम अवतार रूप मत्स्याकारका विशद उल्लेख मिलता है।[3] अवनेजन हेतु दोनों हाथों की अंजुलि में जब मनु ने जल लिया तो उसमें एक मत्स्य आ गया और मनु से कहने लगा कि आप मेरी रक्षा कीजिए, मैं आपको प्रजा सहित प्रलय के महौघ से पार करूँगा। मनु ने उस मत्स्य का पालन क्रमशः

3. मनवे ह वै प्रातः। अवनेज्यमुदकमाजहृर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजना या हरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणो आपेदे।।१।। स हास्यै वाचमुवाद। बिभुहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्योघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयिताऽस्मीति। कथं ते भुतिरिति।।२।। स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवायो वह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भयां माग्रे विभरासि स यदा तामतिवर्धा अथ कषूं खात्वा तस्यां मा विभरासि स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रों भवितास्मीति।।३।। शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेतिथीं समां तदौहा आगन्ता। तन्मा नावमुप कल्प्योपासासै स औध उत्थिते नावमापद्या सै ततस्त्वा पारयितास्मीति।।'' शत० ब्रा०1.8.1.1-4

कुम्भ में, सरोवर में तथा बड़े हो जाने पर समुद्र में रखकर किया। कालान्तर में मत्स्य के कथनानुसार महौघ के आने पर मनु ने पृथ्वी को नाव बनाकर उसमें स्थान ग्रहण किया तथा मत्स्य के श्रृंङ्ग में पृथ्वी रूपी नाव को बाँधकर हिमालय पर जाकर शरण ग्रहण किया।[4]

शतपथ ब्राह्मण में मत्स्यावतार के अतिरिक्त कूर्मावतार[5] तथा वामनावतार[6] का भी वर्णन मिलता है। कूर्मावतार का उल्लेख तैत्तिरीय संहिता[7] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में[8] भी मिलता है। वामनावतार के प्रसङ्ग में ध्यातव्य है कि ऋग्वेद[9] में सर्वप्रथम विष्णु को तीन डगों से ब्रह्माण्ड को नापने का संकेत किया गया है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण[9] एवं छान्दोग्योपनिषद[10] में सर्वप्रथम देवकी पुत्र कृष्ण तथा तैत्तिरीय आरण्यक[11] में वासुदेव कृष्ण का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक ग्रन्थों में इन्हें विष्णु का अवतार न कहकर ब्रह्मा का अवतार बताया गया है। परन्तु अवान्तरयुगीन पुराणों में इन्हें विष्णु का ही अवतार परिकल्पित किया गया है।

विष्णु के अवतार सम्बन्धी प्राथमिक अवधारणा का मूल ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद के पंचम मण्डल में अग्नि देव की एकता मित्र, वरुण एवं अर्यमन् देवों से स्थापित मिलती है।[12] शतपथ ब्राह्मण के रचना काल तक आते-आते अवतारवाद की अवधारणा पर्याप्त विकसित हो चुकी थी क्योंकि मत्स्य,

4. वही, 1.8.1.5.6
5. शतपथ ब्रा० 7-3.3.5
6. वही, 1.2-5.10
7. तैत्तिरीय संहिता, 7.1.5.1
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.1.3.5
9. ऋग्वेद, 1-154-2 तथा द्रष्टव्य, ''इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम। समूढस्य पांसुरे। वही, 1-22.17
10. छान्दोग्योपनिषद 3.10
11. तैत्तिरीय आरण्यक, 19.1-6
12. ऋग्वेद, 5-3.1-2

कूर्म, वराह एवं नृसिंह अवतारों को प्रजापति का तथा वामन अवतार को विष्णु का परिकल्पित किया गया है।[13] उक्त ब्राह्मण में एक स्थल पर कहा गया है कि प्रजापति ने कूर्म का रूप धारण कर प्रजा की सृष्टि की।[14] उत्तर वैदिक काल तथा अवान्तर युगों में जैसे-जैसे विष्णु प्रधान देवता के रूप में पूजनीय होते गए, वैसे-वैसे उन्हें लोकसंरक्षक, धर्मरक्षक तथा सत्त्वरक्षक के रूप में क्रमशः विशेष महत्ता प्राप्त होती गई। फलतः विष्णु के व्यक्तित्व में लोकरचना, लोक संरक्षण एवं लोक विरोधी कार्य करने वाले के संहार की कल्पना जुड़ती चली गई।

''रामायण में विष्णु के वराह अवतार का वर्णन मिलता है।[15] महाभारत में विष्णु के लोक संरक्षकव्यक्तित्व को आलोकित करते हुए उनके कूर्म, मत्स्य, वामन, नृसिंह, परशुराम, दासरथि राम एवं कृष्ण आदि को उनका रूपान्तरण अथवा अवतार घोषित किया गया है।[16] ध्यातव्य है कि महाभारतकार ने उक्त अवतार-सूची में शतपथ ब्राह्मणोक्त प्रजापति के अवतार रूपों को समाहित करने के साथ-साथ विष्णु के कतिपय अन्य अवतारों का भी उल्लेख किया है।[17] इसी प्रकार हरिवंश में विष्णु के कूर्म, मत्स्य, वामन, वराह, नृसिंह, परशुराम, राम, बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का वर्णन मिलता है।''

ब्राह्मण ग्रन्थों में अवतारवाद की अवधारणा अवश्य विद्यमान थी परन्तु इस काल में इसे बहुत महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। प्रजापति, नारायण अथवा

13. दृष्टव्य, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, भाग, 17, पृष्ठ० 370-372
14. ''स यत्कूर्म नाम। एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापति : प्रजा असृजत्....। शत० ब्रा०, 7.5.1-5
15. रामायण, 2.110
16. ''वराह नरसिंहश्च वामन राम एव च।
    रामश्च दाशरथीश्चैव सात्वतः कल्कि.....।।
    महाभारत, नारायणीय, 339.104
17. द्रष्टव्य, 'इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, भाग, 17, पृ० 379

विष्णु में तत्वतः एकत्र होते हुये भी इस काल में न तो विष्णु की प्रधानता थी न ही अवतारों को पूजा जाता था। कालान्तर में तैत्तिरीय आरण्यक[18] में वासुदेव कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में सम्पूज्य बताया गया है–

नारायणाय विद्महे वायुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।।

पाणिनि के अष्टाध्यायी में एक सूत्र मिलता है– 'वासुदेवार्जु भ्यां बुञ' जिसमें वासुदेव तथा अर्जुन की भक्ति का उल्लेख किया गया है। कालान्तर में पौराणिक काल में वासुदेव कृष्ण का नारायण के साथ तादात्म स्थापित हो गया। वस्तुतः भगवान कृष्ण का विष्णु के रूप में अवतार ग्रहण करने की स्पष्ट सूचना भागवद् गीता में ही मिलने लगती है।[19] विष्णु के अवतार ग्रहण के सन्दर्भ में तथा वैष्णव धर्म में अवतारवाद की विशद् मान्यता के सम्बन्ध में भगवद् गीता एक ठोस सिद्धान्त एवं आधार की ओर संकेत करती है। विष्णु के अवतारों की संख्या– विष्णु के अवतारों को लेकर महाभारत एवं पुराणों में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये गये हैं भगवद् गीता में मूलतः विष्णु के दो अवतार रूपों का वर्णन मिलता है– (1) राम तथा (2) कृष्ण। महाभारत के शान्ति पर्व[20] में विष्णु के छः अवतारों का निर्देश प्राप्त होता है– वराह (2) वामन् (3) नृसिंह (4) भार्गवराम (5) दाशर्थि राम (6) कृष्ण। ज्ञातव्य है कि महाभारत के इसी अध्याय में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन मिलता है जिनमें विष्णु के परवर्ती दस लोकप्रिय नामों में सम्मिलित बुद्ध का नाम परिगणित नहीं किया गया है। इस पर्व में बुद्ध के स्थान पर हंस अवतार का उल्लेख किया गया है[21] पुराणों में विष्णु के स्वीकृत

18. तैत्ति० आरण्यक पाठक 10 अनुवाक् 1।
19. भागवद्गीता
20. महाभारत शान्ति पर्व अध्याय 339 77-102
21. वही 339.103-104 हंस : कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावाद् द्विजोत्तम्।
वराहो नरसिंहश्च वामनों राम एव च।।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेवच।

दस अवतारों का उल्लेख अनेकत्रः प्राप्त होता है।[22] विष्णु के कितने अवतार हुये इसमें न तो पुराण एकमत हैं न ही अन्य शास्त्र कहीं इन अवतारों की संख्या कहीं ८ कहीं १० कही १६ तथा कहीं २४ आख्यात मिलती है, किन्तु विष्णु के १० अवतार अधिकांश पुराणों को मान्य थे। अकेले भागवद् पुराण के 4 स्कन्दों में भगवान के अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न बतायी गयी है। इस पुराण के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में विष्णु के अवतारों की संख्या २२ अख्यात मिलती है। इनके नाम हैं– (1) कौमार्य सर्ग में विष्णु के सनक सनन्दन सनातन तथा सनतकुमार रूप में अवतार (2) वराह (3) नारद (4) नर-नारायण (5) कपिल (6) दत्तात्रेय (7) यज्ञ (8) ऋषभदेव (9) पृथु (10) मत्स्य (11) कच्छप (12) धनवन्तरि (13) मोहिनी (14) नरसिंह (15) वामन (16) परशुराम (17) वेदव्यास (18) रामचन्द्र (19) बलराम (20) कृष्ण (21) बुद्ध (22) कल्कि। इसी प्रकार भागवद् पुराण के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में विष्णु के जिन अवतारों का वर्णन किया गया है उनमें वराह, यज्ञ, कपिल, दत्तात्रेय, नर नारायण, पृथु, ऋषभ, हयशीर्ष, हयग्रीव, मत्स्य, कच्छप, नरसिंह, गजेन्द्र विष्णु, वामन, हंस, धनवन्तरि-परशुराम, राम, कृष्ण, व्यास, बुद्ध तथा कल्कि। इस सूची में यदि हंस एवं हयग्रीव अवतारों को और सम्मिलित कर लिया जाय तो पुराणोक्त विष्णु के २४ अवतारों की संख्या पूरी हो जाती है। विद्वानों का एक वर्ग इन २२ अवतारों में से बलराम और कृष्ण को छोड़कर विष्णु के २० अवतार मानना ही समीचीन बताया है क्योंकि कृष्ण तो स्वयं विष्णु हैं परमेश्वर हैं वे अवतारी हैं। अवतार नहीं।[23] इसी प्रकार विष्णु का हंस और हयग्रीव अवतार भी कृष्ण

22. विष्णु पुराण– मत्स्य 285.6.7
    बराह 4.2, 48.17-22
    अग्नि अध्याय– 2.16
    नरसिंह अ० 36
    पद्म पुराण 6.4.13.15
23. भागवद् पुराण, 1.3

से सम्बन्धित होने के नाते परिगणित नहीं किया जाना चाहिये। भगवान् के दशम् एवं एकादश स्कन्धों में भी विष्णु के अवतारों का वर्णन मिलता है। इस पुराण के दशम् स्कन्ध[24] में विष्णु के हयशीर्ष, मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध, बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार एकादश स्कन्ध[25] में विष्णु के जिन अवतारों का वर्णन है वे हैं नरनारायण, हंस, दत्तात्रेय, कुमार ऋषभ, हयग्रीव, मत्स्य, बराह, कूर्म, गजेन्द्रमोक्षकर्त्ता, बालखिल्यों का रक्षक, इन्द्र के शापमोचक, देव स्त्रियों के उद्धारक, नृसिंह, वामन, राम, सीतापति, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि। ऐसा लगता है भागवद् पुराण के रचनाकाल तक जैसा कि उपर्युक्त सूचियों के नामों में अन्तर देखने को मिलते है विष्णु के अवतारों की कोई ठोस एवं निश्चित परम्परा नहीं बन सकी थी तथा उनके अवतार रूपों की तरल अवस्था विद्यमान थी। भागवद् पुराण में विष्णु के असंख्य अवतारों की परिगणना की गयी है अतः पुराण काल में अवतारों की संख्या 10, 20, 22, 24 तक सीमित न रहकर असंख्य बताया है। (अवतारा हयसंख्येया हरेः सत्त्वनिर्धेर्द्विजा) सामान्यतया भागवद् पुराण की रचनाकाल ८वीं से १०वीं सदी के मध्य प्रतिपादित कीजातीहै अस्तु ऐसा लगता है कि विष्णु के दशावतारों की ठोस परम्परा भागवद् पुराण की रचना के बाद ही प्रचलित हो सकी होगी। अग्नि पुराण[26] तथा पद्म पुराण[27] में विष्णु के दस् अवतारों का स्पष्ट प्रमाण मिलता

24. वही दश 40.17-22
25. वही एकादश स्कन्ध 11.4.17-2
26. अग्नि पुराण– 2.16
    वनजौ वनजौ खर्वः त्रिरामी सकृपोऽकृपः।
    अवतारा दशैवैते कृष्णस्तु भगवान स्वयम्।।
27. पदम पुराण 257.40-41
    मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽय वामनः।
    रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश।।

है। इस प्रकार उपर्युक्त पुराणों में वर्णित विष्णु के दश अवतार हैं। (1) मत्स्य (2) कच्छप (3) वराह (4) नृसिंह (5) वामन (6) परशुराम (7) दाशर्थिराम (8) बलराम (9) बुद्ध (10) कल्कि। कृष्ण को स्वयं भगवान विष्णु माना गया है वे अवतारी है तथा उपर्युक्त दस अवतार उन्हीं से उत्पन होते हैं। ऐसा लगता है कि बारहीं शती ई० तक आते-आते विष्णु के उपर्युक्त दस अवतार भारतीय परम्परा में ठोस आधार बना चुके थे तथा कला एवं साहित्य दोनों में इन्हीं अवतार रूपों का निरूपण किया जाने लगा था। बारहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध कवि जयदेव[28] के 'गीत गोविन्द' नामक ग्रन्थ के प्रथम सर्ग में विष्णु के दस अवतार रूपों की विस्तृत स्तुति की गयी है। इसी प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी के ही एक अन्य कवि क्षेमेन्द्र[29] ने 'दशावतार चरित्र' (1066 ई०) महाकाव्य की रचना की थी। विष्णु के दशावतारों का उल्लेख विशद् रूप से मत्स्य[30] अग्नि एवं पद्म पुराणों के अतिरिक्त लिंग पुराण[31] वराह पुराण[32] तथा गरुण पुराण[33] में भी मिलता है।

दशावतार परिकल्पन सम्भवतः कुमारिल भट्ट के उपरांत ही सुनिश्चित हो सका था क्योंकि उनके तन्त्रवार्तिक 'जैमिनि सूत्र (1.3.7) में यह उल्लेख मिलता है कि पुराणों में गौतम बुद्ध आदि का चरित्र कलि के प्रसंग में प्राप्त होता है। अतः उनके धर्म सिद्धान्त को कौन सुनेगा। कुमारिल भट्ट के इस कथन से यह संकेत मिलता है कि उनके समय में कतिपय पुराणों में बुद्ध को कलि प्रसंग में रखने के साथ-साथ धर्म की निन्दा की गयी है। इससे यह स्पष्ट होता

28. दृष्टव्य उपाध्याय बलदेव पुराण विवर्स पृष्ठ 175
29. दृष्टव्य उपाध्याय बलदेव संस्कृति साहित्य का इतिहास पृष्ठ 222
30. मत्स्य पुराण 285.6-7
31. लिंग पुराण 2.48.31-32
32. वराह पुराण 4.2 तथा 113.42
33. गरुण पुराण 1.86.10-11, 2.20.31-32

है कि कम से कम उनके जीवन काल में अर्थात् सातवीं, आठवीं शताब्दी में बुद्ध को विष्णु का अवतार मानने की परम्परा प्रचलित नहीं हो सकी थी। इस प्रकार विष्णु के दशावतार की कल्पना आठवीं और एकादशवीं शताब्दियों के मध्य ही विकसित मानी जा सकती है। क्षेमेन्द्र ने जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है। 1066 ई० में दशावतार चरित महाकाव्य की स्थफना की थी जिसमें बुद्ध को भी विष्णु का एक अवतार माना गया है। इसी प्रकार अपरार्क ने जिनका समय ग्यारह सौ तथा ग्यारह सौ तीस ई० माना जाता है। जिन्होंने याज्ञवल्क स्मृति की टीका में मत्स्य पुराण का एक लम्बा उद्धरण स्पष्ट किया है जिसमें बुद्ध सहित विष्णु के दस अवतारों का नाम निरूपित मिलता है। इसी प्रकार ग्यारह सौ पचास ई० के लगभग जयदेव ने 'गीत गोविन्द' काव्य में विष्णु के नवें अवतार के रूप में बुद्ध की स्तुति की है। इस प्रकार दसवीं शताब्दी ई० तक विष्णु के दशावतार रूपों की व्यापक लोकप्रियता प्राप्त मानी जा सकती है।

अवतारवाद एवं विष्णु

विष्णु के अवतार सम्बन्धी भावना का बीज ऋग्वेद में प्राप्त होता है। इस वेद के पांचवें मण्डल में अग्नि की एकता मित्र, वरुण एवं अर्यमन् से की गयी है।[34] इतना ही नहीं अन्यत्र इसी वेद में देवता का समीकरण देवत्तर योनि से भी स्थापित किया गया है। ऋग्वेद में अवतार का सम्बन्ध पुनर्जन्म से भी स्थापित किया गया है। इस वेद के मंत्रों में पुनर्जन्म अथवा आत्मा के संसरण जैसी मान्यता को यत्र-तत्र देखा जा सकता है उदाहरणार्थ– इन्द्र अपनी माया के द्वारा अनेक रूपों को धारण करते हुये वर्णित किये गयें हैं।[35]

---

34. ऋग्वेद 5.3.1.2

35. वहीं, 3.5.3.8 ''रूपं रूपं मघवा बोभवीति
माया कृष्णानस्तन्वं परि स्वाम्।
त्रिर्यद् दिवः परिमुहूर्तमागात्
स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा।।''

इसी प्रकार के कई अन्य मंत्रों में इन्द्र को माया के द्वारा भिन्न-भिन्न रूप धारण करने वाला बताया गया है। ऋग्वेद में कथित माया शब्द अनुवर्ती साहित्य में वर्णित माया के अर्थ में भिन्न अर्थ रखता है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद में वर्णित माया का अर्थ शक्ति, ज्ञान अथवा अत्मीय संकल्प आदि किया है। ऋग्वेद[36] में एक मंत्र में इन्द्र को ऋंगवृष के पुत्र का रूप धारण करने वाले वाला कहा गया है। जिसे अवतारवाद का वैदिक बीज रूप स्वीकार किया जा सकता है। भागवत् पुराण के अनुसार ऋग्वेद के दशम् मण्डल में वर्णित पुरुषसूक्त में पुरुष को भगवान का प्रथम अवतार स्वीकार किया गया है। इस प्रकार यह पुराण पुराणोक्त विष्णु के नानावतारों का मूल ऋग्वेदोक्त इसी पुरुष रूप को मानता है।[37]

वस्तुतः अवतारों का आरम्भिक संकेत स्पष्ट रूप से शतपथ ब्राह्मण में मिलता है इस ब्राह्मण ग्रंथ में वराह[38] मत्स्य,[39] कर्म[40] तथा वामन[41] अवतारों का उल्लेख उपलब्ध होता है। उक्त ब्राह्मण में वराह को पृथ्वी का पति अर्थात् प्रजापति कहा गया है। ज्ञातव्य है कि प्रजापति के वराह रूप धारण करने का वृत्तान्त तैत्तिरीय ब्राह्मण[42] काठक संहिता[43] तैत्तिरीय संहिता[44] एवं तैत्तिरीय

---

36. ऋग्वेद 8.17.13
37. भागवत पुराण 1.3.1. तथा 1.3.4

    जगृहे पौरुषं रूपं भगवान महदादिभिः संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया।।

    एतन्नानावताराणां निधनं बीजमब्ययम्। यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः।।
38. श० ब्रा० 14.1.211
39. वही 1.8.1
40. वही 7.5.1
41. वही 1.2.5
42. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.1.3.6
43. तैत्तिरीय संहिता 7.1.5.1
44. काठक संहिता 8.2

आरण्यक[9] (10.1.18) में प्राप्त होता है।

आदि कवि बाल्मीकि ने रामायण[45] में वराह अवतार का विशद् वर्णन किया है। कालान्तर में पुराणों में विष्णु के वराह अवतार का विकसित् कथा रूप उपलब्ध होने लगता है तथा वराह विष्णु की नाना प्रकार की मूर्तियों का मूर्तन भी मिलने लगता है।

शतपथ ब्राह्मण में मत्स्य अवतार का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।[46] इस ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने ही मत्स्य का अवतार धारण किया था। आगे चलकर प्रजापति के स्थान पर विष्णु को मत्स्य का रूप धारण करने की कथा में जोड़ दिया गया।

शत्पथ ब्राह्मण में प्रजापति को कूर्म अवतार धारण करते हुये वर्णित किया गया है। ऐसा ही उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक[47] में भी मिलता है। महाभारत में कूर्मराज का उल्लेख मिलता है किन्तु इसमें कहीं भी किसी देवता की ओर निर्देश नहीं किया गया है।[48] आगे चलकर विष्णुपुराण में कूर्म को विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया।[49]

वामन अवतार का सम्बन्ध वैदिक वांङ्मय में शुरू से विष्णु के साथ जुड़ा हुआ मिलता है। ऋग्वेद में विष्णु को तीन डगों द्वारा ब्रह्माण्ड को मापने

45. रामायण 2.110

ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयं भूर्देवतैः सह।

स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्।।

46. शतपथ ब्राह्मण 1.8.1.1-4 तथा 1.8.1.5.6

47. तैत्तिरीय आरण्यक 1.23.3

48. महाभारत– ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः

गिरेरधिष्ठानमस्य भवान् भवितुमर्हति।।"

49. विष्णु पुराण 1.4.7, 9

का उल्लेख किया गया।[50] शत्पथ ब्राह्मण में वामन को स्पष्ट रूप से विष्णु कहा गया है।[51]

उपर्युक्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि मत्स्य, कूर्म, एवं वराह अवतार वैदिक वांङ्मय में मूलतः प्रजापति के अवतार माने गये हैं। केवल वामन अवतार को विष्णु से सम्बन्धित बताया गया है। इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि अवतारवाद का बीज मूलतः वैदिक साहित्य में प्राप्त होने लगता है परन्तु अवतारवाद की धारणा का वैदिककाल में व्यापक स्वरुप नहीं बन पाया था। इसके साथ ही साथ इस काल तक अवतारवाद का सम्बन्ध सामान्य रूप से प्रजापति से अधिक था एवं विष्णु के साथ गौण रूप में था। ऐसा प्रतीत होता है कि अवान्तर काल में विष्णु के व्यक्तित्व की व्यापकता के साथ तथा वैष्णव भक्ति के उत्तरोत्तर विकास के साथ वैदिक अवतारवाद की धारणा विष्णु के साथ जुड़ती चली गयी तथा प्रजापति के मत्स्य, कूर्म एवं वराह आदि अवतारों को भी विष्णु का ही अवतार मान लिया गया। इस बात की पुष्टि महाभारत के नारायणी उपाख्यान[52] एवं हरिवंश पुराण[53] में वराह अवतार को प्रजापति के स्थान पर विष्णु से सम्बन्धित मान लिया गया। अवान्तर युग में मत्स्य, कूर्म एवं वराह अवतार कथाओं को विष्णु के अवतार से जोड़कर प्रत्येक के नाम पर एक-एक महापुराण की रचना की गयी। वेदान्त दर्शन में केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की गयी है जो नाम एवं उपाधि से भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है तत्वतः भिन्न नहीं होता इस दृष्टि से विचार करने पर फादर कामन बुलके-की उस अवधारणा का खण्डन हो जाता है जिसमें प्रजापति एवं विष्णु को अलग-अलग समझने की चेष्टा की जाती है। स्वामी करपात्री जी ने रामायण मीमांसा[54] में

---

50. ऋग्वेद 1.154.2.3

51. शतपथ ब्राह्मण 1.2.5-5– 'वामनो ह विष्णुरास'।

52. महाभारत 12.336.72 तथा 12.337.36

53. हरिवंश पुराण 1.1.41

प्रजापति एवं विष्णु को अलग-अलग न मानकर तत्वतः एक ही स्वीकार किया है तथा अवतारवाद को ब्रह्म के अवतरण से जोड़ने का प्रयास किया है।

ध्यातव्य है कि पृथ्वी और प्रजापति के रूप में वराह का सम्बन्ध वैदिक कालीन था तैत्तिरीय आरण्यक[55] में इस बात को स्पष्ट किया गया है। इसमें पृथ्वी का उद्धार करने वाले वराह को काले रंग का तथा एक सहस्त्र हांथों वाला बताया गया है।[56] पौराणिककाल मे सर्वप्रथम वायुपुराण में वैदिक ब्राह्मण कालीन वराह अवतार को सर्वप्रथम प्रजापति के स्थान पर नारायण से जोड़ा गया है।[57] इस पुराण में जल में डूबी हुयी पृथ्वी को प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के निमित्त महावराह रूप धारण करके उद्धार किया था। इस वैदिक भावना को पुराणकाल में पौराणिक व्याख्या देते हुये प्रजापति ब्रह्मा को परम पुरुष ब्रह्मा को नारायण का रूप बताया। नारायण का यह रूप विष्णु का न होकर पुरुष नारायण का प्रतीत होता है जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के कई मंत्रों में मिलता है।[58] ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में कहा गया है कि सृष्टि के आरम्भ में सर्वत्र मात्र जल ही जल था।[59] इस वेद के अनुसार इस जल के अन्दर सृष्टिकर्ता तथा सृष्टि नियामक परमपुरुष विद्यमान था।[60] जल में निवास करने के कारण ही प्रजापति

54. स्वामी करपात्री जी रामायण मीमांसा– श्री काशी विश्वनाथ प्रकाशन वाराणसी संवत 2039 द्वितीय संस्करण पृष्ठ 246.47
55. तैत्तिरीय संहिता 7.1.5.1
56. तैत्तिरीय आरण्यक– 1.10.8– उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
57. वायु पुराण 6.1-15– तदा स भगवान ब्रह्मा सहस्त्राक्षः सहसृपात।।
सहस्त्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो हयतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यः स सुष्वाप सलिले तदा।
सत्वोद्रे कात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदीक्ष्य सः।
58. शतपथ ब्राह्मण– 12.3.4.1 (तथा 13.6.1.1, 13.6.2.12)
59. ऋग्वेद– 10.129.3 (तम आसीत् तमसा गूल्हमग्रे अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं)।
60. वही 10-121.1 (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्)।

का एक विशेषण नारायण माना जा सकता है। इस बात की सम्पुष्टि विष्णुपुराण[61] (ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान यथा)। इसके पुराण के अतिरिक्त मनुस्मृति[62] में भी नारायण एवं ब्रह्मा को परस्पर एक बताया गया है। विष्णु पुराण में नारायण शब्द को ब्रह्मा की ही संज्ञा बताया गया है।[63] लिंग पुराण[64] एवं पद्मपुराण[65] में भी ब्रह्मा और नारायण को एक बताया गया है। पौराणिक भावना में नारायण ही विष्णु हैं अतः प्रजापति और नारायण एवं विष्णु मूलतः एकम्शत–''अर्थात् परमसत्ता एक है'' को स्पष्ट करते हुये एक ही देवता माने जा सकते हैं। ज्ञातव्य है कि शतपथ ब्राह्मण में ही प्रजापति के मत्स्य, कच्छप एवं वराह अवतारों को जिनका सम्बन्ध जल से था एक प्रथक देवता के रुप में परिकल्पित करने की भावना प्रतीत होती है। इस परिकल्पना का मूल ऋग्वैदिक था तथा इसका स्पष्ट विकास और रूप पौराणिक भावना में विष्णु के रूप में प्रकट हुआ।

पौराणिक धर्म में वैष्णव धर्म के विकास और प्राबल्य से नारायण विष्णु सर्वोच्च देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे इसके फलस्वरूप वैदिक अवतारवाद विष्णु के नाना अवतारों के आख्यानों से विकसित होकर एक सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। ऋग्वेद में अवतारवाद का यह रूप ''रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय'', पौराणिककाल तक आते-आते अवतारवाद

---

61. विष्णु पुराण 1.4.1
62. मनुस्मृति– 1.9, 10– तण्डमभवद् हैमं सहस्त्रांशुसमप्रमस।
    तस्मिन जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।।
    आपोनार इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
    ताः यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः।।
63. विष्णु पुराण 1.4.1
64. लिंगपुराण 1.4.51.61
65. पद्म पुराण (सृष्टि खण्ड अध्याय 3)

के रूप में निखिलशास्त्र स्वीकृत हो चुका था।

पौराणिककाल तक आते-आते विष्णु वैष्णव धर्मावलम्बियों के अनुसार सर्वशक्तिमान जनार्दन[66] हो जाते हैं तथा उन्हें ब्रह्मा विष्णु एवं शिव तीनों रूपों में देखने की परम्परा विकसित हो चुकी थी। वे ही सृष्टि, पालन एवं विनाश के मूल कारण माने जाने लगे थे। इस बात की पुष्टि विष्णु पुराण से की जा सकती है जिसमें उन्हें ब्रह्मा विष्णु एवं महेश तीनों कहा गया है।[67]

इस पुराण में भागवत् वैष्णवों के मतानुसार विष्णु ही त्रिदेव की सत्ता के मूल हैं।[68] इस पुराण में अन्यत्र कहा गया है कि पृथ्वी, जल, तेज, आकाश एवं वायु आदि पांच तत्व इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण आदि सम्पूर्ण जगत सब पुरुष रूप हैं क्योंकि विष्णु ही सब में अव्यय, विश्वरूप, तथा अन्तरात्मा बनकर व्याप्त हैं[69] भागवत पुराण में कहा गया है कि विष्णु ही अपनी योगमाया से अभिव्यक्त हुयी अपनी सत्व, रज, तम् आदि शक्तियों द्वारा सृष्टि पालन एवं संहार करते हैं[70] तथा माया का ही आश्रय लेकर संसार का व्यवहार चलाते हैं।[71] पौराणिक परिकल्पना में कल्प का अन्त होने पर सारा संसार जलमग्न हो जाता है। जलमग्न संसार में शेषसैय्या पर लेटकर भगवान विष्णु परमेश्वर के रूप में विश्राम करते

---

66. विष्णु पुराण 1.2.66 स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः
सृष्टि स्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णु शिवात्मिकाम्।।
67. विष्णु पुराण 1.2.67– सृष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च
उपसंह्रियेत चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः।।
68. विष्णु पुराण– 1.7.46– संस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थिति संयमान।
69. वही– 1.2.67-68
70. भागवद् पुराण– एकःस्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययाऽऽत्मन्नधियोगमायया: 3.21.19
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवान स्वशक्तिभिः।।
71. वही 3.21.21. स्वमायया वर्तितलोकतत्रम्।

हैं। परमेश्वर विष्णु से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहते हैं जो विष्णु का प्रथम शयन एवं निवास है। विष्णु पुराण के अनुसार इसीलिये उन्हें नारायण कहा जाता है।[72] भगवान के अवतार धारण करने के विषय में पुराणकारों में निम्न मत प्रतिपदाति किया है–

(1) लोकप्रिय सामान्य मत– मत्स्य पुराण में इस बात का निर्देश किया गया है कि भगवान अपनी दिव्य मूर्ति का परित्याग कर ही पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। यह अवतरण चाहे नया जन्म धारण करने से हो अथवा रूप परिवर्तन से हो।[73] आचार्य बलदेव उपाध्याय मत्स्य पुराण में कथित इस मत को आदिम मानव की अवतार सम्बन्धी कल्पना अथवा विश्वास से जोड़ने का प्रयास मानते हैं।

(2) अंश अवतार सम्बन्धी मत– ब्रह्मवैवर्त पुराण में बताया गया है कि भगवान का केवल एक अंश ही अवतार ग्रहण करता है चाहे वह अर्द्धांश हो, चतुर्थांश हो अथवा अतिलघु अंश हो। इस प्रकार भगवान अवतरित अंश तथा शेष अनवतरित अंश दोनों से सृष्टि को व्याप्त करते हैं।[74]

(3) अवतारकार्य भगवान अर्द्धभाग का विलास– हरिवंश में इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि विष्णु ने अपनी मूर्ति को दो भागों में विभाजित कर दिया पहली मूर्ति स्वर्ग में स्थित रहकर कठिन तपस्यारत रहती है। तथा दूसरी मूर्ति योगनिद्रा का आश्रय लेकर सृष्टि के विषय में विचार किया करती है। यह

---

72. विष्णु पुराण– 1.4.6– आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः।।

73. मत्स्य पुराण 47.34– त्यक्त्वा दिव्यां तनु विष्णुर्मानुषेस्विह जायते।
युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशथिले प्रभुः।।

74. ब्रह्म पुराण 72.2-3– अवतारं करोत्यत्र द्विधाकृत्वाऽऽत्मनस्तनुम्।
सर्वदैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः।।
स्वल्पांशेनावतीर्योर्व्यां धर्मस्य कुरुते स्थितम्।

मूर्ति कल्प के अंत में समुद्री शैय्या से उठकर धर्मसंस्थापनार्थ आविर्भूत होती है।[75]

श्रीमदभागवद्गीता में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को समझाते हुये अवतार ग्रहण करने की मुख्य व्याख्या प्रस्तुत की है, इसमें कहा गया है जब-जब पृथ्वी पर धर्म की ग्लानि होती है तब-तब मैं (कृष्ण-विष्णु) धर्म के उत्थान के लिये, साधुजनों की रक्षा के लिये, पाप करने वाले दुष्टजनों का विनाश करने के लिये और धर्म की अच्छी प्रकार से स्थापना करने के लिये मैं प्रत्येक युग में अवतार ग्रहण किया करता हूं अर्थात् प्रकट हुआ करता हूँ।[76] गीता के उपर्युक्त निर्वचन को अवतारवाद का प्रमुख आधार माना जा सकता है। विचारणीय है कि श्रीमद्भगवद्गीता धर्म की ग्लानि से क्या तात्पर्य मानती है धर्म व्यापक शब्द है शंकराचार्य जी ने धर्म की व्याख्या करते हुये कहा है कि वर्णाश्रम आदि जिसके लक्षण हैं तथा प्राणियों की उन्नति और परम कल्याण का जो साधन है उसे ही धर्म समझना चाहिये। वस्तुतः धर्म से तात्पर्य यहाँ प्रकृति नियमों के स्वस्थ संचालन से लिया जा सकता है जिसके अन्तर्गत नदियों का जल पूरित रहना, वनों एवं वनौषधियों से पृथ्वीतल का हराभरा एवं आक्सीजन से पूर्ण रहना, वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप मानव जीवन का नियमन होना आदि माना जा सकता

---

75. हरिवंश प्रथम खण्ड 41.18-20
    द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ।
    प्रजा संहार सर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम्।।
    सुप्ता युग सहस्त्र स प्रादुर्भवति कार्यतः।
    पूर्णयुग सहस्त्रे सु देवदेवो जगद्पतिः।।
76. श्रीमद्भगवद् गीता– 4.7.8 यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
    अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम्।।
    परित्राणाय साधूनां विनाशाय चदुष्कृताम्
    धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

है। जब प्रकृति अथवा सहज वृत्तियों में विक्षोभ होता है अथवा प्रकृति पर कोई आघात किया जाता है तब पर्यावरण का असन्तुलन शुरू होता है सामाजिक एवं आचरणगत नियमों का सम्यक अनुपालन नही हो पाता है एक अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न होने लगती है तब परमेश्वर प्रकृति नियमों को संतुलित करने के लिये अर्थात् धर्म के क्षेत्र में उत्पन्न ग्लानि के निवारण हेतु कोई न कोई अवतार रूप ग्रहण कर लेते हैं। वह पालनकर्ता विष्णु रूप परमेश्वर अपने सुक्रतों एवं आचरणों से धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा करता है तथा युगीन व्यवस्था के लिये एक जीवन मूल्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ताकि लोग उसी के अनुरूप चलकर अपने जीवन को सुखी स्वस्थ एवं कल्याणकारी बना सकें। हिन्दू आध्यात्मवाद में विष्णु के अवतार ग्रहण करने का यही लक्ष्य परिकल्पित किया गया है। पुराणों में इसी भावना को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत करते हुये पुराणकारों ने विष्णु के अवतार लेने के प्रयोजन को व्याख्यापित किया है।[77,78,79,80,81]

भागवद् पुराण में भगवान के अवतार का प्रयोजन उनके अप्रमेय, अव्यय तथा गुणात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति को माना गया है जो गुणों के समुच्चय हैं तथा शील एवं चरित्र में अप्रमेय हैं उनके द्वारा आचरित चरित्र मानव के लिये परम आकर्षण का केन्द्र है तथा भक्तियुक्त जीवन जीते हुये आदर्श पाथेय है।[82] इस प्रकार उपर्युक्त पुराण में भगवान के अवतार का एक महत्वपूर्ण

77. महाभारत आश्वमेधिक पर्व– 54.13
78. महाभारत वनपर्व 272.71-72
79. वायुपारण 98.96
80. देवीभागवत 76.39
81. ब्रह्म पुराण 180.26-27 तथा 181.2-4
82. भागवद् 3.25.36

    तैर्दर्शनीययावयवैरुदाय विलासहासेक्षितवामसूक्तैः।
    हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो में गतिमण्वीं प्रयुक्ते।।

प्रयोजन अलौकिक रागात्मिका भक्ति का विकास को माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त परमेश्वर के अवतरण का एक अन्य प्रयोजन परमतत्व ज्ञान का वितरण भी बताया गया है। वस्तुतः भागवद् पुराण में कपिल के रूप में भगवान के अवतार का उद्देश्य ही तत्वत्व ज्ञान का निरूपण एवं आत्मोपलब्धि को बताया गया है।[83] भागवद् पुराण का स्पष्ट निर्वचन है कि बन्धन युक्त जीव का बन्धन काटने का मार्ग केवल शुद्ध बुद्ध इव मुक्त भगवान ही बता सकते हैं। और इसी प्रयोजन से वे बार-बार अवतार लेते हैं–

मर्त्यावतारः खलु मर्त्य शिक्षणं।

रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।।

प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों में जहाँ ईश्वर के अवतार की चर्चा है वहाँ उन्हें विविध कला अंशों में अवतरित होने की बात प्रस्तुत की गयी है कभी तो वे आंशिक कलाओं के अवतार लेते हैं तथा कभी षोडष अवतारों से युक्त पूर्णावतार ग्रहण करते हैं। ईश्वर की षोडष कला शक्ति जड़ चेतन मय संसार में व्याप्त है। एक जीव जितनी मात्रा में अपनी योनि के अनुसार समुन्नत होता है उतनी ही मात्रा में परमेश्वर की कला जीवाश्रय के सहारे विकसित होकर प्रगट होती है। चेतन सृष्टि में उद्भिज्ज सृष्टि परमेश्वर की प्रथम रचना मानी जाती है यह उद्भिज्ज योनि अन्यमय कोष प्रधान होती है तथा इसमें परमेश्वर की षोडष कलाओं में से एक कला का विकास रहता हे, ऐसा श्रुतियों में निरुपित है। (षोडषानां कलानां एका कलाऽतिशिष्टा भूत साऽन्ने नोपिसमाहिता प्रज्ज्वालीत।) इसी प्रकार स्वेदज योनि में परमेश्वर की दो कला, अण्डज योनि, तीन कला, जराइज योनि के अन्तर्गत पशुयोनि में चार कला तथा जरायिज योनि के अन्तर्गत

---

83. वही– 3.25.1

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवान आत्ममायया।

जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम।।

मनुष्य योनि में पांच कलाओं का विकास माना जाता है। ये पांच कलायें सर्वसाधारण मनुष्यों तक परिकल्पित हैं शास्त्रों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि धर्माचरण में निरत कुछ एक ऐसे मनुष्य होते हैं जिसमे 5 से अधिक आठ कलाशक्ति तक का विकास हो जाता है ऐसे मनुष्य विशेष शक्तिशाली होते हैं तथा विभूति के रूप में अत्युच्च कोटि में परिगणित किये जाते हैं। धर्मग्रन्थों में इसबात का उल्लेख मिलता है कि नवम से लेकर सोलह कलाओं के भीतर जिनमें विकास होता है वे अलौकिक होते हैं उन्हें जीव कोटि में न रखकर अवतार कोटि में परिगणित किया जाता है। इसमें नवम् कला से लेकर पन्द्रहवीं कला तक के अवतार परमेश्वर के अंशावतार माने जाते हैं तथा षोडष कला से युक्त अवतार को परमेश्वर का पूर्णावतार माना जाता है। आयुर्वेदशास्त्र में यह निरूपित किया गया है कि उद्भिज योनियों अर्थात् वनस्पतियों, औषधियों, लताओं एवं वृक्षों में जो प्राणाधायक और पुष्टि प्रदायक तत्व पाये जाते हैं वह सब ईश्वर की एक कला अंश के विकास के ही परिणाम हैं। इस प्रकार स्वेदज से लेकर के मनुष्य एवं देवता कोटि तक तृप्ति एवं शक्ति का स्रोत अन्यमय कोश वाले उद्भिजों को ही माना जा सकता है इस बात की सम्पुष्टि महाभारत के शान्तिपर्व के इस श्लोक से भी होती है।

उष्मतो म्लायते वर्ण त्वक्फलं पुष्पमेव च।

म्लायेत शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते।।

उद्भिज योनियों में केवल एक कला अंश होने के नाते अन्यमय कोश होता है। स्वेदज योनि में दो कला अंशों के कारण क्रमशः अन्यमय एवं प्राणमय कोशों का विकास होता है। अण्डज योनि में तीन कलाओं के कारण अन्यमय, प्राणमय एवं मनोमय कोशों का विकास होता है जरायुज पशु योनि के अन्तर्गत चार कलाओं के विकास के कारण क्रमशः अन्यमय, प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोशों का विकास होता है, जरायुज योनि में मनुष्य कोटि के अन्तर्गत पांच कला अंशों के होने के नाते उपर्युक्त चार कोशों के अतिरिक्त पांचवाँ

आनन्दमय कोश भी होता है। इस प्रकार पांचवीं कला अंश से लेकर आठवें कला अंश तक मनुष्य अपनी कर्मोन्नति द्वारा दिब्यकोटि तक विकास कर सकता है इसके बाद नवीं कला से लेकर सोलहवीं कला तक सृष्टि के पालक तथा रक्षक भगवान विष्णु का अवतार भारतीय धर्मग्रन्थों में अनेकत्र परिकल्पित किया गया है। इन्हीं अवतार रूपों में विष्णु का दशावतार रूप मध्ययुगीन कला एवं साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय माना जा सकता है।

विष्णु के अवतारों के विविध रूप

विष्णु के अवतारों को अनेक स्वरुप के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

पशुयोनि- शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति विष्णु के वराह, कूर्म एवं मत्स्य अवतारों का उल्लेख मिलता है।[84] तैत्तिरीय अरण्यक में इस बात का उल्लेख मिलता है कि शत भुजाधारी श्याम वराह ने पृथ्वी को ऊपर उठा लिया था।[85] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण[86] तैत्तिरीय संहिता[87], तैत्तिरीय ब्राह्मण[88] तथा एतरेय ब्राह्मण[89] में वामनावतार को विष्णु से सम्बन्धित बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में तो स्पष्ट रूप से वामन को विष्णु ही कहा है- 'वामनों हि विष्णु रास'। वस्तुतः ऋग्वेदोत्तर काल में विष्णु की महत्ता के कारण उपर्युक्त अवतारों को विष्णु से जोड़ दिया गया। श्रीमद भगवद् गीता के दशम् अध्याय में श्रीकृष्ण स्वयं को

---

84. शतपथ ब्राह्मण- 1.8.1.1-4
    वही- 1.8.1.5.6
85. तैत्तिरीय आरण्यक- 10.1.6
86. शतपथ ब्राह्मण- 1.2.5.5
87. तैत्ति० संहिता- 2.1.3.1
88. तैत्ति० ब्राह्मण- 1.7.17
89. ऐतरेय ब्राह्मण- 6.3.7

नागों में नागराज शेष[90], पशुओं में सिंह[91], पक्षियों में गरुण, तथा जलचरों में मकर[92] बताया है। परन्तु गीता में विष्णु के इन अवतारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया। इसके अध्याय 4 (चार) में–''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारति''[93] श्लोक में विष्णु की अवतार विषयक धारणा को सम्पुष्ट अवश्य किया गया है। विष्णु के पशुयोनि में अवतार का उल्लेख सर्वप्रथम महाभारत के नारायणीयोपाख्यान[94] में मिलता है। इसमें निर्दिष्ट अवतारों में बराह, कूर्म एवं मत्स्य अवतारों का भी उल्लेख किया गया है।[95] डा० आर० जी० भण्डारकर ने महाभारत के इस श्लोक को प्रक्षिप्तांश माना है। विष्णु के उपर्युक्त अवतारों का उल्लेख बाल्मीकि रामायण में भी मिलता है। यद्यपि फादर कामन बुल्के रामायणोक्त इस श्लोक को प्रक्षिप्तांश माना है। हरिवंश पुराण[96] में तथा महाभारत एक शान्ति पर्व में बिष्णु के अवतारों में हंस अवतार का भी उल्लेख किया गया है।[97] इस प्रकार विष्णु के पशु अवतारों की कुल संख्या 4 हो जाती है। ये अवतार भागवद् पुराण की रचनाकाल तक लगभग सभी पुराणों में उल्लिखित मिलते हैं।

विष्णु के पशु अवतारों को लेकर विद्वानों ने अनेक मत प्रतिपादित किये हैं कुछ विद्वानों के अनुसार उपर्युक्त तीनों पशु वराह, कूर्म एवं मत्स्य अनार्य जातियों में पूज्य पशु विशेष थे जिन्हें आर्य संस्कृति में विष्णु के अवतार रूप

---

90. भगवद्गीता– अध्याय दशम्– 10.29
91. वही– 10.30
92. वही– 10.31
93. श्रीमदभगवद् गीता– 4.7-8
94. महाभारत–नारायणी उपाख्यान– 12.326.75
95. वही शान्ति पर्व अध्याय 339-103.104
96. हरिवंश पुराण– 1.41.41
97. महाभारत शान्तिपर्व– 339.103-104

में परिकल्पित करते हुये. कालान्तर में महत्व प्रदान किया। इसी प्रकार कुछ विद्वान यह मानते हैं कि ये पशुगण सृष्टि के विकास के प्रारम्भिक सोपानों के प्रतीक हैं। यही प्रकोपासना कालान्तर में अवतारवाद के रूप में मनोनीत हो गयी।

(2) **मिश्रित योनि–** मिश्रित योनि के अन्तर्गत विष्णु के अवतार रूपों में नरसिंह एवं वामन अवतारों का उल्लेख किया जा सकता है। विष्णु के इन दो अवतार रूपों का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[98] तैत्तिरीय संहिता[99] तैत्तिरीय ब्राह्मण[100], एतरेय ब्राह्मण[101], तैत्तिरीय आरण्यक[102] महाभारत के नारायणी उपाख्यान[103] तथा हरिवंश पुराण[104] में प्राप्त होता है। विष्णु के वामन अवतार की मूल भावना ऋग्वैदिक कालीन है।[105] इसी प्रकार तैत्तिरीय आरण्यक[106] में सबसे पहले नरसिंहावतार का वर्णन किया गया है। आगे चलकर महाभारत एवं पुराणादि ग्रन्थों में विष्णु के नरसिंहावतार की कथा विशद् रूप में वर्णित मिलती है।

(3) **मानव योनि–** ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भगवान को सर्वप्रथम पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है।[107] श्रीमदभगवद् गीता के दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने भृगु (परशुराम), राम तथा वासुदेव को विष्णु का ही रूप बताया है। भागवद् पुराण में[108] विष्णु का प्रथम अवतार पुरुष रूप में ही परिकल्पित

98. शतपथ ब्राह्मण– 1.2.5.5
99. तैत्तिरीय संहिता– 2.1.3.1
100. तैत्तिरीय ब्राह्मण– 1.7.17
101. ऐतरेय ब्राह्मण– 6.3.7
102. तैत्तिरीय आरण्यक 10.1.6
103. महाभारत नारायणी उपाख्यान– 12.326.75
104. हरिवंश पुराण– 1.41
105. ऋग्वेद– 1.22.17-18
106. तैत्ति० आरब्यक 10.1.6
107. ऋग्वेद दशम मंडल पुरुषसूक्त
108. भागवद् पुराण 2.6.41

किया गया है। मानव (पुरुष) योनि के अवतारों में राम, परशुराम, वासुदेव कृष्ण, एवं कल्कि को महाभारत में विस्तारसः उल्लिखित किया गया है। महाभारत में तथा हरिवंश पुराण[109] में राम को विष्णु का अवतार कहा गया है।

बाल्मीकि ने रामायण में नारद के मुख से राम को विष्णु न कहलवाकर विष्णु इव कहलाया है। परन्तु इस उल्लेख से भी विष्णु के रामावतार की पुष्टि होती है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में राम को विष्णु का प्रत्यक्ष रूप स्वीकार किया है।

पुराणों के उत्तरकालीन संकलित अंशों में तत्कालीन विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में प्रचलित विभिन्न मतवाद का दर्शन मिलता है। इस भावना के चलते पुराणकारों ने विष्णु के मानवावतारों की बहुलता को आलोकित किया है। मत्स्य पुराण में विष्णु के 7 अवतार रूपों का उल्लेख मिलता है– परशुराम, दत्तात्रेय, मान्धाता, राम, वेदव्यास, बुद्ध तथा कल्कि। इसी प्रकार हरिवंश पुराण में राम, दत्तात्रेय कमल, केशव, तथा व्यास को मानव (पुरुष) योनि का अवतार कहा गया है। भागवद् पुराण में विष्णु के अवतार विषयक अवधारणा को व्यापक स्वर पर प्रस्तुत करते हुये उनके तीन प्रकार के अवतारों का उल्लेख किया गया है–1 पुरुषावतार, 2 गुणावतार तथा 3 लीलावतार। परम्परा से चले आ रहे अवतारों को भगवान का लीलावतार कहा गया है। भागवद् पुराण में भगवान की लीलावतारों के अन्तर्गत17 पुरुष अवतार बताये गये हैं इनके नाम है– चतुःसन, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, ध्रुवप्रिय, ऋषभ, प्रभु, बलराम, धनवन्तरि, मोहिनी, परशुराम, रामचन्द्र, व्यास, बुद्ध एवं कल्कि।

कालान्तर में चैतन्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत भगवान के लीलावतारों को क्रमशः कल्पावतारों एवं मन्वन्तर अवतारों में विभक्त किया गया है। विष्णु का

109. हरिवंशपुराण 41.122

कल्पावतार प्रत्येक कल्प की समाप्ति के उपरांत तथा मन्वन्तरावतार प्रत्येक मन्वन्तर में परिकल्पित किया गया है। मन्वन्तर अवतारों के अन्तर्गत विष्णु के पुरुषावतारों की संख्या 13 बताई गयी है जो इस प्रकार हैं– यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, अजित, ऋषभदेव, सार्वभौम, बिश्वसेन, सुधामन, धर्मसेतु योगेश्वर एवं नृहदभान तथा स्थान विषयक एवं वैकुण्ठ। मध्य कालीन वैष्णवअवतार परिकल्पन धीरे-धीरे पर्याप्त विस्तार होता गया फलतः वैष्णव धर्म के महान संतों यथा रामानुज, निम्बार्क बल्लभ, मध्व, चैतन्य आदि को भी अवतार के रूप में परिकल्पित किया जाने लगा।

''एतिहासिक सन्दर्भ में विष्णु के दशावतार''

प्रो० सुवीरा जायसवाल[110] का यह कथन यौक्त्रिक प्रतीत होता है कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में भगवद् धर्म को उच्चवर्ग के शासकों का संरक्षण प्राप्त होने लगा था।

इस सदी में शुंग नरेश भागवद् के शासन काल में गौतमी पुत्र ने एक गरुण स्तम्भ[111] का निर्माण करवाया था। गुप्तों के पूर्व शक तथा कुषाण नरेशों ने अपने सिक्कों पर शिव एवं बुद्ध मूर्तियों के साथ-साथ विष्णु की मूर्तियों को भी अंकित करवाया था। गुप्त कालीन नरेशों ने वैष्णव धर्म को स्वीकार करके स्वयं को विष्णु का परम उपासक घोषित किया था समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति[112] अभिलेख में उसे अचिंत्यपुरुष कहा गया है। अचिंत्यपुरुष से तात्पर्य है ऐसा व्यक्ति जो भले लोगों का कल्याण करे तथा बुरे लोगों का विनाश करे। प्रयाग प्रशस्ति में वर्णित अंचित्य पुरुष उपाधि गीता के उस श्लोक का स्मरण कराती है जिसमें ईश्वर ने अच्छे लोगों के कल्याण के लिये तथा दुश्कर्मियों के विनाश

---

110. जायसवाल सुवीरा–वैष्णव धर्म का उद्‌भव एवं विकास पृ० 158
111. अ. स. इं. ऐ. ऋ., 1913-14– पृ० 190
112. का इ. 5, 3 संख्या 1 पंक्ति 25

के लिये अवतार लेने की बात प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को ''प्रथिब्यां अप्रतिरथः''[113] कहा गया है जिसका अर्थ है पृथ्वी पर अद्वितीय योद्धा। ज्ञातव्य है– कि विष्णु के सहस्त्र नामसूची[114] में एक नाम अप्रतिरथः भी मिलता है। अप्रतिरथ की उपाधि समुद्रगुप्त के अतिरिक्त चन्द्रगुप्त II ने भी धारण की थी[115]। कुमार गुप्त ने 'परमदैवत' की उपाधि कारण की थी तथा उसके सिंहमर्दन छाप वाले सिक्कों पर लेख मिलता है– 'साक्षादित नरसिंहो सिंहमहेन्द्रों जयत्यनिशम्[116]। इस लेख में कुमारगुप्त I को भगवान नरसिंह का अवतार बताया गया है। इस प्रकार गुप्त शासन काल में राजा न केवल देवता समझा जाने लगा था बल्कि उसे विष्णु का प्रतीक मानकर विष्णु के विभिन्न अवतारों से जोड़ा जाने लगा था। राजा को मनुष्यों के बीच देवता जैसा मानने की बात भगवद्गीता[117] में भी कही गयी है। इसी बात की पुष्टि विष्णु धर्मोत्तर पुराण[118] से भी होती है। महाभारत[119] के अनुसार लोक रक्षा के लिये भगवान् विष्णु स्वयं राजा प्रथुवैन्य के शरीर में प्रविष्ट हो गये थे। इस प्रकार प्राचीन भारत में राजा एवं विष्णु में एकत्व की परिकल्पना की जा सकती है। राजा का विष्णु के साथ निश्चित सम्बन्ध सर्वप्रथम महाभारत एवं पुराण में ही स्थापित

---

113. वही पंक्ति– 24
114. विष्णु सहस्त्रनाम दृष्टव्य–गीताप्रेस गोरखपुर श्लोक 81
115. सरकार डी० सी०–से० ई० पृष्ठ 313 पंक्ति 4
116. दृष्टव्य–एलेन–कैटलाग आफ गुप्ता क्वाइंस पृष्ठ 72-73
117. भगवद्गीता– 10.27

    उच्चैःश्रव समश्वानां विद्धि माममृत्तोद्मवम्।
    ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।
118. विष्णु धर्मोत्तर पुराण प्रथमखण्ड 56.26

    अयुधानां तथा वज्रो नराणाश्च नराधिपः।
    क्षमा क्षमावतां देवो बुद्धिर्बुद्धिमतामपि।।
119. महाभारत– 12.130

किया गया है। पुराणों में विष्णु[120] के अंशावतार के रूप में राजाओं का विशद् वर्णन मिलता है। इस बात की पुष्टि बहुत स्पष्ट रूप से विष्णु धर्मोत्तर पुराण[121] में की गयी है।

उपर्युक्त विवरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भगवद्गीता में प्रतिपादित अवतारवाद के सिद्धान्त के फलस्वरूप अनुवर्ती राजाओं के साथ दैवत्व तथा विष्णु के अंशत्व को विशेष महत्व प्राप्त हुआ था। ज्ञातव्य है पुराणों में ऐसे बहुत से राजाओं का उल्लेख मिलता है। यथा– मान्धाता, भीमरथ, पन्चजन्य एवं पुरन्जय आदि जो विष्णु के तेज से युक्त कहे गये हैं। इतना ही नहीं विष्णु के दो प्रसिद्ध अवतार दाशर्थिराम तथा वासुदेव कृष्ण क्षत्रिय वंशीय शासक ही थे। ऐसा लगता है कि विष्णु के अवतारों की भावना जो मूलतः वैदिक थी कालान्तर में महाभारत एवं पुराणों के रचनाकाल तक आते-आते संकलन कार्य समाप्त होते-होते प्राचीन भारतीय अवतारवाद समाज में बहुत लोकप्रिय हो चुकी थी तथा अवतार बाद के सिद्धान्त को राजाओं के साथ भी जोड़ दिया गया था। विष्णु के अवतारों का निरूपण गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प में मिलने लगता है जिससे उपर्युक्त कथन की सम्पुष्टि होती है।

विष्णु के दशावतार विविध सांस्कृतिक धाराओं का परिपेक्ष

अवतारवाद भारतीय दार्शनिक चिंतन एवं धार्मिक विचार धारा की विश्व को एक विशिष्ट देन है। वस्तुतः अवतारवाद स्वयं में एक भारतीय संस्कृति है यह प्रतीक है मानव-जीवन में उस आशावाद का जो उसे रचनात्मकता एवं विकास की तरफ उन्मुख करती है। तथा निराशा के घटाटोक अन्धकार से बड़ी

120. विष्णुपुराण 1.22.16.21

121. विष्णु धर्मोत्तर पुराण– 2.2.9
प्रजानां रक्षणार्थाय विष्णुतेजोपवृहितः।
मानुष्ये जायते राजा देवसत्त्ववपुर्धरः।।

सरलता से निकाल लेती है। यह मानव को हमेशा यह आश्वासन प्रदान करता है कि अन्याय और अधर के बढ़ने की स्थिति में सर्वशक्तिमान सत्ता जो सभी जीवों का नियमन करती है किसी न किसी रूप में पृथ्वी पर अवतरित होकर अधर्म को दूर कर धर्म एवं न्याय को व्यवस्थित करता है। यह उद्देलित एवं परेशान जीवन को सामान्य बनाने तथा आशा एवं उत्साह के साथ जीवन को रचनात्मक बनाने की भावना को प्रबल बनाता है।

वेदों में सर्वशक्तिमान ईश्वर को एक कहा गया है। जो अनेक रूपों में बोधित एवं व्याख्यायित होता है ''एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'' ब्राह्मण, आरण्यक रामायण, महाभारत एवं पुराणों में सर्वशक्तिमान ईश्वर के इस बहुधा रूप को अवतार के रूप में परिकल्पित एवं व्याख्यायित किया गया है। इस प्रकार पुराणों में बहुधा प्रतिष्ठित विष्णु के विविध अवतार रूप ''एकम् सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'' वैदिक निर्वचन के उपब्रंहण जैसे लगते हैं।

वेदों में ''एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति'' का उद्घोष मिलता है। आगे चलकर पुराण अवतारों के माध्यम से इसी परम्परा को और आगे बढ़ाते हैं। अर्थात सर्वशक्तिमान सत्ता तो एक ही है जो समय-समय पर आवश्यकतानुसार विभिन्न अवतार लेकर प्राणी एवं सम्पूर्ण जगत का उद्धार करती हैं। ध्यातव्य है कि इन सभी अवतारों को विष्णु से जोड़ा गया है। यद्यपि सारे अवतार अपने में पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। अपनी अलग महत्ता रखते हैं लेकिन समष्टि रूप से ये एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। इस प्रकार वैदिक काल की ज्ञान एवं दर्शन सम्बन्धी दुरुहता पुराणों में अवतार की परिकल्पना के माध्यम से सरल और सुबोध हो गयी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अवतार की परिकल्पना समय के साथ क्रमशः जटिल होती गयी सामाजिक अवस्थिति में तादात्म स्थापित करने की भारतीय मनीषियों की एक अद्भुत समन्वयकारी मेधा का परिणाम है। ध्यान देने योग्य

बात है कि अवतार की परिकल्पना चाहे 36 रही हो या 24 या फिर 10 सभी अलग-अलग रूपों, अलग-अलग समयों व अलग परिवेश से जुड़ी हुयी हैं। अवतारवाद आज जिस रूप में हमारे सामने हैं उसका अन्तिम स्वरूप 10वीं 12वीं शताब्दी ई० तक निर्धारित हुआ। यह समय भारत के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह तत्कालीन भारत में दो युगों के बीच संक्रमण का युग माना जाता है। इस समय भारतीय समाज अनेकानेक जातियों उपजातियों में बंटा हुआ था और परस्पर बंटता जा रहा था। शंकराचार्य अपने अद्वैतवादी दर्शन और देश के चार सिरों पर चार धामों की स्थापना कर भारत राष्ट्र एवं जन के एकीकरण के लिये प्रयत्नशील थे।

बौद्ध धर्म जो अब उत्कर्ष के बाद कई भागों में विभाजित हो चुका था और विदेशों की भूमि पर अपनी विजय पताका फहरा रहा था हिन्दू धर्म के लिये बराबर अडंगा खड़ा कर रहा था। हिन्दू धर्म का तथाकथित नीचा तबका जिसे शूद्र और अन्त्यज नाम से अभिहित किया जाता था हिन्दू धर्म को छोंड़कर बौद्ध धर्म एवं नये परिचित इस्लाम धर्म की तरफ उन्मुख हो रहा था। इस विषय स्थिति में भारतीय विद्वानों ने पुराणों के माध्यम से अवतारवाद की प्रतिस्थापना कर जनमानस में हिन्दू धर्म के लचीले स्वरूप की तरफ ध्यान आकृष्ट किया एवं हिन्दू धर्म के एक बड़े भाग को धर्मांतरित होने से रोंकने में सफलता प्राप्त की।

दशावतार की परिकल्पना में नवाँ एवं दशवाँ अवतार सामाजिक दृष्टि से (एक वैचारिक दृष्टि से भी) पहले के अन्य अवतारों से अपनी विशिष्ट महत्ता रखते हैं। नवां अवतार जिसमें बुद्ध को विष्णु का ही अंश (अवतार) घोषित किया गया हिन्दू धर्म के समन्वयकारी पहलू की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। अभी तक ऐसा नहीं हुआ था कि अपने से इतर धर्म को अपने में समाविष्ट करने के लिये उसके प्रतिपादक को अपने धर्म के प्रतिपादकों के साथ जोड़ा गया।

हिन्दू धर्म में (स्वयं में दो सम्प्रदायों को जोड़ने की) यद्यपि यह प्रक्रिया लगभग 5000 वर्ष पूर्व ही दिखायी पड़ती है। जब वैष्णव सम्प्रदाय के साथ शैव सम्प्रदाय को जोड़ने की व्यवस्था की गयी और हिन्दू धर्म के नये स्वरूप हरिहर की परिकल्पना हमारे सामने दिखायी पड़ती है। हिन्दू धर्म के ही एक अन्य संप्रदाय-शाक्त सम्प्रदाय (या शक्ति सम्प्रदाय) को भी जोड़ने की कोशिश अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना में साकार होती दिखायी पड़ती है। यह उस प्रसंग से भी उद्‌भाषित होता है कि जब दैत्यों का संहार करने के लिये देवी दुर्गा को विभिन्न देव अपने शक्ति का एक अंश प्रदान करते हैं। और अंततः विभिन्न शक्तियों से सुसज्जित देवी आसुरी शक्तियों का विनाशकर तादत्म्य स्थापित करती हैं। नयी परिस्थितियों में बुद्ध को विष्णु का अवतार घोषित कर भारतीय चिंतकों ने न केवल बौद्ध धर्म का हिन्दूकरण ही किया अपितु उन तबकों के लिये भी एक उम्मीद की किरण जगायी जो तथा कथित सवर्णवाद ब्राह्मणवाद की व्यवस्था से पीड़ित एवं व्यथित थे। बौद्ध धर्म को अपने में समाहित कर हिन्दू धर्म ने उस लचीलेपन का भी परिचय दिया जो किसी भी धर्म को समय के साथ चलने के लिये आवश्यक माने जाते हैं हिन्दू धर्म ने एक तरह से अपने में व्याप्त कुरीतियों को छोड़ने एवं बौद्ध धर्म की प्रगतिशील बातों को स्वीकार करने की अपनी प्रत्यक्ष स्वीकृति दे दी।

दशावतार के क्रम में अंतिम अवतार कल्कि अवतार है अपने आप में यह एक विशिष्ट अवतार है जिसके बारे में विभिन्न पुराणों में उल्लेख मिलता है विशिष्टता इस मायने में कि यह अभी भविष्य में होना है। परिस्थितियाँ कमोवेश वही होंगी। जिनका जिक्र पहले नौ अवतारों के सन्दर्भ में मिलता है। विश्व में जब अत्याचार अनाचार बढ़ जायेगा और धरती पाप के बोझ से दबने लगेगी उसी समय जन-जन के उम्मीदों को एक बार फिर साकार करने के लिये भगवान विष्णु कल्कि का अवतार धारण करेगें और पृथ्वी एवं यहाँ के जनमानस को अत्याचार, अनाचार एवं पापों से मुक्त करायेंगें। सम्भवतः यह विश्व की

दार्शनिक विचारधाराओं में एक अकेली परिकल्पना है जिसे भविष्य में अभी साकार होना है। इस तरह आज के वैज्ञानिक युग में भौतिक संसाधनों से लिप्त लेकिन मानसिक रूप से अशांत मानव के लिये भी अभी उम्मीदें हैं कि सब कुछ ऐसा नहीं रहेगा। अंत में जीत होगी सत्य की और झूंठ चाहे कितना भी समसामयिक रूप से सशक्त क्यों न दिखता हो अंततः पराभूत होगा।

अवतारवाद का एक अन्यपक्ष जो इसे विशिष्ट बनाता है वह है इसका लोक जीवन से जुड़ाव। किसी भी धर्म का सतत अस्तित्व उसके अनुयायियों से ही संभव होता है न कि प्रतिपादकों से हिन्दू विचारक इस धारणा से भलीभांति अवगत थे कि लोक से इतर धर्म का कोई अस्तित्व नही है कोई महत्व नही है। हिंदू धर्म की अवतारवादी धारणा से सर्वशक्तिमान सत्ता को लोक के साथ जोड़ा। ये अवतार लौकिक रूपों में ही थे। जैसाकि हम स्वयं अपने जीवन में देखते हैं। यह लौकिक से अलौकिक को जोड़ने का स्तुत्य प्रयास था। मत्स्य, कूर्म, बराह, मनुष्य का आदिम रूप की कल्पना नरसिंह और फिर साक्षात मानव में ईश्वर के अस्तित्व की कल्पना। एक तरफ से मानव को नैतिक उदाहरण भी था कि सद्कर्मों से जुड़ा व्यक्ति या मानव मात्र भी भलाई के लिये जूझने वाला व्यक्ति समाज द्वारा बाद में ईश्वर रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार अवतारवाद समाज को नैतिक मार्ग पर चलने के लिये रास्ता उपलब्ध कराने वाली एक अनोखी विचारधारा थी जिसके द्वारा मानव समुदाय के अन्तस में देवत्वबोध और भगवन्ता की अनुभूति जाग्रत की गयी जिससे लोक वृत्ति धर्म संचलित हुयी।

सृष्टि सतत विकास की प्रक्रिया का ही परिणाम हैं। मानव का विकास करोड़ों वर्षों के विकास की ही गाथा है। अमीबा की उत्पत्ति से लेकर सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी मनुष्य जाति के उद्‌भव तक का इतिहास सतत जैव विकास की परिणति है। भारतीय मनीषियों ने मानव विकास के परिणाम क्रम में आयी हुई अन्तर्दशाओं को अवतारवाद की परिकल्पना के माध्यम से स्पष्ट किया है। पृथ्वी

पर सबसे पहले जीव की उत्पत्ति जल में हुई। इस प्रकार उत्पन्न प्राणि समुदाय केवल समुद्री जल में ही विचरण कर सकता था। इसे मत्स्य दशा का नाम दिया गया जो अवतारों के क्रम में पहला अवतार स्वीकार किया जाता है। जीव विकास क्रम की दूसरी प्रक्रिया तब शुरू हुयी जब कुछ जलीय जीव समुद्र जल से धरातल पर आना शुरू हुए इस प्रकार के जीवों के समुद्र तट पर जी सकने की दशा को कूर्म दशा कहा गया। अवतारवाद की दूसरी श्रृंखला कूर्म अवतार के रूप में ही अभिहित है।

जीवों के विकास की तीसरी अवस्था रेंगने और उड़ने वाले जीवों यथा सर्प, पक्षी एवं अन्य पशुओं के रूप में सामने आयी। अवतारवाद की परिकल्पना में इसे वराह दशा अर्थात् वराह अवतार का नाम दिया गया। पशुओं (बंदर) से मानव विकास की प्रक्रिया जैव विकास की चौथी अवस्था मानी जाती है। भारतीय मनीषियों ने इसे अवतारवाद की श्रृंखला नृसिंह अवतार का नाम दिया। इस अवतार के साथ ही मानव से अवतारों का क्रम जुड़ने लगता है। आदि मानव के आविर्भाव की दशा को वामन अवतार की संज्ञा दी गयी। अवतारों की परम्परा में वामन अवतार पांचवा अवतार है। इसके बाद की कहानी मानव के सभ्य बनने की कहानी है। लगातार प्रयोगों और अपने अनुभवों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करते मानव प्रगति पथ पर बढ़ा। शुरू में वह पूरी तरह से जंगल पर ही निर्भर रहा। धीरे-धीरे उसने जंगल साफ करने शुरू किये। अवतारवाद की परम्परा ने मानव की इस अवस्था को परशुराम अवतार के साथ जोड़ा जो छंठा अवतार है। मनुष्य ने अपने विकास क्रम की दूसरी अवस्था में पशुपालन शुरू किया। इस अवस्था का द्योतन अवतारवाद में राम के अवतार में किया गया है। पशु पालन के पश्चात् मानव ने शुरूआत की कृषि की। अवतारों की परिकल्पना में इस अवस्था को बलराम अवतार (कहीं-कहीं कृष्ण अवतार) के साथ जोड़ा गया। कृषि अवस्था के साथ मनुष्य परस्पर प्रगति पथ पर अपने कदम बढ़ाता रहा। अब खाने पीने से इतर वह आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से सोंच भी सकता था।

अवतारों की परम्परा में नवां अवतार जिसे बुद्ध अवतार की संज्ञा दी जाती है मानव विकास प्रक्रिया की इसी दशा का द्योतक है। दसवां अवतार कल्कि अवतार भविष्य का अवतार है। कहना न होगा कि यह अवतार भी अपने समय और परिवेश से जुड़ा हुआ ही होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि अवतारवाद भी भारतीय मनीषियों की सोंच केवल कपोल कल्पना ही नहीं थी– अपितु इसका एक वैज्ञानिक आधार भी था जिसे उन्होंने अपने वर्णनों में कल्पनात्मक रूप से जनता के सामने प्रस्तुत किया।

विष्णु के सभी अवतारों की पूजा-आराधना पूरे भारत में किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है। तमिल प्रदेश में आलवारों ने वामन और वराह को अपना उपास्य देव माना तथा समाज में इनकी पूजा करने की परम्परा स्थापित की। राम और कृष्ण जैसे अवतार तो न केवल भारतीय जनमानस में अपितु देशज सीमाओं को तोड़कर अन्य देशों में भी अत्यन्त लोकप्रिय हुये। इनके चरित्र को आधार बनाकर लिखे गये ग्रंथ रामायण एवं महाभारत व भागवद् पुराण भारत के हरेक क्षेत्र में अत्यंत श्रद्धा एवं विश्वास के साथ आज भी पढ़ा जाता है। अन्य अवतारों में यथा मत्स्य, नृसिंह वराह और कूर्म भी जनता के बीच प्रतिष्ठित हुये जिनके प्रमाण देश भर में बिखरे हुए तमाम मंदिर आज भी मिल जाते हैं यद्यपि ये अवतार अन्य अवतारों की अपेक्षा उतने लोकप्रिय नहीं हुए।

भारत क्षेत्रफल में एक विशाल देश रहा है यहाँ विविध जातियों एवं भाषाओं के लोग अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु के अवतारों का क्रम इन अलग-अलग क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ होगा। प्राचीनकाल में यह परम्परा आम प्रचलन में थी जब मनुष्य ईश्वर की कल्पना मनुष्य रूप से इतर अन्य जीव जन्तुओं से भी करता था। दशावतार के प्रारम्भिक अवतार जो जीव जन्तुओं से जुड़े हुए हैं इसी प्रक्रिया के विकास का अंग संभव हो सकते हैं। बाद में चलकर पुराणकारों ने एक समग्र राष्ट्रीयता का बोध जाग्रत करने के उद्देश्य से इन सभी पूजा प्रणालियों से संबंधित देवों को जोड़कर इन्हें सर्वशक्ति सत्ता भगवान विष्णु का अवतार घोषित

किया होगा। कहना न होगा कि वे अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल रहे और तात्कालिक समय में इतने बड़े क्षेत्र की जनता को एक दूसरे से जोड़ने का माध्यम धर्म के अलावा हो भी क्या सकता था। धर्म तो भारतीय संस्कृति का मूलतत्व ही है या यूँ कहें कि उसकी पहचान ही है।

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता स्वीकार की जाती है सातत्यता। दशावतार में भी यह सातत्यता मिलती है। एक ही ईश्वर विष्णु के अलग-अलग समयों में दस अलग-अलग अवतारों की कल्पना और वह भी तब जब उनकी जरूरत सामान्य जनता महसूस करे यह एक विशिष्ट उपलब्धि है। यही नहीं भविष्य के लिये भी उम्मीदें हैं। फिर इस वातावरण में निराशा की बात ही कहाँ उठती है। विष्णु के क्रम में मिलती यह सातत्यता भारतीय संस्कृति को पूर्णता ही प्रदान करती है।

भिन्न-भिन्न अवतारों में भिन्न-भिन्न जीव जन्तुओं और संस्कृति को अपनाकर प्रायः सभी को एक जैसा महत्व देने की भारतीय मनीषियों की कोशिशें दिखायी पड़ती हैं। इसके मूल में उपनिषदों का निर्गुण ब्रह्म का दर्शन भी दिखायी पड़ता है ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। वह एक तुच्छ से जीव मत्स्य से लेकर सृष्टि की अद्‌भुत रचना मानव में एक जैसे ही विद्यमान है। ऐसे में सभी का यह कर्तव्य है कि इन जीवधारियों की रक्षा की जाय। आज वैज्ञानिकों ने भी अपने नवीनतम शोधों पर यह तथ्य सुस्थापित कर दिया है कि प्रकृति की प्रवाहमानता उसकी निरन्तरता बनाये रखनें के लिये आवश्यक है कि उसके सभी अभिकरण सुरक्षित रहें। प्रकृति में सभी जीवों की अपनी विशिष्ट भूमिका है जिसे दूसरा अन्य कोई जीव पूरा नहीं कर सकता। किसी जीव के प्रजाति के होने की दशा में पूरा प्राकृतिक संतुलन ही गड़बड़ हो जाता है ऐसे में इस संतुलन को बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि सभी जीवों की सुरक्षा की जाय। सभी जीवों में दैवत्व के आरोपण से यह कार्य भारतीय मनीषियों ने सहजता से कर डाला। इस प्रकार जैव सुरक्षा के कार्य में भी दशावतार की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है।

अध्याय 2

मत्स्य अवतार

मत्स्य अवतार का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[1] में मिलता है। इसमें इस अवतार की कथा इस प्रकार वर्णित है कि नदी के तट पर स्नान करते समय मनु के हांथ में मछली का एक बच्चा आकस्मात आ गया, उसने कहा कि मेरा पालन पोषण करो तो मैं तुम्हें पार उतार दूंगा। मनु ने आश्चर्य चकित होकर पूंछा कि किससे पार उतारोगे? मछली ने कहा बड़ी बाढ़ आने वाली है जो सम्पूर्ण संसार को अपने में समेट लेगी, उससे मैं तुम्हें बचाऊँगा। मनु ने उसे बचाया और उसके कथनानुसार उसे घड़े में, फिर उसे तालाब में और अंत में समुद्र में रखा जहाँ उसने विशालकाय आकार धारण कर लिया। कालान्तर में भयंकर बाढ़ आयी और समस्त वस्तुवें नष्ट हो गयीं। मत्स्य के कथनानुसार मनु ने समस्त अन्नों के बीजों को सुरक्षित रख लिया था। बाढ़ शान्त होने पर मनु ने यज्ञ किया और उन्हीं सुरक्षित बीजों से फिर पदार्थों को उत्पादित किया जिससे नयी सृष्टि हुयी। वैदिक साहित्य में वराह के समान मत्स्य अवतार को भी प्रजापति से सम्बन्धित बताया गया है। बाद में सर्वव्यापनशील विष्णु के साथ मत्स्य अवतार को पुराणों में जोड़ दिया गया। ध्यातव्य है कि मत्स्य अवतार की कथा उस विशाल जलप्लावन की कथा से जुड़ी है जिसका वर्णन आर्यों के वैदिक एवं पौराणिक बांड्गमय के साथ-साथ सेमेटिक देशों के साहित्य यथा न्यूरेस्टामेण्ट (बाइबिल) आदि में भी प्राप्त होती है। यह एक ऐसी कथा है जो आर्य एवं सेमेटिक दोनों परम्पराओं में समान रूप से वर्णित है तथा प्रागएतिहासिक कालीन एक ऐसे भौगोलिक परिवर्तन का स्मरण कराती है जिसके फलस्वरुप पृथ्वी पर एक ऐसी भयावह बाढ़ आयी थी जिसमें तत्युगीन सभ्यताओं के अधिकांश केन्द्र नष्ट हो गये थे। ऐसा लगता है कि इसी जलप्लावन की स्मृति

1. शतपथ ब्राह्मण 1.8.1.1

से प्रलय विषयक कथायें जुड़ी हुयी है जिनका संकेत पुराणों में सर्ग-प्रतिसर्ग लक्षणों में किया गया है। मैकडानल[2] एवं कतिपय अन्य विद्वानों का मत है कि जल प्लावन की कथा सम्भवतः मूलतः सेमेटिक है जिसे आर्यों ने बाद में आर्येत्तर जातियों से ग्रहण कर लिया था।

परन्तु डा० सूर्यकान्त[3] एवं अन्य कई विद्वानों ने मैकडानल के उपर्युक्त मत को अतर्कसंगत बताया है। इन विद्वानों की धारणा है कि सेमेटिक देशों यथा–बेबीलोनिया एवं इजराइल आदि से प्राप्त होने वाले जलप्लावन सम्बन्धी उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[4] के उल्लेख के पूर्ववर्ती न होकर परवर्ती माने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत एवं सेमेटिक देशों की प्रलय सम्बन्धी कथाओं की प्रकृति भी एक दूसरे से भिन्न है जिससे यह संकेत मिलता है कि दोनों कथा रूप अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्रों में तत्युगीन भौगोलिक स्थिति एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर विकसित मानी जा सकती हैं।

शतपथ ब्राह्मण में मत्स्यावतार की कथा में याज्ञिक विधान प्रस्तुत किया गया है जो कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। जलप्लावन के घट जाने पर मनु हिमालय पर्वत से नीचे आये और घृत एवं दधि आदि से उन्होंने प्लावित जल में ही हवन किया। इस यज्ञ के एक वर्प बाद जल से इडा नामक एक बालिका उत्पन्न हुयी। उसने मनु से निवेदन किया, ''तुम मुझसे यज्ञ करो, इससे तुम्हे धन, पशु एवं अन्य अभीष्ट वस्तुवें प्राप्त होंगी। मनु ने वही किया जो इडा को अभीष्ट था और इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि हुयी। शतपथ ब्राह्मण के अगली कण्डिका में पशुओं को इडा कहा गया है। ध्यातव्य है कि मूलकथा में किसी

---

2. मैकडानल– हिस्ट्री आफ संस्कृति लिटरेचर (पुनर्मुद्रण 1961) पृष्ठ 218 तथा विण्टरनिट्स हिस्टरी ऑफ इंडियन लिटरेचर प्रथमभाग (कलकत्ता 1927) पृष्ठ 210।
3. डा० सूर्यकान्त– फ्लड लीजेण्ड इन संस्कृति लिटरेचर जालन्धर 1950 भूमिका भाग।
4. शतपथ ब्राह्मण– 1.8.1.1-19

देवता की प्रमुख भूमिका प्रस्तुत नहीं की गयी है।

शतपथ ब्राह्मण के अनन्तर मत्स्यावतार की कथा महाभारत के वनपूर्व[5] में आख्यात मिलती है। इसमें मत्स्यावतार की कथा के प्रसंग में मत्स्य को प्रजापति अथवा ब्रह्मा के रूप कहा गया है। जो अनेक दृष्टियों से तर्क संगत तथा सुग्राह्य प्रतीत होता है। क्योंकि महाप्रलय के जल से मानव जाति के आदि पुरुष मनु की रक्षा करके तथा सृष्टि के मूल अंकुरों को सुरक्षित रखने का कार्य प्रजापति अथवा ब्रह्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था अतः मत्स्य का प्रजापति ब्रह्मा के साथ तादात्म्य यौक्तिक प्रतीत होता है। महाभारत[6] की कथा के अनुसार–चीरणीं नदी के तट पर जिस समय स्वायंभू मनु स्नान कर रहे थे उस समय उनके हांथों में एक छोटी सी मछली सहजतः आ जाती है। और बहुत विनम्रता के साथ उनसे अपनी रक्षा के लिये याचना करती है। उस छोटी सी मछली को मनु अपने कमण्डल में रख लेते हैं परन्तु वह इतनी द्रुतगति से बढ़ने लगती है कि कमण्डल तो क्या कुछ ही दिनों में तालाब एवं नदी भी उसके लिये छोटे पड़ जाते हैं तब मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया जहाँ वह स्वस्थ और सहज विकास प्राप्त कर सके।[7] समुद्र में मत्स्य अत्यधिक बढ़ गया और उसने मनु से कहा– अमुक समय में महौघ आयेगा उस दिन आप सम्पूर्ण औषधियों एवं अन्नों के बीजों को लेकर एक दृढ़ नाव पर सप्तऋषियों के साथ बैठ जाना मैं एकश्रृंगी महामत्स्य के रूप में आकर आपको सुरक्षित स्थान पर पहुंचा

5. महाभारत वनपर्व अध्याय 187

6. महाभारत वन पर्व 187-7

भगवन क्षुद्रमत्स्योऽस्मि वलवद्भ्यो भयं मम।

मत्स्येभ्यों हि ततो माँ त्वं त्रातुमर्हसि सुवृत।।

7. वही– 187-26-30

दूंगा।[8] महाभारत में वर्णित कथा के अनुसार महान जलप्लावन के आने पर मनु अपने नाव को लेकर प्रलय जल में तैरते हुये मत्स्य का स्मरण करते हैं। मत्स्य उनके सम्मुख आता है नाव की रस्सी उसके सींग से बांध दी जाती है। उस महामत्स्य ने उस नाव को हिमालय पर्वत के ऊंचे एक शिखर पर पहुँचा दिया जिससे नाव की रस्सी बांध दी जाती है।[9] नाव को हिमालय पर्वत के शिखर पर सुरक्षित रूप से पहुँचा देने के बाद उस महामत्स्य ने अपना परिचय स्वायंभू मनु के समक्ष प्रस्तुत किया। महाभारत के अनुसार मत्स्य ने कहा मैं ब्रह्मा नामक प्रजापति हूँ। मत्स्य रूप में मैंने मनु तथा आप लोगों (सप्तर्षिगण) की रक्षा की है क्योंकि मनु ही इस प्रलय के बाद सृष्टि की पुनर्रचना करेंगे। तपस्या के बल से मनु की प्रतिभा अत्यन्त प्रखर हो जायेगी तथा प्रजासृष्टि के समय वे सदैव जागरुक रहेंगे।[10]

---

8. महाभारत वन पर्व 187-30-31

    नौश्च कारमितव्या ते दृढा युक्तवटारका
    तत्र सप्तर्षिभिः सार्द्धम आरुहेया महामुने
    आगमिष्याम्यहं श्रृंगी विज्ञेयस्तेन तापस।

9. वही वन पर्व– 187-48-49

    ततो हिमवतः सृंगं मत्परं भरतर्षभ।
    तत्राकर्षत् ततो नावं स मत्स्यः कुरुनन्दन।।
    अथाब्रवीत तथा मत्स्यस्तान ऋषीन प्रहसन् शनैः।
    अस्मिन् हिमवतः शृंगे नावं बध्नीत मा चिरम्।।

10. वही 52-53-54– अहं प्रजापतिर्बृह्मा मत्परं नाधिगम्यते
    मत्स्यरुपेण यूयं च मयास्मानमोचिता भयात।
    मनुजा च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः।
    स्त्रष्टव्या सर्वलोकाश्च यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति।।
    तपसा चापि तीव्रेण प्रतिभारुय भविष्यति।
    मत्प्रसादात् प्रजासर्गे न च मोहं गमिष्यति।।

महाभारत के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि शतपथ ब्राह्मण से लेकर महाभारत के उपर्युक्त कथा अंशों के प्रणयन काल तक मत्स्यावतार की कथा प्रजापति ब्रह्मा से ही सम्बन्धित थी न कि विष्णु से। प्रजापति ब्रह्मा मानव सृष्टि के आदि पुरुष मनु की रक्षा के लिये मत्स्य अवतार धारण करके उनकी रक्षा का प्रयत्न करते हुये वर्णित किये गये हैं। किन्तु अवतारवाद का सिद्धान्त ब्रह्मा के साथ सम्बन्धित नही माना जा सकता है अवतारवाद की विशेषता पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में एक मात्र विष्णु से सम्बन्धित बतायी गयी है। इतना ही नही पुराणों में प्राणियों की रक्षा का सम्पूर्ण दायित्व विष्णु का बताया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि पौराणिक युग में विष्णु के देवत्व के उत्कर्ष के साथ-साथ उपर्युक्त मत्स्यावतार की कथा प्रजापति से हटकर विष्णु के साथ जोड़ दी गयी।

मत्स्य पुराण में भगवान के मत्स्यावतार की कथा बहुत विस्तार के साथ वर्णित है इस पुराण में मत्स्य रूप धारण करने वाले भगवान स्वायंभू मनु को प्रलयकाल में जिस पुराण का उपदेश देते हैं वही मत्स्य पुराण का मूल आधार बनता है। इस पुराण में मत्स्यावतार को प्रजापति ब्रह्मा से न जोड़कर स्पष्ट रूप से विष्णु से जोड़ा गया है तथा मत्स्य रूप विष्णु की कथा का सविस्तार वर्णन किया गया है।[11] यहाँ यह प्रस्तावित करना विशेष समीचीन प्रतीत होता है कि वैदिक भावना में वर्णित मत्स्य का प्रजापति के साथ सम्बन्ध इस पुराणकार की स्मृति में भी विद्यमान प्रतीत होता है क्योंकि कथा के आरम्भ में मनु प्रजापति ब्रह्मा को परितुष्ट एवं प्रशान्त करने के लिये घोर तपस्या करते हैं और उनसे

---

11. मत्स्य पुराण– 1-28

ज्ञातस्वं मत्स्यरुपेण मां खेदयसि केशव

हृषीकेश जगन्नाथ जगद्वाम नमोस्तु ते।।

यह वर मांगते हैं कि वे प्रलयकाल में संसार की रक्षा करने में समर्थ बन सकें।[12] मनु की तपस्या से प्रशन्न होकर ब्रह्मा जी ने उन्हें अभीष्ट वरदान प्रदान किया इस बीच विष्णु मनु के कार्य की सिद्धि के लिये मत्स्य अवतार ग्रहण कर संसार के रक्षार्थ उपस्थित हो जाते हैं।

भागवद् पुराण के 8वें स्कन्ध में मत्स्यावतार की कथा बहुत संक्षेप में प्रस्तुत की गयी है। इसमें ब्रह्मा अथवा प्रजापति का कोई सम्बन्ध उल्लिखित नहीं मिलता है। पुराणकार ने राजा परीक्षित से एक प्रश्न प्रस्तुत कराते हुये भगवान विष्णु के मत्स्य जैसे तुच्छ प्राणी का अवतार ग्रहण करने का कारण जानने के कारणों का प्रश्न उठवाया है। जिसका उत्तर देते हुये शुकदेव जी ने कहा कि भगवान विष्णु को गाय, ब्राह्मण, वेद, देवता, तथा सज्जन पुरुषों की रक्षा के लिये ऐसा रूप धारण करना पड़ता है।[13]

भागवद् पुराण में विष्णु के अवतार का एक प्रयोजन चारों वेदों की रक्षा भी बताया गया है इसमें आख्यात है कि सृष्टि की रचना करने के बाद परिश्रान्त एवं शिथिल ब्रह्मा जी के मुख से निकले हुये चारों वेदों को हयग्रीव नामक शक्तिशाली दैत्य चुराकर पाताल लोक चला गया। वेदों को पुनः प्राप्त करने के लिये विष्णु ने जल में विचरण के हेतु मत्स्य का रूप धारण किया

---

12. मत्स्य पुराण– 1-14-16 वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः।
एवमुक्तोऽब्रवीद्राजा प्रणम्य स पितामहम्।।
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।
भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते।।

13. भागवद् पुराण– 8-24-5 गोविप्रसुर साधूनां छन्दसमापि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धते धर्मस्यार्थ तथैव हि।।

था।[14] प्रलय के बाद जब ब्रह्मा पुनः जागते हैं तो मत्स्य-विष्णु हयग्रीव नामक दैत्य को मारकर चारों वेदों को वापस लाकर ब्रह्मा को सौंप देते हैं। इस प्रकार मत्स्य पुराण में विष्णु के मत्स्यावतार का प्रमुख कारण वेदों के उद्धारार्थ हयग्रीव नामक राक्षस का बध बताया गया है।[15] इस प्रकार वेदों को मनु सत्यव्रत को प्रदान करने की कथा भागवद् पुराण में वर्णित है तथा मनु सत्यव्रत को भगवान मत्स्य-विष्णु चारों युगों में मानव जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों का उपदेश दिया था जिससे धर्मादि व्यवस्थाएं सुचारू रूप से संचालित होती रहें। इस प्रकार महाभारत में जहाँ प्रजापति के मत्स्य रूप धारण करने का प्रमुख कारण स्वायम्भू मनु की रक्षा बताया गया है वहीं भागवद् पुराण में विष्णु द्वारा मत्स्य अवतार ग्रहण करने का प्रमुख उद्देश्य वेदों का उद्धार करना निरुपित किया है। ज्ञातव्य है कि चारों वेदों के हरण की कथा परिवर्तित रूप में महाभारत में भी आख्यात है परन्तु महाभारत में वेदों का अपहरण कर पाताल ले जाने वाले दैत्य मधु एवं कैटभ बताये गये हैं। तथा विष्णु को अश्व सिर से युक्त (हयग्रीव) मानव अवतार के रूप में वर्णित किया गया है।[16] बृहदारण्यक उपनिषद के प्राथमिक दो ब्राह्मणों में अश्व नामक प्रजापति का यज्ञीय विवरण विशद् रूप से प्राप्त होता है। यज्ञों में अश्व को वैदिककाल में विशेष महत्ता प्राप्त थी अतः वेदों के उद्धार के लिये विष्णु का हयग्रीव के रूप में अवतार लेने की कथा का आना वैदिक भावना के अनुरूप प्रतीत होता है। पुराणों में इस बात का उल्लेख मिलता

---

14. भागवद पुराण 8.24, 8-9 काले नागत निद्रस्य धातुः शिशपिषोर्बलीः।
    मुखतो निःसृतान् वेदान हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत्।।
    ज्ञात्वा तद् दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टिताम्।
    दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः।।
15. भागवद पुराण– 8.24.57– अतीत प्रलयापाय उत्तिथाय स वेधसे।
    हत्वासुरं हयग्रीवं वेदान प्रत्याहरद्धरिः।।
16. महाभारत शान्तिपर्व– 347.1-71

है कि पाताल लोक में पहुंचकर हयग्रीव का अवतार धारण करने वाले विष्णु सश्वर सामवेद का पाठ करने लगते हैं जिसे सुनकर मधु-कैटभ वेदों को एक स्थान पर रखकर उनके पास आ जाते हैं– मधु-कैटभ की सुरक्षा से अलग वेदों को हयग्रीव-विष्णु लेकर पृथ्वी लोक पर चले जाते हैं। मधु-कैटभ जब वेदों को ढूंढ़ते हुये पृथ्वीतल पर पहुंचते हैं तो विष्णु अपने दूसरे रूप से इन शक्तिशाली दैत्यों का वध करते हैं। मधु कैटभ के विषय में यह कथा मार्कण्डेय पुराण के देवीमहात्म तथा देवीभागवद् में वर्णित है।[17] ध्यातव्य है कि इस पुराण में मधुकैटभ को वेदों को चुराने वाला नही कहा गया है। भागवद् पुराणकार हयग्रीव विष्णु की कल्पना के स्थान पर हयग्रीव दैत्य की परिकल्पना को अधिक यौक्तिक समझकर ब्रह्मा के चारों मुखों से निकले चारो वेदों का अपहर्ता बताया जाना अधिक समीचीन समझा होगा। जिसका वध करने के लिये विष्णु ने मत्स्य का अवतार ग्रहण किया था। यहाँ यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि विष्णु के मत्स्यावतार के सम्बन्ध में जल प्रलय के किसी कारण का उल्लेख नही किया गया। परन्तु आगे चलकर कालिका पुराण में विष्णु के मत्स्यावतार के समय महाजल प्रलय के कारण को स्पष्ट किया गया है।[18] इस पुराण में कहा गया है कि वैवश्वत मनु से महर्षि कपिल ने एक ऐसा शान्ति स्थान प्रदान करने के लिये कहा जहाँ बैठकर तपस्या की जा सके तथा मानव कल्याण के लिये ज्ञान दान किया जा सके।

वैवश्वत मनु ने महर्षि कपिल की याचना को किंचित अवमूल्यित करते हुये कहा कि लोक कल्याण करने वाले महापुरुष उपयुक्त स्थान की खोज नहीं करते आप की इच्छा जहाँ हो वहाँ जाकर तप कीजिये। मनु के विरष्कार से दुखी महर्षि कपिल ने उन्हें श्राप देते हुये कहा कि राज के दर्प में मेरा तिरष्कार करने वाले तुम्हारा यह चराचर जगत कुछ ही दिनों में नष्ट हो जायेगा। श्रापित वैवश्वत

---

17. देवी भागवद्–स्कन्द 1 अध्याय 6-1.6-9

18. कालिका पुराण–अध्याय 34

मनु भगवान विष्णु से जगत की रक्षा हेतु प्रार्थना किया। मनु की प्रार्थना से प्रसन्न होकर विष्णु ने प्रत्येक प्राणी के एक-एक जोड़े एवं वनस्पतियों के बीजों को प्रलयकाल में रक्षा करते हुए स्वयं मत्स्य का अवतार ग्रहण करने का वचन दिया। विष्णु के मत्स्यावतार की कथा भागवद् एवं मत्स्य पुराण के अतिरिक्त शिवपुराण[19] तथा स्कन्द पुराण[20], शिल्प ग्रन्थ, अपराजित प्रच्छा में मत्स्यावतार की एक विचित्र कथा वर्णित है इसमें कहा गया है कि प्रलकाल में ब्रह्मा जी के ध्यान मग्न हो जाने पर शंख नामक एक दैत्य ने चारों वेदों को अपहृत कर समुद्र में छिप गया। ब्रह्मा ने वेदों के उद्धार के लिये विष्णु से प्रार्थना की भगवान विष्णु ने शंखासुर को मारने तथा वेदों की रक्षा के लिये एक विशाल मत्स्य का रूप धारण किया[21] ध्यातव्य है कि भागवद', शिव, अग्नि तथा स्कन्द आदि पुराणों में वर्णित मत्स्यावतारों में वेदों के अपहर्ता शंख के स्थान पर हयग्रीव मिलता है।

भागवद् पुराण के अनुसार–प्रलयकाल आने पर वैवश्वत मनु ने सप्तर्षियों के साथ एक नौका पर वनस्पतियों के बीज आदि को लेकर आरुढ़ हो गये। उसी समय भगवान मत्स्य मनु के समक्ष उपस्थित होकर उनके सिर पर एक विशाल श्रृंग था तथा उनका शरीर 4 लाख योजन विस्तृत था। मनु ने वासुकी नाग के द्वारा नौका को महामत्स्य की सींग से बाँध दिया। इस नौका को खींचते हुए महामत्स्य प्रलयकाल में इधर-उधर विचरण करते रहे तथा मनु को आत्मज्ञ ज्ञान का उपदेश देते रहे। अंत में ब्रह्मा के मुख से गिरे हुए वेदों को अपहृत किये हयग्रीव नामक असुर को मारकर महामत्स्यावतार ने चारों वेदों को ब्रह्मा

---

19. शिव पुराण– 2-5.16.4

20. स्कन्द पुराण 5, 3, 151, 8, 7, 2, 18, 55

21. अपराजित पृच्छा– 23, 7-9 : 23 : 11 : 23-16

को प्रदान कर दिया।[22]

विष्णु के मत्स्य अवतार रूप को लेकर कुछ विद्वानों में मतभेद है। हापकिंस का मत है कि भागवद् में वर्णित उपर्युक्त कथा से लगता है कि मत्स्यावतार ब्रह्मा जी का ही था न कि विष्णु का।[23] इसके विपरीत केनेडी भागवद् पुराण द्वारा कथित मत्स्य आख्यान पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि मत्स्यावतार विष्णु ने ही धारण किया था न कि ब्रह्मा ने। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में विष्णु के मत्स्य रूप को बजाते समय मत्स्य को श्रृंगयुक्त बनाए जाने का विधान दिया है।[24]

मत्स्य पुराण[24] विष्णु धर्मोत्तरपुराण[25] तथा गरुण पुराण[26] में विष्णु को नृमत्स्य-मिश्रित रूप में मूर्तियों को अंकित करने का विधान दिया गया है। परन्तु शिल्प ग्रन्थ रूपमंडन तथा अपराजित पृच्छा में विष्णु के मत्स्यावतार रूप की प्रतिमाओं को केवल मत्स्य रूप में ही अंकित करने का निर्देश दिया गया है। देवता मूर्ति प्रकरण में मत्स्यावतार विष्णु के प्रतिमा लक्षण का उल्लेख ही नहीं किया गया है।

अपराजितप्रच्छा में मत्स्यरूप में विष्णु की आकृति में महामीन के सदृश

22. भागवद् पुराण 8.24-45-49

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्म हार्णवे।

एकश्रृंगधमत्स्यो हैमो नियुतयोजनः।।

निबन्ध्यनावं तच्छृङ्गें यथोक्तो हरिणापुरा।

वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनः।।

23. हापकिंस : Ao Myo पृष्ठ 218

24. मत्स्य पुराण– 259, 39

25. विष्णु धर्मोत्तर पुराण– 3, 85 : 58

26. गरुण पुराण– 1.1.23

विशाल लाल-लाल नेत्रों वाला, श्यामवर्ण उत्कट रूप वाला तथा भृकुटि एवं दांतों को क्रोधावेग के कारण स्फुरणशील बनाए जाने का विधान प्रस्तुत किया गया है।[27] शिल्पग्रन्थ रूप मंडन में विष्णु के इस अवताररूप को मत्स्यरूप में ही अंकित करने को यथोचित बताया गया है। रूप मंडन की इस परम्परा को शिल्प रत्न ने भी दोहराया है।[28] मत्स्यरूप में विष्णु की मूर्ति बनाए जाने का विधान उपर्युक्त शिल्प ग्रन्थों के अतिरिक्त मत्स्यपुराण[29] विष्णुधर्मोत्तर पुराण[30] अग्नि पुराण[31] गरुण पुराण[32] मारकण्डेय संहिता[33] विष्णु संहिता[34] तथा मामसोल्लास[35] आदि ग्रन्थों में भी वर्णित मिलती है।

उपर्युक्त शास्त्रोल्लेख के अनुरूप विष्णु के मत्स्यावतार मूर्तियाँ दो रूपों में मिलती हैं (1) नृमत्स्य मिश्रित रूप तथा (2) मत्स्य रूप। नृमत्स्यरूप विष्णु की मूर्तियाँ उत्तर भारत में बहुत कम मिली हैं जबकि मत्स्य रूप में विष्णु की मूर्तियाँ सर्वाधिक प्राप्त हुयी हैं। भारत के पूर्वी हिंस्से में बांग्लादेश के ढाका जिले से विष्णु की एक नृमत्स्य मिश्रित रूप की प्रतिमा प्राप्त हुयी है। जो ढाका संग्रहालय में सुरक्षित है। विष्णु की मत्स्य रूप में अंकित इस अवतार की मूर्ति गढ़वा, खजुराहों[36] एटा, करीतलाई तथा चित्तौड़गढ़ से प्राप्त हुयी हैं। इनके

27. अपराजित पृच्छा 23.11-12
28. शिल्परत्न– 2, 24, 122
29. मत्स्य पुराण– 259.39
30. विष्णु धर्मोत्तर पु० 3.85.58
31. अग्नि पुराण 49.1
32. गरुण पुराण 1.1.23 : 187.12
33. मार्कण्डेम संहिता–अध्याय 8
34. विष्णु संहिता– 14.1-8
35. मानसोल्लास 2.3.1.714
36. खजुराहो– दृष्टव्य अवस्थी रामाश्रय-खजुराहो की देव प्रतिमाऐं पृष्ठ 93 चित्र 27 तथा पृष्ठ 93 चित्र 23

अतिरिक्त मत्स्यावतार विष्णु की मूर्तियाँ मथुरा लखनऊ, उदयपुर, चम्बा तथा ग्वालियर के संग्रहालयों में सुरक्षित की गयी हैं। गढ़वा से प्राप्त मत्स्य विष्णु की प्रतिमा 10वीं शती ई० की है। इसमें मत्स्य को एक विशाल पदमपत्र पर अंकित किया गया है। और उसके निकट जटामुकुट, कुण्डल, यज्ञोपवीत, हारमेखला तथा अक्षमाला एवं कमण्डल आदि को धारण किये हुये 4 पुरुष आकृतियाँ समभृंग मुद्रा में खड़ी हैं विद्वानों के अनुसार यह 4 पुरुष आकृतियाँ ही चारों वेदों का प्रतिनिधि रूप हैं। दूसरी मूर्ति जबलपुर के पास करीतलाई नामक स्थान से प्राप्त हुयी है। यह प्रतिमा 11वीं सदी ई० की है इस प्रतिमा में भगवान मत्स्य को एक प्रस्तर खण्ड पर अंकित किया गया है जो आकार में विशाल है तथा उसके सम्मुख अंकित स्त्री एवं पुरुषों की आकृतियाँ मत्स्य के देवत्व का बोध कराती हैं। मत्स्य के सम्मुख आकृतियाँ अधिकांश भाग में खण्डित हैं जिससे इन आकृतियों की पहचान करना मुश्किल हो गया है। एक अन्य उल्लेखनीय मत्स्यावतार विष्णु की मूर्ति ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित है इसमें विशालकाय मत्स्य के पृष्ठ भाग में चारों वेदों का प्रतिनिधित्व करती हुयी 4 पुरुषाकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। हिमांचल प्रदेश के चम्बा जनपद के भूरसिंह संग्रहालय में सुरक्षित मत्स्यावतार विष्णु की एक प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है यह मूर्ति 17वीं शती की मानी जाती है। इसमें मत्स्य को एक विकसित पदमपर अंकित किया गया है इस मूर्त फलक के ऊपरी भाग में पूर्ण विकसित 5 पद्मों पर पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए 5 देव पुरुषों की छोटी-छोटी आकृतियाँ मूर्तित की गयी हैं। इस मूर्तिफलक के बायें कोने पर अंकित देव पुरुष का मुख सहित बांयाभाग टूट गया है। इन पंच पुरुषाकृति के मध्य पद्मासन् मुद्रा में बैठी देव प्रतिमा प्रजापति ब्रह्मा की है जिसके अगल-बगल 2-2 छोटी आकृतियाँ चारों वेदों की मानी जाती हैं। इस प्रकार गढ़वा तथा चम्बा से प्राप्त विष्णु की मत्स्यावतार मूर्तियों में चारों वेदों के उद्धार का दिब्य अंकन मिलता है।

मत्स्य रूप विष्णु की आकृति का अंकन सुप्रसिद्ध खजुराहों की नृवराह

मूर्ति की प्रभावली में, कोटा संग्रहालय में सुरक्षित शेषशायी विष्णु की मूर्ति की प्रभावली में तथा राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित यज्ञ वराह के पृष्ठ भाग में अंकित दशावतार के सामूहिक अंकन में प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार बिहार एवं राजस्थान के दो दशावतार पट्टों पर विष्णु के मत्स्यावतार को साधारण मत्स्य के रूप में अंकित किया गया है। इनमें से यज्ञ वराह मूर्ति पर मत्स्य को अंकित करने के बाद उनके ऊपर छोटे-छोटे 4 पुरुष मुख भी रूपायित किये गये हैं जिन्हें चारों वेदों का प्रतिनिधि माना जा सकता है।

अर्द्धमत्स्य अथवा नृमत्स्य रूप में अंकित प्रतिमा में कटि के नीचे का भाग मत्स्य रूप में बनाने तथा ऊपर के भाग को मानवाकृति में बनाने का विधान मिलता है। मानवाकार विष्णु की 4 भुजाओं को बनाने का विधान है। आगे के दोनों हांथों को क्रमशः वरद एवं अभय मुद्रा में अंकित करने तथा पीछे की दोनों भुजाओं में शंख एवं चक्रधारण करने का निर्देश दिया गया है। विष्णु के सिरपर किरीट मुकुट तथा वक्ष एवं अन्यान्य अंगों पर आभूषण अंकित किए जाने का स्पष्ट निर्देश मेरुतन्त्र नामक ग्रंथ में दिया गया है।[37] गढ़वा से प्राप्त नृमत्स्य रूप वाली प्रतिमा का विस्तृत विवरण गोपीनाथ राव ने अपने ग्रंथ[38] में प्रकाशित किया है। इस प्रतिमा में कटि के नीचे का भाग मत्स्य आकार में तथा उसके ऊपर के भाग का आकार मनुष्य रूप में रूपायित किया है। यह 4 भुजा युक्त मत्स्यावतार विष्णु की प्रतिमा है विष्णु के पिछले हांथों में शंख चक्र एवं आगे के हाथ अभयमुद्रा में हैं। इसी प्रकार भट्टाचार्य बिमलचन्द्र ने एक नृमत्स्य प्रतिमा का उल्लेख किया है जो 4 भुजाओं से युक्त है सिर पर मुकुट है तथा शरीर के अंग आभूषणों से अलंकृत हैं। इसके अतिरिक्त भट्टाचार्य ने एक ऊँचा श्रृंग युक्त पूर्णमत्स्य प्रतिमा का भी उल्लेख अपने ग्रंथ

---

37. मेरुतंत्र– पृष्ठ 127

में किया है।[39] एक नृमत्स्य प्रतिमा जो तीन फिट ऊँची है तथा काले पत्थर से निर्मित है बांग्लादेश के ढाका जिले में स्थित योमिनी स्थान से प्राप्त हुयी है जो सम्प्रति वहाँ के एक काली मंदिर की दीवार में स्थापित कर दी गयी है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि नृमत्स्य के दोनों ओर लक्ष्मी तथा सरस्वती अंकित है। तथा विष्णु की 4 भुजाओं में क्रमशः पद्म, चक्र, गदा एवं शंख अंकित किये गये हैं।[40]

---

38. राव गोपीनाथ–एलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी मद्रास 1914 भाग 1 पृष्ठ 218

39. भट्टाचार्य विमलचन्द्र–इण्डियन इवजेज कलकत्ता 1921 पृष्ठ 19

40. द्रष्टव्य इन्दुमती प्रतिमाविज्ञान पृष्ठ 193

अध्याय 3

कच्छप अवतार

महाभारत[1] एवं पुराणों में विष्णु के कूर्मावतार का विशद् वर्णन मिलता है। इनमें वर्णित कथा के अनुसार समुद्र मंथन के समय देवताओं की प्रार्थना से विष्णु ने कूर्म का रूप धारण करके अपने पृष्ठ पर मंदराचल को धारण कर लिया था ताकि वह समुद्र तल में धंस न जाय। देवताओं एवं असुरों ने मंदराचल को मंथनदण्ड बनाकर समुद्र मंथन किया था। शतपथ ब्राह्मण[2] में कूर्म को प्रजापति ब्रह्मा का अवतार बताया गया है। कूर्म शब्द की अनेक व्याख्यायें प्रस्तुत की गयी हें। इसका एक तात्पर्य सृष्टि क्रिया अथवा सृष्टि रचना से लिया जाता है (कूर्म = कृ = करना + औणादिक मनिन्)। कुछ विद्वान कूर्म का दूसरा नाम कश्यप मानते हैं सम्पूर्ण प्रजा कश्यप की ही संतान मानी गयी है।[3]

शतपथ ब्राह्मण में कूर्म को पृथ्वी एवं अन्य लोकों का रस कहा गया है। जिस प्रकार रस में वस्तु विशेष का सम्पूर्ण सार निहित होता है। उसी प्रकार कूर्म तीनों लोकों का रस अर्थात् आत्मा है।[4]

1. महाभारत 1.18.11-13– ''मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम्।
देवामथितुमारब्धाः समुद्रं निधिनम्भसाम्।।''
2. शतपथ ब्राह्मण 7.5.1.5– ''स सत् कूर्मो नाम। एतद्वैरूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजाः असृजत। यद्सृजत अकरोत् तत, यदकरोत् तस्मात कूर्मः। कश्यपो वै कूर्मः। तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति।''
3. द्रष्टव्य त्रिपाठी गयाचरण– वैदिक देवता– उद्भव एवं विकास पृष्ठ 364, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली–वाराणसी प्रथम संस्करण 1981
4. शतपथ ब्राह्मण 7.5.1.1– ''रसौ वै कूर्मः।। यो वै स एषां लोकानाम् अप्सु प्रविद्वानां पराङ्ग रसः अत्यक्षरत् स एष कूर्मः। यावानु वै रसः तावानात्मा। स एष इम एव लोकाः एवं 6.1.1.12 ''सोऽकामयत आभ्यः अदभ्यः अधि इमां प्रजानयेयम् इति। तां संक्लिश्य'' अस्सु प्राविध्यत्। तस्यै य पराङ् रसः अत्यक्षरत। कूर्मः अभवत्।।''

तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि प्रजापति के शरीर से रस कम्पायमान हुआ। विशाल जलराशि के भीतर उसे कूर्म रूप में विचरण करते हुए देखकर प्रजापति ने उसे अपना अंशावतार बताया इसे सुनकर कूर्म ने उत्तर दिया कि मैं आपके अंश से उत्पन्न नहीं हूँ बल्कि आपसे भी पहले मैं ही था। इसीलिये उसे उक्त आख्यक ग्रन्थ में पुरुष संज्ञा प्रदान की गयी है। उस पुरुष के हजार सिर थे, हजार आंखें थी तथा हजार पैर थे। उपर्युक्त आरण्यक के भाष्य में उक्त कूर्म रूप को परमात्मा से अभिन्न बताया गया है।[5] उपर्युक्त आरण्यक में कूर्म को पुरुष कहकर ऋग्वेद के पुरुषसूक्त[6] की ओर निर्देश किया है जिसमें जगत के मूलकारण पुरुष को बताया गया है। कूर्म और पुरुष का तादात्म्य शतपथ ब्राह्मण में भी संकेतिक किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि कूर्म जीवों का प्राण है, अथवा वही जीवों की चेतनाशक्ति है।[7] मैकडानल[8] एवं कीथ[9] प्रभति विद्वानों ने शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय आरण्यक में वर्णित उपर्युक्त विवरणों के आधार पर सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी वैदिक अवधारणाओं में कूर्म अवतार को विष्णु के कूर्मावतार की पृष्ठभूमि स्वीकार किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कूर्म का पुरुष से तथा त्रिलोकी से तादात्म्य विष्णु से किसी न किसी प्रकार जुड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। शतपथ ब्राह्मण[10] में कूर्म के खोल के ऊपर-

---

5. तैत्तिरीय आरण्यक 1.23.3– ''यो रसः सः अपाम् इति अन्तरतः कूर्मभूत-पर्यन्तं तमब्रवीत् मम वै त्वङ्मांसात् समभूत। नेत्यब्रवीत। पूर्वमेवाह मिहासमिति। तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम्। स सहस्त्रशीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् भूत्वोदतिष्ठति।''

6. ऋग्वेद 10.90

7. शतपथ ब्राह्मण– 7.5.1.7 ''प्राणो वै कूर्मः। प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति।''

8. दृष्टव्य मैकडानल–जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी भाग 27 पृष्ठ 166-68 (सन् 1897)

9. दृष्टव्य कीथ–रिलीजन एण्ड फिलास्फी आफ द वेद एण्ड दी उपनिषद भाग 1 पृष्ठ 112

10. शतपथ ब्राह्मण– 7.5.12

नीचे की परत तथा शरीर मिलाकर त्रिलोकी के रूप में वर्णित किया गया है। ज्ञातब्य है कि वैदिक ग्रन्थों में विशेष रूप से ऋग्वेद[11] में ही विष्णु को संसार के त्रैधाविभाजन से जोड़ने का प्रयास मिलता है। कूर्म का सृष्टि के मूलतत्व पुरुष से तादात्म्य तथा पुरुष के लिए नारायण विशेषण का प्रयोग नारायण एवं विष्णु में तादात्म्य इस बात को इंगित करता है कि महाभारत एवं पुराणों के काल तक आते आते कूर्म का सम्बन्ध प्रजापति से हटकर विष्णु के साथ सम्बद्ध हो गया।

महाभारत एवं पुराणों में कूर्मावतार की जो कथा प्राप्त होती है तथा कूर्मावतार का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह उपर्युक्त वैदिक अवधारणाओं से बिल्कुल भिन्न है क्योंकि समुद्र मंथन के समय अवतरित होने वाला कूर्म सृष्टि रचना से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित नहीं दिखलाई पड़ता है मत्स्य पुराण में इस बात का संकेत किया गया है कि जब वराह भगवान ने पृथ्वी को ऊपर उठाया तो अपना एक पैर पृथ्वी को धारण करने वाले कूर्म की पीठ पर रखा था– ''कूर्म पृष्ठे पदं न्यस्य निश्चकाम् रसातलात।'' इतना ही नहीं उक्त पुराण में वराह विष्णु के प्रतिमा निर्माण करते समय यह निर्देश दिया गया है कि वराह का एक पैर कूर्म के पृष्ठ पर अवश्य अंकित किया जाना चाहिए[12] ज्ञातब्य है कि शतपथ ब्राह्मण[13] में श्रौत यज्ञों के लिए वेदी की नींव में सबसे नीचे एक कूर्म की खोल रखने का विधान किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक युग में भी पृथ्वी को कूर्मपृष्ठ पर आधारित होने का विश्वास अवश्य प्रचलित रहा होगा। मार्कण्डेय पुराण में एक स्थल पर कूर्म को पृथ्वी का आधार बताया गया है। (प्राङ्मुखो भगवदेन्ववः कूर्मरूपी व्यवस्थितः)। कच्छप को पृथ्वी

---

11. ऋग्वेद 1.22.18, 1.22.66, 1.154.4

12. मत्स्यपुराण 259.30– कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रम मूर्धनि।

    संस्तूयमानो लोकेशैः समन्तात परिकल्पयेत्।।

13. शतपथ ब्राह्मण 7.5.1.1

का आधार मानने की परिकल्पना भारत के अतिरिक्त विश्व की अनेक संस्कृतियों में प्राप्त होती है चीन, जापान आदि देशों के लोक विश्वास में पृथ्वी को स्थिर रखने के लिए तीन-तीन कछुओं के आधार का उल्लेख मिलता है।[14]

महाभारत[15] में आख्यात है कि समुद्र मंथन के समय जब मथानी के रूप में प्रयुक्त मन्दराचल पर्वत समुद्र में धंसने लगा दो देवताओं एवं असुरों ने पृथ्वी को धारण करने वाले कूर्म को बुलाकर उससे मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण करने के लिए निवेदन किया था। इस प्रकार महभारत में इस बात का संकेत किया गया है कि समुद्रमंथन के समय मंदराचल पर्वत को धारण करने वाला कूर्म विष्णु का अवतार न होकर प्राचीन लोक विश्वास परम्परा में प्राप्य पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण करने वाला कूर्म प्रतीत होता है। इसी बात का संकेत मत्स्य पुराण में भी किया गया है।[16] मत्स्य पुराण में कूर्म को विष्णु का सीधा अवतार नहीं कहा गया है किन्तु उसे विष्णु के तेज के चतुर्थांश से युक्त अवश्य कहा गया है। जिसके बल पर वह पृथ्वी को धारण करता है।[17] विष्णु पुराणोक्त इसी उल्लेख को कूर्म के रूप में विष्णु के अवतार का मूल माना जाता है आगे चलकर वैष्णव पुराणों में कूर्म को विष्णु का अवतार विस्तार पूर्वक

---

14. द्रष्टव्य मैकेन्जी ए डोनाल्ड (संपा०) मिथस आफ चाइना एण्ड जापान पृष्ठ 111-112) 140, 280

15. महाभारत–आदि पर्व 18-11, 12– ''उचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः।
अधिष्ठानं गिरेरस्य भवान भवितुमर्हति।।''
''कूर्मेण तू तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समपर्पितम्।
तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं वज्रेणेन्द्रो न्यपीडयत्।।''

16. मत्स्य पुराण– 248.26– ''त्रैलोक्य धारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते।
किमु मन्दरकात् क्षुदात् घुटिकासंनिभादिह।।''

17. वही– 248.27– ''विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद् धरण्या धारणे स्थितौ।।''

व्याख्यायित किया गया है। मत्स्य पुराण में विष्णु के केवल 7 अवतारों का वर्णन मिलता है जिनके नाम हैं मत्स्य, वराह, वामन, नृसिंह, परशुराम, राम और कृष्ण। इन अवतारों में कूर्म अवतार का उल्लेख नहीं किया गया है।

बाल्मीकि कृत रामायण में समुद्रमंथन के प्रसंग में प्रकट होने वाले कूर्म का विष्णु से तादत्म्य स्थापित नहीं किया गया है[18] परन्तु रामायण[19] के दाक्षणात्य संस्करण में विष्णु के कूर्मावतार का स्पष्ट वर्णन किया गया है। विष्णु पुराण[20] में विष्णु के कूर्मावतार का विशद् वर्णन मिलता है।

भागवद पुराण[21] में विष्णु के कूर्म अवतार ग्रहण करने की कथा विस्तार पूर्वक वृवीत है। इसमें कहा गया है कि असुरों द्वारा पराजित इन्द्र सभी देवताओं के साथ ब्रह्मा जी के पास गए ब्रह्मा उन देवताओं' के साथ वैकुण्ठ धाम पहुंचे तथा विष्णु की स्तुति करने लगे। भगवान विष्णु ने उन सबकी स्तुति से प्रशन्न होकर उन्हें यह सुझाव दिया कि वे समुद्र में औषधियों को डालकर मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर तथा वासुकी नाग को नेती (रस्सी) के रूप में जोड़कर समुद्रमंथन करें। समुद्र मंथन से निकलने वाले अमृत को पीकर देवतागण अमर एवं शोभायुक्त हो सकेंगे। देवताओं ने सब वस्तुओं को एकत्रित कर समुद्रमंथन

---

18. द्रष्टव्य जे० खोण्डा– आस्पेक्टस०, खण्ड 18 पृष्ठ 127

19. बाल्मीकि रामायण– बालकाण्ड 45-29– इति श्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रुपमास्थितः।
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रौदाधौ हरिः।।

20. विष्णु पुराण– 1.9.88– श्रीरोदमध्ये भगवानकूर्मरूपी स्वयं हरिः।
मन्थनाद्रेरधिष्ठानं भृमतोऽभून्महामुने।।

21. भागवद् पुराण– 8.7.8 विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरौ
दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः।
कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्
प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार।।

का कार्य प्रारम्भ किया। मन्दराचल पर्वत इतना भारी एवं विशाल था कि समुद्र में डालने पर वह भीतर धसने लगा उसे समुद्र में धंसता हुआ देखकर सभी देव एवं असुर ब्याकुल होने लगे विष्णु ने सबको दुखी देखकर उनके सम्मुख आए इस विघ्न को दूर करने के लिए एक अत्यन्त विशाल एवं शक्तिशाली कच्छप का रूप धारण करके समुद्र के जल में प्रविष्ट हो गए। तथा समुद्र के तल में जाकर मन्दराचल पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर लिया। भागवद् पुराण में भी कहा गया है– कि भगवान कच्छप की पीठ जम्बूद्वीप के समान 1 लाख योजन पर्यन्त फैली हुयी थी जिस पर मन्दराचल को उन्होंने धारण कर रखा था।[22] देवताओं एवं असुरों के बाहुबल से प्रेरित मन्दराचल भगवान कच्छप की पीठ पर चक्कर काटने लगा उस पर्वत का पीठ पर चक्कर लगाना आदिकच्छप को ऐसा लग रहा था जैसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो।[23] कच्छपावतार के समय भगवान विष्णु केवल कच्छप का ही रूप नहीं बल्कि अज्ञात रूप से देवताओं एवं असुरों की शक्ति एवं दृढ़ता के रूप में और नेती बने हुए वासुकी नाग के शरीर की मुद्रा के रूप में ताकि उसे कष्ट न हो तथा मन्दराचल में भार के रूप में ताकि वह इधर उधर झुके न। सबमें अदृश्य रूप में प्रवेश करके सबको शक्ति सम्पन्न कर दिया था।[24]

---

22. भागवद् पुराण– 8.7.9– ''तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः
समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः।
दधार पृष्ठेन स लक्ष्योजन
प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान।''

23. वही 8.7.10– ''विभ्रत् तदावर्तनमादिकच्छपो
मेनेऽङ्गकण्डूयनम प्रमेयः।।''

24. वही 8.7.13– उपर्यधश्वात्मनि गोत्रनेत्रयोः
परेण ते प्राविशता समेधिताः।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा
महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम।।

विष्णु के कच्छप अवतार की कथा अग्नि पुराण,[25] शिवपुराण[26] स्कन्द पुराण[27] में भी विस्तार पूर्वक आख्यात है। पुराणों के अतिरिक्त शिल्पग्रन्थों में भी विष्णु के कूर्मावतार का वृत्तांत विशदरूप से वर्णित है। अपराजितप्रच्छा के अनुसार एक बार क्षीर सागर में विद्यमान लक्ष्मी, सुरधेनु, अमृत, शंख, गजराज, आदि 14 रत्नों की प्राप्ति के लिए सभी जीवधारियों ने मिलकर जिनमें देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, आदि सम्मिलित थे मंदराचल पर्वतको मथानी बनाकर तथा वासुकी नाग को नेती के रूप में प्रयोग कर क्षीरसागर का मन्थन किया था। परन्तु मंथन करते समय किसी शक्तिशाली आधार के अभाव में मंदराचल पर्वत क्षीरसागर में टिक नहीं पा रहा था असहाय स्थिति में उपर्युक्त समस्त जीवधारियों ने मिलकर भगवान विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने कच्छप का रूप धारण करके समुद्र में प्रवेश कर मंदराचल को अपनी पीठ पर धारण कर लिया।[28] इस ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि सागर मंथन करते समय मंदराचल के एक ओर समस्त देवतागण नेती पकड़कर खड़े थे तथा दूसरी तरफ दैत्यदल के साथ दैत्येन्द्र बलि उपस्थित थे[29] इस प्रकार अपराजितप्रच्छा मे प्राप्य उक्तवर्णन भागवद, शिव, अग्नि, स्कन्द आदि पुराणों में उपलब्ध विष्णु के कूर्मावतार की कथा से पर्याप्त साम्य रखता है।

पुराणों एवं शिल्पशास्त्रों में विष्णु के कूर्मावतार मूर्तिरूप को दो प्रकार से निर्मित करने का आदेश दिया गया है।

(1) पूर्णकूर्मरूप एवं

---

25. अग्नि पुराण– 3.1.8
26. शिव पुराण– 2.5.16
27. स्कन्द पुराण 2.9.18, 19, 5.3.151, 9.7.2.18, 55.56
28. पराजितप्रच्छा 24.1-8
29. वही 24.11

(2) नृकूर्म रूप

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में यह निर्देश किया गया है कि भगवान विष्णु नारायण के कूर्मावतार रूप को कूर्म अथवा कच्छप रूप में निर्मित किया जाना अभीष्ट है।[30] इसी प्रकार का वर्णन मत्स्य पुराण[31]` अग्निपुराण[32] तथा गरुण पुराण[33] एवं अन्य पुराणों में प्राप्त होता है। अपराजितपृच्छा की भांति रूपमंडन में भी कूर्मरूप में विष्णु के कूर्मावतार की मूर्ति को निर्मित किए जाने का निर्देश दिया गया है।[34] यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि देवता मूर्तिप्रकरण शिल्पग्रन्थ में कूर्मावतार विष्णु के प्रतिमा लक्षण का उल्लेख नहीं मिलता हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[35] के अनुसार कूर्म अवतार ग्रहण करने वाले विष्णु के महाकूर्म रूप को कमठाकृति अर्थात् पूर्णतया कच्छप रूप में निर्मित किए जाने का निर्देश दिया गया है। अन्यत्र इसी पुराण में मंदर पर्वत को अपनी कमठ पर धारण करने वाले कूर्मावतार विष्णु को कूर्म रूप में रूपायित करने का

---

30. विष्णुधर्मोत्तर पुराण– 3.85.57.58 ''रूपं नरस्य कथितं तथा नारायणस्यते।
    कृष्णस्य हरिणा सार्धं पूर्वं वरुण सुनूना।
    हंसो मत्स्यस्तथा कूर्मः कार्यास्तद्रूपधारिणः।।''
31. मत्स्य पुराण– 249.27– ''विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ।
    ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनम शेष कच्छपौ।।''
32. अग्नि पुराण– 49.1
33. गरुण पुराण– 1.1.24-187.16
34. दृष्टव्य श्रीवास्तव बलराम द्वारा सम्पादित रूपमंडन अध्याय 3, श्लोक संख्या 24
    ''मत्स्यकूर्मो स्वस्वरुपरूपौनृवराहो गदाम्बुजम।
    विभृत्स्यामो [विभ्रच्श्यामो]
    वराहास्यो दंष्ट्राग्रे तु धृता धरा।।''
35. विष्णुधर्मोत्तर पुराण– 3.85.58

विधान दिया गया है।[36] भागवद पुराण में भी कच्छपावतारी विष्णु को इसी रूप में दर्शाया गया है।[37] अपराजितपृच्छा में कूर्म प्रतिमा को बर्तुलाकार सुन्दर आकृति वाला, पीला वर्णक, निर्मल ज्योतिवाला, श्वेत एवं पीत वर्ण के पैर वाला बनाये जाने का विधान दिया गया है।[38] ध्यातब्य है कि रूपमण्डन में भी विष्णु के कूर्मावतार रूप को कूर्म आकार में ही निर्मित किए जाने का विधान दिया गया है।[39] कूर्मावतार विष्णु को कच्छप रूप में रूपायित होने का वर्णन विभिन्न पुराणों के अतिरिक्त शिल्पग्रन्थ मानसोल्लास[40] में भी, उपर्युक्त परम्परा का पोषण करते हुए तथा शिल्परत्न में भी विष्णु को कूर्मावतार के प्रसंग में कूर्म के आकार में ही मूर्तित करने का विधान दिया गया है।[41]

मूर्ति रूप में कूर्मावतार विष्णु का अंकन उत्तरी भारत से प्राप्त प्रतिमाओं में दो रूपों में मिलता है –

(1) सामान्य कूर्म आकृति के रूप में तथा

(2) समुद्र मंथन के दृष्य के साथ कूर्म के रूप में।

---

36. वही 3.106.92– हंस शीघ्रं त्वमभ्येहि सर्वज्ञानविनाशन
कूर्ममावाहयिष्यामि धृतमन्दर पर्वतम्।।''

37. भागवद् पुराण 8.7.10 सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यबेपितं
परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः।
बिभृत तदावर्तनमादिकच्छपो
मेनेऽङ्ग कण्डूयनमप्रमेयः।।

38. अपराजितपृच्छा 24.8-9

39. रुपमण्डन– 324 (मत्स्य कूर्मो स्वस्वरूपौ)

40. मानसोल्लास 2.3.1.715

41. शिल्परत्न 2.25.123

सामान्य कूर्म के रूप में कूर्मावतारी विष्णु की एक प्रतिमा भारत कला भवन वाराणसी में सुरक्षित है जिसमें विष्णु के विशाल कमठ का सजीव अंकन किया गया है। इसी प्रकार की दो प्रतिमाएं प्रताप संग्रहालय उदयुपर में संग्रहीत हैं जिनके कमठ का अंकन दर्शनीय है। कूर्मावतार विष्णु की एक मूर्ति जबलपुर जनपद के करीतलाई नामक ग्राम में स्थापित मिलती है यह विशालकाय कूर्मावतार विष्णु को एक प्रस्तरखण्ड पर निर्मित किया गया है देवता के सम्मुख पद्मासन की मुद्रा में बैठी एक द्विभुजी देवी को अंकित किया गया है जिसका मुख एवं दोनों हांथ खण्डित हैं फलस्वरूप इस आसीन देवी की सही पहचान नहीं हो सकी है। कूर्म का मुख भाग नष्ट हो चुका है कमठ के बाहर निकली हुई उसकी ग्रीवा में मुक्तामाला का अलंकरण है। देवता का विशाल आकार और उसके सम्मुख किसी देवी की उपस्थिति कूर्मावतार विष्णु के देवत्व की सूचक प्रतीत होती है। भारत कला भवन वाराणसी में सुरक्षित कूर्म की मूर्ति वर्तुलाकार है उसकी लम्बी निकली हुई ग्रीवा पर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए आलीढ़ मुद्रा में चतुर्भुज विष्णु की एक खड़ी प्रतिमा अंकित मिलती है।[42] इसी प्रकार प्रतापसंग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित विष्णु के कूर्म रूप की एक प्रतिमा एक शिला फलक पर कल्प वृक्ष के ऊपर स्थित मिलती है तथा देवता के नीचे प्रसरित उसी वृक्ष की लताओं के मध्य चतुर्भुज विष्णु के चारों आयुध अंकित किए गये हैं।[43]

कूर्मावतार विष्णु के कूर्म रूप में अंकित प्रतिमाओं में खजुराहो भित्ति पर प्राप्त कूर्म प्रतिमा भी उल्लेखनीय है। खजुराहो भित्ति पर अंकित योगासन

---

42. द्रष्टव्य-देसाई कल्पना यश आइकोनोग्राफी ऑफ विष्णु पृष्ठ 68 फलक संख्या 55, नई दिल्ली,1973

43. द्रष्टव्य-हामिद कुरैसी एम० एम०– हैण्ड बुक आफ विक्टोरिया हाल म्यूजियम उदयपुर, जयपुर, पृष्ठ 16 1961

विष्णु मूर्ति के पादुपीठ पर उकेरी कूर्म प्रतिमा पर वैष्णव लांछन स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।[44] इसी प्रकार की मूर्तियाँ राजस्थान के मेड़ता [45] तथा चित्तौड़गढ़[46] से भी प्राप्त हुई हैं। कोटा संग्रहालय राजस्थान से एक शेषशायी विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है जिस पर कूर्मरूप विष्णु का अंकन किया गया है। इसी प्रकार राजकीय संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित यज्ञ वराह की मूर्ति की पीठ पर अंकित विष्णु के दशावतार के रूपों में विष्णु का कूर्म रूप अंकित किया गया है। खजुराहो से प्राप्त नृवराह मूर्ति की प्रभावली में विष्णु के कूर्मरूप को साधारण कच्छप रूप में अंकित किया गया है। बिहार प्रदेश से प्राप्त एक दशावतार पट्ट पर विष्णु का कूर्म अवतार रूप अंकित मिलता है।[47]

साधारण कूर्म रूप के अतिरिक्त विष्णु को उत्तरी भारतीय मूर्तिशिल्प में समुद्र मंथन दृश्य के साथ भी अंकन किया गया है। चित्तौड़गढ़ राजस्थान में स्थित कालिकामाता मंदिर में अंकित एक प्रतिमा में समुद्र में विशाल कूर्म की पीठ पर स्थित एक घर के भीतर एक अष्टकोणीय स्तम्भ के आकार के रूप में दो पुरुषों द्वारा वासुकी नाग को नेती बनाकर समुद्रमंथन करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इसमें स्तम्भ मन्दराचल पर्वत रूपी मथानी के रूप में अंकित किया गया है। ध्यातव्य है कि शिल्पग्रन्थ अपराजितपृच्छा में इस बात का निर्देश किया गया है कि मन्दराचल पर्वत की मथानी के दायीं ओर पुरुषाकृति देवताओं की प्रतिनिधि प्रतीक तथा बायीं ओर की पुरुषाकृति दैत्यों की प्रतिनिधि प्रतीक

---

44. दृष्टव्य अवस्थी रामाश्रय–खजुराहो की देव प्रतिमाएं पृष्ठ 94

45. दृष्टव्य राजस्थान भारती 4, 4 पृष्ठ 32

46. दृष्टव्य– चित्तौड़गढ़ के प्रसिद्ध कुम्भश्याम मंदिर के महामंडप में अंकित एक विशाल मूर्तिफलक पर अंकित कूर्मावतार विष्णु का रूप।

47. दृष्टब्य मुकर्जी आर० के० द कास्मिक आर्ट आफ इण्डिया बम्बई 1965 चित्र संख्या 27

अथवा दैत्यराज बलि के प्रतीक के रूप में अंकित माना जा सकता है। इस प्रतिमा में मूर्तिफलक के ऊपरी हिस्से पर अनेक देवी देवताओं को समुद्रमंथन के दृश्य का अवलोकन करते हुए दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त अष्टकोणीय दण्डाकार स्तम्भ जो मंदराचल का प्रतीक है के ऊपरी भाग पर लक्ष्मी की आकृति अंकित की गयी है। समुद्र मंथन के समय 14 रत्नों में लक्ष्मी की प्राप्ति की कथा अनेक पुराणों में वर्णित मिलती है।[48] इसी प्रकार का उल्लेख अपराजित प्रच्छा में भी मिलता है।[49]

गढ़वा (इलाहाबाद जनपद) से 10वीं सदी ई० की कूर्म रूप विष्णु की एक प्रतिमा प्राप्त हुयी है इसमें कूर्म को पद्म पत्र पर स्थित दिखाया गया है उनके गले में इकहरी मुक्ता माला है। तथा पृष्ठ भाग पर दण्ड के आकार में मंदराचल पर्वत को आधारित दिखाया गया है। मन्दराचल मथानी के दायीं ओर एक पुरुष आकृति तथा बायीं ओर तीन पुरुषाकृतियाँ अंकित की गयी हैं। ये नेती के रूप में प्रयुक्त वासुकीनाग को पकड़कर समुद्र मंथन करते दिखाये गये हैं ये पुरुषाकृतियाँ देवों एवं असुरों की हैं जो समुद्र मंथन में व्यस्त थे। इस फलक के ऊपरी भाग पर ब्रह्मादिक देव देवियों की आकृतियों को अंकित किया गया है जो बड़ी उत्सुकता के साथ सागर मंथन का अवलोकन करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

उत्तरांचल प्रदेश में स्थित हरिद्वार से कूर्म की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें कूर्म की पीठ पर दण्डाकार मन्दराचल को वासुकीनाग रूपी रस्सा पकड़े हुए देवताओं एवं असुरों को प्रदर्शित किया गया है।[50] राजकीय संग्रहालय

---

48. भागवद् पुराण 8.8.8– ततश्चाविरभूत साक्षाच्छी रमा भगवत्परा।

रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत सौदामिनी यथा।।

49. दृष्टब्य अपराजितपृच्छा 24.32

50. दृष्टब्य अग्रवाल वासुदेवशरण स्टडीज इन इण्डियन आर्ट पृष्ठ 267 फ्लक संख्या 158

ग्वालियर में साधारण कूर्म रूप में अंकित कूर्म रूप की दो मूर्तियाँ सुरक्षित की गयी हैं जिनमें से प्रथम मूर्ति बदोह नामक स्थान से तथा दूसरी ग्वालियर से प्राप्त हुई है। बदोह से प्राप्त मूर्ति लगभग 10वीं सदी की प्रतीत होती है दण्डाकार मन्दराचल को विशालकाय कूर्म की पीठ पर टिकाया गया है उसके मध्य में रस्सी की तरह वासुकी नाग लिपटा हुआ है इस दण्ड के दायीं ओर चक्रधारी चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा अंकित की गयी है तथा बायीं ओर सर्प के फण को पकड़े हुए दैत्येन्द्र बलि की स्थानक प्रतिमा उकेरी गयी है। मूर्तिफलक के ऊपर समुद्र मंथन के फलस्वरूप प्रगट हुए लक्ष्मीचन्द, ऐरावत धन्वन्तरि, कामधेनु आदि पंक्तिबद्ध निर्मित किए गए हैं। इस प्रकार का अंकन पुराणों में प्रस्तुत कथा तथा शिल्पग्रन्थ अपराजितप्रच्छा के विवरण से बहुत कुछ मेल खाता है।[51] ग्वालियर से प्राप्त कूर्म रूप की दूसरी मूर्ति लगभग 12वीं सदी की प्राप्त होती है। इस मूर्ति फलक पर मूर्ति को कमल के पत्ते पर स्थित कराया गया है तथा उसकी पीठ पर दण्डाकार मंदराचल को अंकित किया गया है। मन्दराचल के दोनों ओर दो देवता एवं दो दैत्य प्रतिमाएं क्रमशः दायें एवं बायें उकेरी गयी हैं। कूर्म की पीठ पर ही समुद्र मंथन से निकले हुए धन्वन्तरि ऋषि की प्रतिमा अंकित की गयी है जो पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए दिखाये गये है उनके बाएं हांथ में कमण्डल है तथा दायाँ हांथ टूट चुका है। धन्वन्तरि के अगल बगल दो उपासकों की मूर्ति उकेरी गयी है। इस प्रतिमा में भी दण्डाकार मन्दराचल के शीर्ष पर एक देवी मूर्ति अंकित दिखायी पड़ती है जिसकी पहचान अधिक सम्भावना के साथ लक्ष्मी से की जा सकती है। संयोगवश देवी की यह प्रतिमा बहुत कुछ खण्डित हो चुकी है। इसी प्रकार मूर्ति फलक के ऊपरी दोनों किनारों पर विद्याधरों की भी खण्डित आकृतियाँ रुपायित मिलती हैं। अपनी कला रचना में ग्वालियर संग्रहालय की ये मूर्तियाँ कई-दृष्टि से विलक्षण एवं अप्रतिम प्रतीत होती हैं।

---

51. भागवद पुराण 8.8-31-35 तथा अपराजितप्रच्छा 24.16

मध्य प्रदेश में खजुराहों से भी कूर्म रूप विष्णु की एक प्रतिमा लक्ष्मण मंदिर से प्राप्त हुई है। जिसमें पुराणोक्त एवं शिल्पशास्त्रोक्त समुद्र मंथन की कथात्मक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है।[52] कूर्मावतार विष्णु की मूर्तियाँ राजस्थान में हरफान बोहरा से[53] नागदा[54] सादणी [55] किराडु [56] तथा जगत [57] इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुई है।

मध्य प्रदेश में पठारी से प्राप्त गुप्तोत्तर युगीन मंदिर में कूर्मावतार विष्णु का मूर्तन मिलता है। मंदिर के भीतर बने एक उत्कीर्ण भाष्कर्य शिलाफलक पर विष्णु के दशावतारों को अंकित किया गया है। कलाविद विगलर ने इन अवतार रूपों में मत्स्य रूप को छोड़कर शेष नव अवतार रूपों की स्पष्ट रूप से पहचान प्रस्तुत की है। इसमें समुद्र मंथन के कथानक का स्पष्ट अंकन करते हुए विष्णु के कूर्मावतार को दर्शाया गया है।[58]

समुद्र मंथन के दृश्य के साथ कूर्म की एक प्रतिमा कांचीपुरम से प्राप्त हुई है[59] यह प्रतिमा कांची के कैलासनाथ एवं वैकुण्ठ पेरुमल मंदिर से प्राप्त हुई है वर्तमान में इसका रूप बहुत कुछ बिगड़ गया है।

विष्णु को नृकूर्म रूप में अनेकत्र अंकित किया गया है नृकूर्म रूप में विष्णु का नीचे का आधा शरीर कछुये के समान तथा ऊपर का आधा भाग

52. दृष्टब्य अवस्थी रामाश्रय खजुराहो की देव प्रतिमाएं पृष्ठ 94 चित्र 27

53. राजस्थान भारती 4.4 पृष्ठ 12

54. मरुभारती 13, 2 पृष्ठ 2.3

55. वही पृष्ठ 2.3

56. मार्ग वाल्यूम 12, 2 मार्च 1959 पृष्ठ 47 फलक संख्या 3

57. मरु भारती पृष्ठ 2.3

58. दृष्टव्य आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट जिल्द 7 पृष्ठ 77

59. दृष्टव्य– रिया पल्लव आर्किटेक्चर प्लेट 33 मूर्तिफलक 3

मनुष्य के समान चार भुजाओं से युक्त निर्मित करने का विधान मिलता है।[60] इस रूप में देवता अपने चारों भुजाओं में से पीछे की दोनों भुजाओं में क्रमशः शंख एवं चक्र धारण करते हुए तथा आगे की दोनों भुजाओं को अभय एवं वरद मुद्रा में रखते हुए दिखाये गये हैं। कूर्मावतार विष्णु की केवल कूर्म रूप में प्रतिमाएं बहुत कम मिलती हैं अधिकतर प्रतिमाओं में समुद्र मंथन के दृश्य के साथ कूर्म को अंकित किया गया है। खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर में विष्णु के कूर्म रूप के साथ-साथ नरकूर्म विग्रह को भी अंकित किया गया है नरकूर्मविग्रह के रूप में योगासन में बैठे विष्णु के पैरों के नीचे कूर्म को उकेरा गया है। उड़ीसा प्रदेश में भूवनेश्वर मंदिर के गौरी मंदिर में नरकूर्म रूप की एक मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है जिसमें विष्णु के ऊर्ध शरीर को कूर्म के मुख से निकलता हुआ दिखाया गया है। किरीट मुकुट से सुशोभित इस प्रतिमा में विष्णु चार भुजाओं से युक्त हैं जिनमें क्रमशः पद्म, शंख, गदा एवं चक्र आयुध अंकित किए गये हैं।[61] भुवनेश्वर के मणिभद्रेश्वर मंदिर की जंघा की एक शिलाफलक पर विष्णु के कूर्मविग्रह रूप को रूपायित किया गया है।[62]

---

60. दृष्टव्य राव गोपीनाथ–एलीमेन्टस ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी वाल्यूम 1 भाग 1 पृष्ठ 219

61. विशेष विवरण के लिए दृष्टव्य तिवारी मारुतिनन्दन एवं कमल गिरि ''मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण'' पृष्ठ 82 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण 1997

62. वही– दृष्टव्य तिवारी मारुतिनन्दन एवं कमल गिरि ''मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण'' पृष्ठ 82

अध्याय 4

वराह अवतार

विष्णु के बाराह अवतार के बीजांकुर के रूप में ऋग्वेद में[1] वराह रूप का उल्लेख किया गया है। इसमें आख्यात है कि शक्तिशाली धनुर्धारी विष्णु ने पर्वत को विदीर्ण करते हुए उसके पीछे रहने वाले वराह को आहत कर डाला और पका हुआ अन्न अपहृत कर लिया। ऋग्वेद के एक दूसरे मंत्र में लगभग इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है जिसमें ऋषि इन्द्र से कहता है कि हे इन्द्र तुम्हारे द्वारा प्रेरित त्रिविक्रम विष्णु सौमहिष, पायस अथवा खीर तथा एक भयंकर सूकर (एमुष) को उठा ले गये।[2]। अधिकांश विद्वानों ने ऋग्वेद के मंत्र (1.61.7) (''मुषायद विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता'') में वराह वध को इन्द्र द्वारा वृत्तवध का प्रतीकात्मक वर्णन स्वीकार किया है।[3] विष्णु के वराह अवतार का वर्णन तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में मिलता था। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि पहले इस संसार में एकमात्र जल ही विद्यमान था प्रजापति वायु के रूप में उसमें विचरण करने लगे वहाँ उन्होंने जल में डूबी हुयी पृथ्वी को देखा तब वह वराह का रूप धारण करके उसे बाहर निकाला[4] फिर ब्रह्मा का रूप धारण करके उन्होंने उसका जल पोंछा

---

1. ऋग्वेद– 1.61.7

2. वही– 8.77.10 विश्वा इत् ता विष्णुराभरत उरुकमस्त्वेषितः।

शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्।।

3. दृष्टव्य–मैकडानल : वैदिक मैथालजी पृष्ठ 43 तथा 151

4. तैत्तिरीय संहिता– 7.1.5.1

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत। तस्मिन प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्।

स इमाम पश्यत। तं वराहो भूत्वाऽहरत्।।

तथा उसे चपटी बनाया। इसे चपटी किए जाने अर्थात् फैलाए जाने के कारण इसे पृथ्वी कहा जाता है।[5] इस संहिता के ब्राह्मण अर्थात् तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रजापति के द्वारा पृथ्वी के उद्धार की इस कथा को पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।[6] तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि पृथ्वी का उद्धार करने वाले प्रजापति जो काले वराह के रूप में थे उनके एक सहस्त्र हांथ थे[7] महानारायणी उपनिषद[8] तथा पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड में इसी आशय का एक श्लोक मिलता है– ''उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना''।[9]

शतपथ ब्राह्मण में विवृत है कि प्रजापति ने वराह का रूप धारण किया उन्हें पृथ्वी का पति कहा गया है।[10] उक्त ब्राह्मण में यज्ञ में प्रवर्ग के लिये धर्मपात्र बनाते समय वराह द्वारा खोदी गयी मिट्टी को ग्रहण करना यथेष्ट बताया गया है।[11] उक्त ब्राह्मण के अनुसार वराह प्रजापति का रूप था साथ ही यज्ञ का अधिष्ठाता भी। अतैव वराह द्वारा उत्खात्म मिट्टी प्रवर्ग पात्र के लिए सर्वथा यथेष्ट मानी जाती है– ''इयती वा इयमग्रे पृथिवी आस प्रादेशमात्री ताम एमूष इति वराह उज्जधान। सः आस्या पतिः प्रजापतिः। तेन एव एनम् एतत् मिथुनेन प्रियेन धाम्ना, समर्द्धयति।'' शतपथ ब्राह्मण में वराह के लिये प्रयुक्त मिलता है। ज्ञातव्य है कि ऋग्वेद[12] में भी वराह के लिये 'एमुष' शब्द का प्रयोग किया गया है।

---

5. तैत्तिरीय संहिता– 7.1.5.1.
6. तैत्तिरीय ब्राह्मण– 1.1.3.5 तथा 6.
7. तैत्ति० आरण्यक– 1.10.8
8. महानारायणी उपनिपद– 4.5
9. पद्मपुराण सृष्टि खंड– 20.156
10. शतपथ ब्राह्मण– 14.1.2.11
11. वही– 14.1.2.11.
12. ऋग्वेद– 8.77.10– विश्वा इत् ता विष्णुराभरत उरुकमस्वेषितः
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्

प्रस्तुत सन्दर्भ में यह विचारणीय हो जाता है कि ऋग्वेद में वर्णित इन्द्र के द्वारा वराह का वध करने तथा विष्णु के द्वारा उसके धन को अपहृत करने का वराह रूप धारण करने वाले प्रजापति तथा उनके द्वारा जलमग्न पृथ्वी के उद्धार की कथा का परस्पर कोई सम्बन्ध बन पाता है या नहीं।

अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि कथा के दोनों रूप एक ही कथा के क्रमशः दो भाग प्रतीत होते हैं। ऋग्वैदिक कथा अर्थात् प्रथम भाग में वराह देवताओं का शत्रु होकर आता है जिसे ब्राह्मण ग्रन्थोक्त कथाभाग में सृष्टि की उत्पत्ति से जोड़कर उसे प्रजापति का अवतार बताकर एक उत्कृष्ट स्थिति प्रदान कर दी जाती है। सम्भवतः इसीलिए ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में 'एमुष' अथवा 'एमूष' शब्द वराह के दोनों कथा भागों के सन्दर्भ में प्रयुक्त मिलता है। खोण्डा के अनुसार ऋग्वेद में प्राप्त वराह के लिए एमूष शब्द की पुनरावृत्ति पुनः शतपथ ब्राह्मण में करके दोनों कथा परम्परा की अविच्छिन्नता को आलोकित किया गया है।[13] डा० गयाचरण त्रिपाठी ने खोण्डा के उक्त मत की समीक्षा करते हुए यह मत प्रतिपादित किया है कि ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त वराह सम्बन्धी दोनों कथाओं का सम्बन्ध परस्पर अलग-अलग है ऋग्वेद की कथा में वराह एक असुर है जिसका वध इन्द्र करते हैं दूसरी कथा मे वराह प्रजापति का रूप है जो अपनी शक्ति के बल पर जलमग्न पृथ्वी को बाहर लाकर प्रतिष्ठित करता है। इसके साथ ही साथ तैत्तिरीय संहिता में दोनों कथारूप अपने-अपने रूप से वर्णित मिलती हैं।[14] वस्तुतः दूसरी कथा अर्थात् वराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार का मूलस्त्रोत अथर्वेद में प्राप्त होता है। इस वेद में पृथ्वी और वराह को परस्पर सम्बन्धित बताया गया है– ''वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय'' वैदिक ग्रन्थों में वर्णित वराह का रूप प्रजापति का ही है न कि विष्णु का।

13. खोण्डा जे०– आस्पेक्ट्स ऑफ अरली विष्णुइज्म, पृष्ठ 139

14. दृष्टव्य तैत्तिरीय संहिता– 6.2.4.2 तथा 7.1.5.1

रामायण में भी वराह को प्रजापति का ही रूप बताया गया है।[16] परन्तु महाभारत में आख्यात है कि संसार का कल्याण करने के लिये[17] विष्णु ने वराह रूप धारण करके हिरण्याक्ष का संहार किया।[18]

पुराणों में वैदिक ग्रन्थों में वराह अवतार सम्बन्धी तथ्य को विष्णु के सन्दर्भ में स्वीकार किया गया है। वायु पुराण में ब्राह्मण ग्रन्थोक्त वराह अवतार की कल्पना की भावना विशद् रूप में वर्णित किया गया है।[19] वायु पुराण के उल्लेखानुसार प्रलयकालीन जल से पृथ्वी रसातल में डूब गयी उस समय आदि पुरुष स्वयंभू नारायण जल में शयन कर रहे थे जल अर्थात् नार में शयन करने के कारण उन्हें नारायण कहा जाता है। कालरात्रि के अंत में उन्होंने पुनर्सृष्टि के लिए ब्रह्मा का रूप धारण किया। वायु के सदृश अति लघुकाय होकर इधर-उधर अंधकार में विचरण करने लगे पृथ्वी को जल में डूबी हुयी देखकर जलक्रीड़ा करने के लिए वराह का रूप धारण कर लिया। उनके शरीर की लम्बाई 10 योजन तथा ऊँचाई 100 योजन थी तथा रंग नीले मेघ के समान और मुह की आवाज मेघगर्जन के समान थी। विशाल पर्वत के समान सफेद तीक्ष्ण और कठोर दांतों से युक्त उस वराह की आंखें विद्युत तथा अग्नि के सदृश चमकीली थी। इस प्रकार अनुत्तेजस्वी रूप को धारण करके पृथ्वी का उद्धार करने हेतु वे रसातल में प्रवेश किये।[20]

इस प्रकार वायु पुराण में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रजापति ब्रह्मा

---

15. अथर्वेद– 12.1.48

16. बाल्मीकि रामायण– 3.45.13.

17. महाभारत वन० 102.32– वाराहं वपुमाश्रित्य जगदर्थे समुद्धृता।।

18. महा० वही– 126.12– वराहरुपमास्थाय हिरण्याक्षो नियातितः।

19. वायु पुराण– 6.1.14

20. वायु पुराण 6.1.15

की सृष्टि रचना के निमित्त परमपुरुष नारायण के रूप में जल में डूबी हुयी पृथ्वी का उद्धार करते हैं।

''आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुम

अप्सु शेते च यत्तस्मात्तेन नारायणः स्मतः।।''

इस प्रकार वायु पुराणोक्त नारायण का तादात्म्य वैदिक प्रजापति से सीधे जुड़ा हुआ दिखलाया गया है। ज्ञातव्य है कि शतपथ ब्राह्मण में पुरुष नारायण एवं प्रजापति के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है– (पुरुष नारायणं प्रजापतिउवाज यजस्व यजस्वेति)[21] अन्यत्र इसी ब्राह्मण में पुरुष (नारायण) को प्रजापति का विशेषण बताया गया है[22] ऋग्वेद में सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्र जल की ब्याप्ति का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार इसी जल के भीतर सृष्टिकर्ता एवं सृष्टि नियामक परम पुरुष अवस्थित था।[24] तदउपरान्त उसी जल में हिरण्यमय अण्ड से हिरण्यगर्भ प्रजापति की उत्पत्ति हुयी (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत)[25] नारायण एवं प्रजापति के तादात्म्य की भावना स्मृतियों एवं पुराणों में किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। विष्णु पुराण में ब्रह्मा एवं नारायण को एक ही बताया गया है।[26] परन्तु इसी पुराण में अन्यत्र ब्रह्मा विष्णु और रुद्र को परस्पर समेकित करने का प्रयास भी किया गया है।[27] मनुस्मृति में नारायण एवं ब्रह्मा का परस्पर तादात्म्य स्थापित करते हुए अभिन्न कहा गया

---

21. शतपथ ब्राह्मण 12.3.4.1, 13.6.11 तथा 13.6.2.12

22. वही– 3.1.1.8

23. ऋग्वेद– 10.129.3

24. ऋग्वेद– 1.90.2– पुरुष एवेदं सर्वं यद भूतं यच्च भव्यं

25. वही– 10.121.1

26. विष्णु पुराण– 1.4.1 ''ब्रह्मा नारायणाख्यौऽसौ कल्पादौ भगवान यथा''

27. वही– 1.4.15

है।[28] इस प्रकार नारायण अथवा पुरुष शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति के एक विशेषण के रूप में प्रचलित तो था परन्तु वैदिक युग में यहाँ तक कि ब्राह्मणों आरण्यकों के युग में भी नारायण स्वयं एक महत्वपूर्ण देवता के रूप में स्वतन्त्र यक्ता प्राप्त नहीं कर सके थे। नारायण को पूर्ण-व्यक्तित्व एवं महत्व कालान्तर में विष्णु को प्रधान पौराणिक देवता के रूप में उत्कर्ष के साथ एक स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त हुआ। यही कारण है कि नारायण विशेषण कालान्तर में प्रजापति से हटकर विष्णु के साथ जुड़ गया। यद्यपि पौराणिक स्मृति में नारायण एवं ब्रह्मा के परस्पर एकत्व की धारणा किसी न किसी रूप में अवशिष्ट अवश्य मिलती है।[29] विष्णु पुराण में सर्वप्रथम नारायण को जगत सृष्टा ब्रह्मा एवं प्रजापति कहा गया है किन्तु बाद में उन्हें ब्रह्मस्वरुप, स्थिरात्मा, परमात्मा, आदि विशेषणों से युक्त करते हुए विष्णु के साथ समेकित करने का प्रयास किया गया है।[30] ध्यातब्य है कि विष्णु पुराण की तरह ब्रह्माण्ड पुराण[31] में भी वराह अवतार को नारायण ब्रह्मा से ही जोड़ा गया है। परन्तु अन्यत्र इस पुराण में सनकादि योगियों द्वारा महावराह भगवान की स्तुति कराई गयी है जिसमें उन्हें विष्णु के रूप में वर्णित किया गया है।[32] उक्त पुराण में एक स्थल पर पृथ्वी भगवान कृष्ण से

28. मनुस्मृति 1.9, 10 तदण्डमभवद हैमं सहस्त्रांशुसमप्रभम्।

    तस्मिन जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः।।

    आपो नार इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः

    या तदस्यायनं पूर्वं तेन नारायण स्मतः।।

29. लिंग पुराण– 1.4.59-61 तथा पद्म पुराण सृष्टि खण्ड अध्याय 3 तथा विष्णु पुराण– 1.4.1

30. विष्णु पुराण– 1.4.9-10 स्थितः स्थिरात्मा सर्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः।।

    प्रविवेश तदा तोयमात्माधारों धराधरः।।

31. ब्रह्माण्ड पुराण 1.5.1-13

32. वही– 1.5.12-44

कहती है कि वराह रूप धारण करके आपने मेरा उद्धार किया है (यदाहमुद् धृता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना)[33] वस्तुतः विष्णु के साथ वराह अवतार को जोड़ने की प्रवृत्ति तैत्तिरीय आरण्यक में ही वर्णित होने लगी थी[34] यही प्रवृत्ति महाभारत में नारायण एवं विष्णु के साथ वराह अवतार जोड़ने की मिलती है।[35] इस प्रकार महाभारतकार ने प्रजापति ब्रह्मा की अपेक्षा नारायण विष्णु के तादात्म्य को बहुत स्पष्ट रूप से स्थापित किया है। महाभारत वन पर्व में वराह अवतार के कारणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि एक बार पापियों के पाप भार से पृथ्वी रसातल में दब गयी बाद में पृथ्वी ने विष्णु से अपनी रक्षा की प्रार्थना की।[36] पृथ्वी की प्रार्थना से प्रशन्न होकर विष्णु एकश्रृंगी विशालकाय महावराह का रूप धारण कर पृथ्वी को उसी सींग पर रखकर रसातल से ऊपर उठा लाये।[37]

सगृहीत्वा बसुमतीं श्रृंगेणैकेन भास्वता।

योजनानां शतं वीर समुद्धरति योक्षरः।।

शान्ति पर्व में वराह अवतार की एक बहुत ही विलक्षण कथा आख्यात है जो पुराणों में दुर्लभ है इस कथा के अनुसार एक बार रसातल के राजा नरकासुर और उसके दानव अनुयायीगण अत्यधिक शक्तिशाली एवं आततायी हो गए, देवताओं ने ब्रह्मा जी से इस बात के लिए निवेदन किया देव एवं ब्रह्मा जी ने विष्णु से नरकासुर से जीवों के बचाव के लिये प्रार्थना की विष्णु ने तदनन्तर एक महावराह का रूप धारण किया और रसातल में जाकर नरकासुर

---

33. वही 5.29.23

34. तैत्तिरीय आरण्यक 10.1 पृष्ठ 701

35. महाभारत सभा पर्व अध्याय 38, वनपर्व 143.45-47 एवं शान्ति पर्व अध्याय 339, वनपर्व 272-51-55 तथा शान्तिपर्व 209.16-30

36. वही वनपर्व 143.39-40

37. वही वन पर्व 143-45-47

एवं उनके अनुयायियों को अपने खुरों से कुचल डाला। थोडे अन्तर के साथ महाभारत के वनपर्व के अध्याय 143 में वर्णित कथा के अनुसार इन्द्र एवं अन्य देवों की रक्षा के लिए विष्णु को नरकासुर का वध करते हुए वर्णित किया गया है। ज्ञातव्य है कि पुराणों में नरकासुर वध की कथा विष्णु के साथ न जुड़कर कृष्ण के साथ जोड़कर वर्णित मिलती है।

प्रारम्भिक पुराणों में मत्स्य पुराण को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस पुराण में अध्याय 246-47 में विष्णु को वराह के रूप में अवतार लेकर पृथ्वी के उद्धार की कथा विस्तार पूर्वक वर्णित की गयी है। इसमें आख्यात है कि सृष्टि की रचना के समय विशालकाय पर्वतों के भार से तथा विष्णु के अप्रतिम तेज को धारण करने में असमर्थ होने के कारण पृथ्वी धीरे-धीरे नीचे की ओर धसने लगी अपनी इस असहाय स्थिति को देखकर पृथ्वी ने विष्णु से रक्षा की प्रार्थना किया उसकी प्रार्थना से प्रशन्न होकर विष्णु ने विशालकाय श्यामलवर्ण के महावराह रूप को धारण करके उसे अपनी दाढ़ों पर स्थिर कर दिया। इस पुराण में विष्णु की स्तुति में पृथ्वी ने विष्णु के एक अन्य नाम गोबिन्द की व्याख्या करती हुई कहती है कि आप इस प्रकार असहाय गो (पृथ्वी) का बिन्दन (प्राप्ति) करने के कारण गोविन्द नाम से विश्रुत हैं–

> ''युगे युगे प्रनष्टां गां विष्णो विन्दसि तत्वतः।
> गोविन्देति ततो नाम्नां प्रोच्यसे ऋषि भिस्तथा।''[38]

भागवद पुराण में वर्णित कथा के अनुसार रसातल में डूबी हुयी पृथ्वी के उद्धार के लिए वराह का अवतार हुआ था।[39] इस पुराण के तृतीय स्कन्द के 13 वें अध्याय में वर्णन मिलता है कि प्रलयकाल में जल में मग्न पृथ्वी को निकालने की चिंता में डूबे हुए ब्रह्मा जी के नासिका छिद्र से अंगूठे के पोर के

38. मत्स्य पुराण 247.43

39. भागवद पुराण 1.3.7

बराबर एक लघुकाय वराह शिशु उत्पन्न हुआ। देखते-देखते वह शिशु विशालकाय हाथी के समान बड़ा हो गया–

इत्यभि ध्यायतो नासाविवरात्सहसानघ।

वराह तोको निरगादङ्गुष्ठ षरिमाणकः।।

तस्याभि पश्यः स्वस्थ क्षणेन किल भारत।

गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत्।।[40]

वराह रूप को इस प्रकार हाथी के समान विशालकाय देखकर सनकादि ऋषि आश्चर्य चकित रह गए इस बीच भगवान वराह पर्वताकार रूप धारण करके अत्यन्त भीषण स्वर में गरजने लगे ऋषिगण भयभीत होकर उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान एक बार पुनः गरजे तथा महा प्रलय जल में प्रवेश कर गए।[41] भागवद पुराण में वराह विष्णु के शरीर का बहुत काब्यात्मक वर्णन किया गया है महावराह का शरीर अत्यन्त कठोर था उनके कड़े-कड़े बाल थे, सफेद दाढ़ें थी तथा लाल-लाल दोनों आंखों से तेज निकल रहा था। इस प्रकार से शोभायमान होते हुए वे प्रलय समुद्र में स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करने लगे–

उत्क्षिप्त बालः खचरः कठोरः सटाविधुम्वन खररोमशत्वक्।

खुराहताभ्रः सितदंष्ट्रईक्षा ज्योतिर्ब भासे भगवानन्महीध्रः।।[42]

भगवद् पुराण में महावराह विष्णु द्वारा मारे जाने वाले दैत्य का नाम हिरण्याक्ष मिलता है। इसे महाशक्तिशाली दैत्य हिरण्यकश्यप का भाई बताया गया है जिसने अपने दिग्विजय अभियान में रसातल से पृथ्वी को लेकर बाहर

---

40. श्री मदभागवद्– 3.13.18-19

41. वही– 3.13.26

42. वही– 3.13.27

निकलते हुए विष्णु से युद्ध करने के लिए उनका मार्गविरोध किया था। इस पुराण के 18वें अध्याय में हिरण्याक्ष एवं वराह विष्णु के बीच हुए भीषण संग्राम का बड़ा रोचक वर्णन है ज्ञातव्य है कि महाभारत की कथा में महावराह विष्णु के साथ हिरण्याक्ष के युद्ध का वृत्तांत उल्लिखित नही है। परन्तु महाभारत के खिल अंश में इस दैत्य का नाम उल्लिखित मिलता है।[43]

ब्रह्म पुराण[44] में वराह विष्णु के अवतार की एक दूसरी कथा मिलती है इसके अनुसार एक बार सिन्धुसेन नामक एक दैत्य यज्ञ को लेकर रसातल में छिप गया यज्ञ के अभाव में देवता आदि प्राणी क्रमशः क्षीणशक्ति होने लगे देवों ने परमदेव विष्णु से प्रार्थना की विष्णु ने वराह रूप धारण करके रसातल में प्रवेश किया तथा सिन्धुसेन का वध करके यज्ञ को पुनः देवताओं को प्रदान किया–

स वराहवपुः श्रीमान रसातल निवासिनः

राक्षसान् दानवान् हत्वा मुखे धृत्व महाध्वरम्।

निश्चकाम रसातलात।।[45]

इस प्रकार प्रजापति के वराह अवतार से विष्णु के वराह अवतार के बीच दोनों देवों के नारायण विशेषण को कथा के स्थानान्तरण का माध्यम मान सकते हैं। पुराणों में नारायण विशेपण सर्वाधिक विष्णु के साथ प्रयुक्त मिलता है फलतः नारायण विशेषण के माध्यम से वराह अवतार क्रमशः विष्णु के साथ जुड़ता चला गया। वस्तुतः नारायण को स्वयंभू के रूप में तथा सृष्टि के विकास के नायक के रूप में सबसे महत्वपूर्ण स्थापना मत्स्य पुराण में मिलती है। इसमें कहा गया है कि उन्होंने महाप्रलय के बाद सबसे पहले तो जल का निर्माण किया

43. द्रष्टव्य हाफकिंस, एपक मैथालाजी पृष्ठ 43

44. ब्रह्म पुराण– 79.7.20

45. वही– 79.7.8.11.12.14.16

फिर उसमें बीज का निक्षेपन किया जो बाद में हिरण्यमय अण्ड के रूप में तैयार हो गया तब आत्मसंभव भगवान उसमें प्रविष्ट हो गये। उसमें प्रविष्ट अथवा व्याप्त होने के कारण ही नारायण से विष्णु हो गया–

प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसंभवः।

प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत् पुनः।।[46]

मनुस्मृति में नारायण का अर्थ बताते हुए स्पष्ट किया गया है कि नारायण विष्णु के निवास स्थल अर्थात् अयन हैं–

आयोनारा इति प्रोक्ता वै नरसूनवः।

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायण स्मृतः।।[47]

ध्यातब्य है कि वायुपारण एवं विष्णु पुराण में भी मनु के ही मत का समर्थन किया।[48] मत्स्य पुराण में नारायण को स्वयंभू कहा गया है जो ब्रह्मा का विशेषण है। तथा संसार के सृष्टि कर्त्ता परम पुरुष का द्योतक है। पौराणिक भावना में हिरण्यमय अण्ड में भगवान नारायण को प्रविष्ट कराकर तथा उस अण्ड से सम्पूर्ण जगत की सृष्टि कराकर विष्णु को परम पुरुष नारायण तथा विस्तार करने वाला विष्णु कहा गया है। कुषाण काल के उपरान्त अथवा गुप्तकाल में नारायण एवं विष्णु परस्पर अभिन्न माने जाने लगे थे। वैष्णव धर्म में पांचरात्रिक उपासना जो वासुदेव कृष्ण को नायक देवता के रूप में नारायण के साथ एकीकरण होकर विकसित हुआ था आगे चलकर विष्णु का ही विशेषण बन गया। महाभारत के नारायणी खण्ड में नारायण विष्णु के अवतारों की बृहद्

---

46. मत्स्य पुराण 2.25-30

47. मनुस्मृति– 1.10

48. भण्डारकर R.G. वैष्णविजम शैवविजम एण्ड अदर माइनर सेक्स पृष्ठ 43

सूचना प्राप्त होती है।[49] महाभारत एवं पुराण दोनों ग्रन्थों की शुरूआत नारायण की सर्वप्रथम प्रार्थना से शुरू की गयी है जिसे नरोत्तम कहा गया है–

''नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम''[50]

आदि शंकराचार्य ने नारायण शब्द की व्याख्या परमेश्वर के अर्थ में किया है। लगभग 8वीं सदी में रचित त्रिपाद्विभूति महानारायण उपनिषद में नारायण को सृष्टि का मूल कर्ता तथा परमेश्वर कहा गया है।[51]

वराह के साथ पृथ्वी के उद्धार की कथा का मूल प्रयोजन क्या रहा होगा इस सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं– खोण्डा[52] ने इस सम्बन्ध में विचार करते हुए कहा कि वराह के तुण्डाग्र से मिट्टी का खोदा जाना हल द्वारा क्षेत्र कर्षण का प्रतीक माना जा सकता है। जिससे भूमि में उर्बराशक्ति बढ़ती है। इस प्रकार वराह का पृथ्वी उर्बरा शक्ति से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। पृथ्वी की उर्वराशक्ति को प्रतीकात्मक ढंग से प्रजापति ब्रह्मा के साथ भी जोड़ा जा सकता है जिन्हें शतपथ ब्राह्मण में पृथ्वी का पति कहा गया है। आगे चलकर विष्णु को भागवद् पुराण।[53] एवं विष्णु पुराण[54] में पृथ्वी का पति स्वीकार किया

---

49. महाभारत 12.326.72 वहीं 337.36

50. महाभारत– 11 तथा वामन पुराण 1.1

51. त्रिपाद विभूति महानारायणोपनिषद– अध्याय 2–

    तत्र तत्वतो गुणातीत शुद्धसत्वमयो लीलागृहीत निरतिशयानन्द लक्षणो मायोपाधि नारायण आसीत। स एव नित्यपरिपूर्णः पाद विभूति वैकुण्ठनारायणः। स चानन्तकोटि बृह्माण्डानाम उदय स्थिति लयाद्य खिल कार्यकारणवान परमकारण्भूतो महामायातीतः तुरीयः सर्वकारणमूले विराट स्वरुपो भवति।

52. जे. खोण्डा–प्रास्पेक्टस ऑफ अरली विष्णुइजम पृष्ठ 132.33

53. भागवद् पुराण 3.13.42

54. विष्णु पुराण 5.29

गया है। इतना ही नहीं विष्णु पुराण में नरकासुर के वध के उपरान्त पृथ्वी कृष्ण से यह रहस्य प्रगट करती है कि नरकासुर कृष्ण (विष्णु) का ही पुत्र था वह गर्भस्थ तब हुआ था जव पूर्वकाल में विष्णु ने वराह रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया था।[55] इस वृत्तांत को विस्तारपूर्वक कालिका पुराण अध्याय 30 में भी प्रस्तुत किया गया है। पृथ्वी ने विष्णु से यह भी कहा कि आपने मेरा भार उतारने के लिए वराह रूप अवतार ग्रहण किया था।[56]

शिल्प ग्रन्तों में वराह विष्णु प्रतिमा वैज्ञानिक विधान

पुराणों में विष्णु के वराह अवतार रूप की मूर्ति बनाने के लिए प्रतिमा वैज्ञानिक लक्षणों को निर्दिष्ट किया है। विष्णु पुराण में आख्यात है कि वराह विष्णु को चतुर्भुजी विष्णु रूप में बनाया जाना चाहिए जिनमें उनका मुख सूकर का हो शेष शरीर मानव के समान हो उनके हांथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण कराना चाहिए। इस पुराण में वर्णित है कि वराह विष्णु को कमल के समान नेत्र वाला[57], कमल दल के समान श्याम नीलांचय[58] समान

55. वही– 5.29.23, 24– यदाहमुद्धता नाथ त्वया सूकरमूर्तिना।
त्वत्स्पर्शसंभवः पुत्रस्दायं मय्यजायत।।
सोऽयं त्वमैव दत्तो में त्वयैव विनिपातितः।

56. वही– 5.29.25– भारावतरणार्थय ममैव भगवानिमम्।
अंशेन लोकमायतः प्रसादसुमुखः प्रभोः।।

57. विष्णु पुराण– 1.4.12 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्ख चक्रगदाधर।
मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वन्तोऽहं पूर्वमुत्थिता।।

58. वही 1.4.26– ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंढट्र्या,
महावराहः स्फुट पद्मलोचनः।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः
समुत्थितो नीहा इवाचलो महान।।

विशाल शरीर वाला तथा बड़े-बड़े खुरों वाला होना चाहिए। उक्त पुराण के अनुसार वराह (विष्णु) इस रूप में यज्ञाधिपति तथा शंख चक्रादि आयुधधारी होते हैं महायज्ञ वराह के रूप में उनकी प्रतिमा में यज्ञ का रूप उनकी दाढ़े है, उनके चारों चरण चारों वेद हैं तथा उनके दांतो में यज्ञ विद्यमान होता है। हुतासन उनकी जिह्वा, कुशाएं रोमावली तथा सिर सबका आधारभूत परमब्रह्म होता है। वराह विष्णु के कान यज्ञ पुरुष के प्रतीक हैं वे अपनी शारीरिक संरचना में विश्वेश्वर एवं परमेश्वर हैं।[59] उनकी दाढ़ों पर पृथ्वी कीचड़ से सने हुए कमल पत्ते के समान वर्णित मिलती है।[60] गोपीनाथराव ने वराह प्रतिमाओं के कई रूपों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है उनके अनुसार विष्णु पुराणोक्त उपर्युक्त रूप यज्ञ वराह का है।[61]

मत्स्य पुराण[62] में वराह विष्णु की प्रतिमा निर्माण का विशद् उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि वराह विष्णु के हांथों में पद्म और गदा हैं उनके दाढों के आधे भाग अतितीक्ष्ण हों, थूथुन मुक्त मुख हो, बायीं टुहनी पर पृथ्वी हो व पृथ्वी इसे दाढ़ के अग्रभाग पर स्थापित की हुयी कमलयुक्त तथा शान्त हो, उसका मुख विस्मय से उत्फुल्ल हो ऐसी मूर्ति को ऊपर की ओर निर्मित किया जाना चाहिए। इस पुराण, आगे कहा गया है कि उसमूर्ति का दाहिना हांथ कटि प्रदेश पर हो उनका एक पैर शेषनाग के मस्तक पर दूसरा पैर कच्छप पर स्थित हो सभी लोकपाल उनकी स्तुति करते हुए प्रदर्शित किए गये हों ऐसी मूर्ति बनाने का विधान विहित है–

59. विष्णु पुराण– 1.4.31-35

60. वही– 1.4.36– विगाहतः पद्म वनं विलग्नं,

सरोजिनीपत्र मिवोढपङ्कम।।

61. द्रष्टव्यसव टी०ए०राव गोपीनाथ– एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी वालूम 1 भाग 1 पृष्ठ 156 मद्रास 1914-1916

62. मत्स्य पुराण अध्याय 260-28, 29, 30

महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरं।

तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परम्।।

दृष्टाग्रेघोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम्।

विस्मयोफुल्लवदनामुपरिष्टात् प्रकल्पयेत्।।

दक्षिणं कटिसंस्थं तु करं तस्याः प्रकल्पयेत्।

कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्र मूर्धनि।।

तस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत्।

विष्णु पुराण में वराह विष्णु को विश्व को व्याप्त करने में समर्थ तेजयुक्त तथा कल्याणकर्ता कहा गया है।[63] विश्व का यह ज्ञापक स्वरूप यज्ञ वराह का स्वरूप माना जा सकता है। जिसमें वराह विष्णु को विश्वरूप में प्रदर्शित किया जाता है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वराह की प्रतिमा को अनेक रूपों में निर्मित करने का विधान दिया गया है इस पुराण में निर्दिष्ट है कि नृवराह विष्णु रूप को मूर्त निर्माण करते समय शेषनाग सहित बनाना चाहिये। शेषनाग को [64] भुजाओं से युक्त मूर्तित करना चाहिए जिसमें नीचे के दोनों हांथ अंजलि बद्ध मुद्रा में हों तथा ऊपर के दोनों हांथ क्रमशः हल और गदा दिखाया जाना चाहिए।[64] इस प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नृवराह की प्रतिमा के निर्माण के

63. विष्णु पुराण– 1.4.37 द्यावापृथिव्योर तुल प्रभाव

यदन्तरं तद्पुषा तवैव।

व्याप्तं जगद्व्याप्ति समर्थदीप्ते

हितायविश्रवस्य विभो भवत्वम्।।

64. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 30,790,1, नृवराहोऽथ वा कार्यः शेषोपरगतः प्रभुः।

शेषश्चतुर्भजः कार्यारुरल फणान्वितः।।

सम्बन्ध में वराह की मूर्ति के साथ शेषनाग की मूर्तिका बनाया जाना आवश्यक बताया गया है। शेप नाग के फण को रत्नजटित बनाने तथा उनकी आंखें विस्मय से युक्त पृथ्वी को निहारती हुयी होनी चाहिये।[65] शेषनाग के पृष्ठ पर आलीढ़ मुद्रा में वराह विष्णु को स्थित दिखाया जाना चाहिए। देवता की बांयी कुहनी पर नारी रूप में दो भुजायुक्त पृथ्वी को अंकित करना चाहिए जिसके हांथ अंजलि वद्ध मुद्रा में जुड़े हुए हों।[66] देवता के जिस हांथ में बसुन्धरा प्रदर्शित की जाय उसी हांथ में शंख भी धारण कराना चाहिए तथा शेष हांथों में पद्म चक्र और गदा धारण कराना जाना निर्दिष्ट किया गया है।[67] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नृवराह विष्णु के अंकन का एक अन्य स्वरूप भी निर्दिष्ट किया है। इस रूप में कहा गया है, कि, दैत्य हिरण्याक्ष भगवान वराह की ओर त्रिशूल ताने क्रोध की मुद्रा में खड़ा दिखाया जाना चाहिए तथा भगवान को अपने चक्र से उसका सिर काटने को उद्यत अंकित किया जाना चाहिए।[68]

पृथ्वी को उद्धार करते हुए तथा उसे धारण करने के रूप में वराह विष्णु को दो रूपों में प्रदर्शित करने का विधान विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित है।

65. वही 3.79.3 आश्चर्योत्फुल्लनयनो देवी वीक्षणतत्परः
कर्तव्यो सीरमुसलौ करयोस्तस्य यादव।।

66. वही 3.79.4– सर्प भूपश्चकर्तव्यस्तथैव रचितान्जलिः।
आलीढस्थान संस्थानस्तत्पृष्ठे भगवान्भवेत।।

67. वही 3.79.5– सब्येऽरत्निगता तस्य योपिद्रूपा वसुन्धरा।
नमस्कार परातस्य कर्तब्या द्विभुजा शुभा।।

67. विष्णु धर्मेत्तरपुराण– 3.79.6– यस्मिन भुजे धरादेवी तत्र शंखकरे भवेत।
अन्ये तस्य कराः कार्याः पद्म चक्रगदाधराः।।

68. वही– 3.79.7– हिरण्याक्षशिरच्छेयश्व क्रोद्यतकरोऽथवा।
शूलोद्यतहिरण्याक्ष सम्मुखो भगवान्भवेत्।।

प्रथमतः देवता का सम्पूर्णशरीर मनुष्य की तरह निर्मित किया जाता है परन्तु उनका मुख वराह (सूकर) की भांति बनाया जाता है। इस रूप में उन्हें क्रोधावेग से भरे दानवों के मध्य स्थित अंकित किया जाना चाहिए।[69] द्वितीयतः विष्णु को केवल वराह रूप में ही मूर्तित किया जाना चाहिए (नृवराहो वराहो वा कर्त्तब्यः क्षमाविधारणे)। ज्ञातव्य है कि केवल वराह रूप में विष्णु की प्रतिमा निर्माण का निर्देश विष्णु तथा भागवद् पुराणों में भी दिया गया है।[70]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में एक अन्य प्रकार से नृवराह प्रतिमा विधान वर्णित है इसमें नृवराह दो भुजा युक्त दोनों हांथों से पृथ्वी को पकड़े हुए तथा कपिलमुनि के समान ध्यानावस्थित मुद्रा में मूर्तित किए जाने का विधान प्रस्तुत किया गया है।[71]

नृवराह को बलशाली अंजन समूह के समानश्याम वर्ण सूर्य के समान तेजस्वी तथा अपने भयंकर रूप से पृथ्वी के अपहर्ता दैत्य को भयभीत करने वाले स्वरूप में भी वर्णित किया जा सकता है।[72] इस रूप में उनके कमलवत चरण शेपनाग के फण पर विराजमान होते हैं, उनकी सफेद दाढ़े चन्द्रमा की कला की तरह सफेद-सफेद आगे निकली हुई दिखलाई पड़ती हैं। दूज के चन्द्रमा की तरह निकली उनकी श्वेत दाढ़ों पर विराजमान नारी रूप में पृथ्वी भगवान को

69. वही– 3.79-10– समग्रकोऽरुपो वा बहुदानवमध्यमः।

नृवराहो वराहो वा कर्तब्यः क्षमाविधारणे।।

70. वही– 3.79.11– ऐश्वर्य योगोद्धतसर्वलोकः कार्योऽनिरुद्धो भगवान्वराहः

रुद्रा न यस्य क्वचिदेव शक्तिः समस्त पापापहरस्य राजन।।

71. विष्णु धर्मेत्तर पुराण 3.79-9 नृवराहोऽथ वा कार्यो ध्याने कपिलवत्स्थितः

द्विभुजस्त्वथ वा कार्यः पिण्ड निर्वहणोद्यतः।।

72. वही– 3.69.45– देवमावाहयिष्यामि नृवराहं महाबलम्।

भिन्नाञ्जनचयश्याम लीलोद्धत वसुन्धर।।

विस्मय और प्रशन्नता भरे नेत्रों से देखती हुयी तथा देवता के शंखनाद से दैत्य को भयाक्रांत दिखाया जाना चाहिए।[73]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भूवराह प्रतिमा निर्माण का निर्देश करते हुए पुराणकार ने उसे दो रूपों में रूपायित करने का विधान दिया है।

(1) वराह विष्णु का पूरा शरीर (सूकर रूप में) निर्मित किया जाना।

(2) देवता का पूरा शरीर मनुष्य की भांति परन्तु मुख भाग को वराह (सूकर) की भांति निर्मित किया जाना।[74]

मत्स्य पुराण की भांति अग्नि पुराण में भी विष्णु को नृवराह के रूप

---

73. वही– 3, 69.46-47– आगच्छ नृवराहेह हिरण्याक्षविनाशन्।
शेपाभभोग विन्यस्त्य महा चरणपंङ्कज।।

48-49-50-51

शंखनादोभ्दव त्राहि नियन्ता सुरनायकम्।
देवमावाहिष्यामि वराहं वरदर्पितम्।।
बालेन्दु लेखादंष्ट्राग्रविभासित जगत्रय।
विस्मयोत्फुल्लनयन भूमिवीक्षितविग्रह।।
बालेन्दु तुल्यदंष्ट्राग्र लीलोद्वतवसुन्धर।
एहिमेभगवन्देव वराहामित विक्रम।।
निरस्ताशेषदैत्येन्द्र दीनभक्त जनोद्धर।
धर्ममावाहयिष्यामि सर्वभूतसुखा वहम्।।
दुर्विज्ञेयं बहुद्वारं खलमूर्तिदुरासदम्।
एहि धर्ममभार्भ्यो भुवन त्रयपालक।।

74. विष्णु धर्मोन्तर पुराण 3,79, 10 ''नृवराहो वराहो वा कर्तव्य क्ष्माविधारिणे''

में निर्मित किया जाना चाहिए प्रतिमा के दायें हांथ में शंख बायें हांथ पर पद्‌म और कुहनी पर लक्ष्मी स्थित होनी चाहिए। देवता के दोनों चरणों के पास पृथ्वी तथा शेषनाग को प्रदर्शित करने का भी विधान दिया गया है।[75]

बैखानस आगम के[76] अनुसार वराह विष्णु की प्रतिमा का निर्माण करते समय देवता के मस्तक को वराह की तरह तथा शेष शरीर को मनुष्य की तरह अंकित करना चाहिये। विष्णु के नृवराह को 4 भुजाओं से युक्त प्रदर्शित करते हुए ऊपर के दोनों हांथों में शंख एवं चक्र निर्मित करना चाहिए। देवता के दक्षिण पादु को सपत्नीक बैठे शेषनाग के मणियुक्त फण पर स्थित करना चाहिए। बाऐं हांथ पर पृथ्वी को खड़ी शरीर में अंकित करनी चाहिए अथवा भूदेवी को झुके हुए दक्षिण पैर पर बैठाया जाना चाहिए तथा नीचे के दायें हाथ से देवी की कटि को पकड़े हुए दिखाया जाना चाहिए। देवता का वराह मुख भू-देवी के वक्षस्थल के इतना निकट बनाया जाना चाहिए जैसे वे शरीर के सुगंध लेने में व्यस्त हों भूदेवी का वर्ण श्यामरंग का पुष्पाम्बर से युक्त तथा सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत होने चाहिए उनके हांथों को अंजलि मुद्रा में प्रदर्शित करना चाहिए तथा देवता के वराह मुख को लज्जा मिश्रित हर्ष से देखते हुए उनके मुखमण्डल को निर्मित करना चाहिए।

अपराजित प्रच्छा में वराह अवतार ग्रहण कर विष्णु के द्वारा पृथ्वी के उद्धार की कथा विवृत है। इस शिल्पग्रन्थ के अनुसार पृथ्वी अधर्म के भार के कारण जब रसातल में चली गयी तब भय विह्वल वसुन्धरा के उद्धार के लिए देवताओं की प्रार्थना से प्रसन्न होकर विष्णु ने वराह रूप धारण कर उनका उद्धार किया था। इस रूप में देवता में पर्वत द्वीप तथा सागर आदि से युक्त जीवों का आधार अधिष्ठान पृथ्वी को अपनी दाढ़ के अग्रभाग पर उठाकर पुनः

75. अग्नि पुराण– 49.2.3

76. दृष्टव्य– राव टी०ए०गोपीनाथ एलीमेन्टस ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी–वाल्यूम 1 पेज– 132-33

यथास्थान लाकर प्रतिष्ठित कर दिया था।[77] इस प्रकार अपराजित पृच्छा में वर्णित वराह अवतार की कथा पूर्ववर्ती पुराणों में उपलब्ध विष्णु के वराह अवतार कथांकनों के बहुत कुछ अनुरूप है।

मानसोल्लास[78] में तथा शिल्परत्न[79] में वराह विष्णु की प्रतिमा लक्षण के दो रूप मिलते हैं (1) वराह रूप में तथा (2) नृवराह मिश्रित[80] रूप में। ध्यातब्य है कि शिल्पग्रन्थ अपराजित प्रच्छा में केवल वराह रूप में अंकित करने का विधान किया गया है। इसी प्रकार रूप मंडन[81] में केवल नृवराह रूप का अंकन करने का विधान मिलता है।

वराह रूप में विष्णु का अंकन

अपराजित पृच्छा में विष्णु की वराहमूर्ति के निर्माण का विशद् उल्लेख मिलता है। इसमें विधान मिलता है कि वराह मूर्ति का मुख दो दाढ़ों से युक्त सूकर के समान बनाना चाहिए वृत्ताकार मुख का पुष्कर भाग दो संवेदनशील नासा मुद्रा से युक्त मस्तक तथा नेत्रों को हांथी के समान बनाना चाहिए। वराह

---

77. अपराजित पृच्छा 25.2-8

78. मानसोल्लास 2.3.1

79. शिल्परत्न 2.25.116

80. दृष्टव्य विष्णुधर्मोत्तर पुराण– 3.79.2-10,

    अग्निपुराण 49.2-3,

मत्स्य पुराण 2.59.28-30, मानसोल्लास 2.3.1.699-072 तथा शिल्परत्न 2.25.112-15

81. दृष्टव्य सम्पादक श्रीवास्तव बलराम : रूपमण्डन 3.24

मत्स्यकूर्मो स्वस्वरूपौ नृवराहो गदाम्बुजम्।

विभृत्स्यामो (विभृश्च्श्यामों)

वाराहास्यो दंष्ट्राग्रे तु धृता धरा।।

को ग्रीवा, पुच्छ आदि से समन्वित बनाना चाहिए उसका आगे का बायां पैर किंचित उठा हुआ एवं दायाँ पैर आगे की ओर बढ़ा हुआ होना चाहिए उसकी पीठ पर तीनों लोकों के प्राणियों से घिरे हुये मेरुलिंग का अंकन होना चाहिये। वराह की दाढ़ के अग्रभाग पर सर्वाभरण भूषिता लक्ष्मी का अंकन होना चाहिए जिसमें लक्ष्मी का दायां हाँथ वराह की बायी दाढ़ पर रखा हुआ हो। अपराजित पृच्छा में यह भी निर्दिष्ट मिलता है कि वराहमूर्ति के नीचे कच्छप को तथा कच्छप प्रतिमा के नीचे जल पट्टिका को निर्मित करना चाहिए।[82] कूर्म और जलपट्टिका दोनों पाताल लोक का प्रतीकात्मक चित्रण माना जा सकता है। उपर्युक्त शिल्प ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर वराह के प्रत्येक अंग पर सभी प्रकार के देवताओं की उपस्थिति का अँकन करना भी यथेष्ट बताया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार वराह के नासाग्र पर वायुदेव जिह्वा पर सरस्वती, ग्रीवा पर सुरसंधार, तालू व ओष्ठों पर भिन्न-भिन्न देवता, कपाल पर धर्नुधारी देवता, नेत्रों पर सूर्य और चन्द्रमा, आधे मस्तक सहित दोनों कानों पर तीन करोड़ गन्धर्व, पीठ पर मेरुलिंग, द्वादश आदित्य, एकादश रूद्र, चौदह मन, आदि को अंकित करना चाहिए।

इस ग्रन्थ में यह भी वर्णित है कि वराह को असीमित प्रमाण वाला, स्फुरणशील एवं महोत्कट भृकुट से युक्त तथा दो तेज पुंज दांतों से युक्त बनाना चाहिए जिसके एक दंश्ट्राग्र पर भूदेवी को धारण कराना चाहिए।[83] यहाँ अपराजित प्रच्छा में वराह प्रतिमा निर्माण की दो अलग-अलग परम्पराओं का संकेत मिलता है। एक परम्परा में वराह की दाढ़ के अग्रभाग पर लक्ष्मी का अंकन अभीष्ट बताया गया है। दूसरी परम्परा में वराह की दाढ़ के अग्रभाग पर पृथ्वी को अधिष्ठित कराना अभीष्ट बताया गया है। ध्यातब्य है कि वराह के दांत के

82. द्रष्टव्य अपराजित पृच्छा 229.17-34

83. द्रष्टब्य अपराजित पृच्छा 25.7-21

अग्रभाग पर लक्ष्मी को धारण कराने की विलक्षणता का उल्लेख अपराजित पृच्छा के साथ-साथ अग्नि पुराण[84] में भी मिलता है। अग्नि पुराण में एक अन्य स्थल पर वराह प्रतिमा निर्माण विधान में लक्ष्मी के साथ पृथ्वी की प्रतिमा निर्माण का विधान प्रस्तुत किया गया है।[85]

देवतामूर्ति प्रकरण में अन्य शिल्प ग्रन्थों की अपेक्षा वराह प्रतिमा निर्माण सम्बन्धी विवरण बहुत संक्षेप में प्राप्त होता है इसमें कहा गया है कि वराह रूपी विष्णु का मुख सूकर की तरह, दांत अति तीक्ष्ण, शरीर विशाल, कान स्तब्ध तथा रोम खड़े निर्मित करना चाहिए।[86] लगभग ऐसा ही विवरण सुप्रसिद्ध दक्षिण भारतीय शिल्प ग्रन्थ मानसोल्लास में भी प्राप्त होता है। इसमें वराह रूप विष्णु के प्रतिमा निर्माण के सन्दर्भ में कहा गया है कि देवता का मुख वराह के सदृस तीक्ष्ण दातों से युक्त होना चाहिए, उनके दोनों कान स्तब्ध, शरीर विशाल तथा रोमावली ऊर्ध निर्मित करना चाहिए।[87] लगभग मानसोल्लास में प्रदत्त विवरण शिल्परत्न[88] में भी यथावत प्राप्त होता है।

ऊपर वर्णित प्राचीन भारतीय साहित्य में प्राप्त समस्त विवरणों के आलोक में विष्णु के वराह अवतार से सम्बन्धित प्रतिमाओं के निर्माण की परम्परा उपलब्ध एतत् प्रतिमाओं के आलोक में प्राप्त होती हैं। राजस्थान, मध्य प्रदेश, एवं गुजरात प्रदेशों से प्राप्त वराह प्रतिमाओं के पृष्ठ भाग पर अपराजित पृच्छा में वर्णित वराह प्रतिमा लक्षण के अनुरूप मेरुलिंग को स्पष्ट रूप से अंकित देखा जा सकता है। इस प्रकार की मूर्तियों को मध्य प्रदेश में इन्दौर संग्रहालय

---

84. अग्निपुराण– 49.2-3

85. वही– 86.18-19

86. देवतामूर्ति प्रकरण– 5.76

87. मानसोल्लास 2.3.1.702-03

88. दृष्टब्य शिल्परत्न 2.25.116

में, राजस्थान के राजपूताना संग्रहालय में, प्रताप अजमेर एवं उदयपुर के संग्रहालय में गुजरात प्रदेश के वाटसन संग्रहालय में तथा राजकोट के संग्रहालय में सुरक्षित वराह प्रतिमाएं उल्लेखनीय हैं। केन्द्रीय संग्रहालय इन्दौर में सुरक्षित वराह विष्णु की एक प्रतिमा जो 11वीं सदी की मानी जाती है तथा जिसे मन्दसौर जिले से प्राप्त किया गया था विशेष उल्लेखनीय हैं इस प्रतिमा में एक पाषाण खण्ड पर विशालकाय वराह को अंकित किया गया है। उसके शरीर के ऊपर अनेक छोटे-छोटे देव प्रतिमाओं का बहुत ही सघन अंकन प्राप्त होता है। इस प्रतिमा के पृष्ठभाग पर मेरुलिंक को अंकित किया गया है। इस वराह प्रतिमा में देवता का दायां पैर आगे की ओर निकला हुआ है उसके नीचे विष्णु का एक अमोघायुघ गदा मूर्तित है।

गदा के सन्निकट एक छोटी पुरुष प्रतिमा भी अंकित की गयी है जो अब खण्डित हो चुकी है फलतः उसे स्पष्ट रूप से पहचाना नहीं जा सकता है वराह के मस्तक को घंटियों की माला से तथा उनके पैरों को मुक्ता माला से अलंकृत किया गया है। वराह विष्णु के पैरों के बीचों-बीच शेषनाग को प्रदर्शित किया गया है आकृति निर्माण की दृष्टि से यह प्रतिमा बहुत कुछ अपराजित पृच्छा में प्राप्त विवरण से साम्य रखती है।

वराह की एक अन्य प्रतिमा राजपूताना संग्रहालय अजमेर में सुरक्षित है इसे राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में स्थित अथोर्णानामक पुरास्थल से प्राप्त हुयी है। इस मूर्ति की तिथि 12वीं सदी ई० आंकी जाती है वराह की पीठ पर चतुर्भुज लिंग तथा शरीर पर अनेक देव मूर्तियाँ रूपायित की गयी हैं। इस मूर्ति के पादपीठ पर पैरों के बीच शेषनाग की प्रतिमा को उत्कीर्ण किया गया है। पैरों को कटकों से तथा गले को मुक्ता माला से विभूषित किया गया है। देवता के मुख के निकट बायीं ओर द्विभंग मुद्रा में खड़ी हुयी तथा द्विभुजी भूदेवी की प्रतिमा अंकित की गयी है। देवी का दायाँ हांथ अभयमुद्रा से बायां हांथ कट्टवलम्बित मुद्रा में प्रदर्शित है उनके शरीर में विभिन्न अंग करण्ड मुकुट, हार,

कुण्डल, ग्रैवेयक, केयूर, कंकण कटिमेखला, गले में लम्बी माला, पैरों में कटक तथा नूपुर आदि से अलंकृत किया गया है। पैरों के बीच निर्मित शेषनाग की प्रतिमा द्विभुजी है जिसे वक्ष तक उठाकर अंजलि बद्ध मुद्रा में अंकित किया गया है। उनके शीर्ष पर सर्पफणों की छाया है। उन्हें भी करण्ड मुकुट, ग्रेवेयक, हार, कटिसूत्र, कंकण, कुण्डल आदि अलंकारों से विभूषित दिखाया गया है। शेष की प्रतिमा में एक आकर्षक बात यह मिलती है कि इसका नीचे का आधा भाग सर्पपुच्छाकृत निर्मित किया गया है। वराह के पैरों के सन्निकट तीन अन्य आसन देव मूर्तियाँ अंकित है जिनकी सही-सही पहचान नहीं हो सकी है। देवता के बायें पैर के निकट पादपीठ पर विष्णु का आयुध गदा तथा दांये पैर के सन्निकट शंख और चक्र को निर्मित किया गया है इस मूर्ति में वराह का आगे का दायां पैर तथा पीछे का बायां पैर खण्डित हो गया है। समग्र रूप में राजपूताना संग्रहालय में स्थापित इस मूर्ति का समग्र अंकन विशेप रूप से वराह विष्णु के मुख के निकट भूदेवी की आकृति का निर्माण शिल्पग्रंथ अपराजित पृच्छा में प्रदत्त वराह प्रतिमा लक्षण से पर्याप्त साम्य रखता है।

राजस्थान के उदयपुर जिले में स्थित नागदा नामक पुरास्थल से प्राप्त एक वराह विष्णु प्रतिमा सम्प्रति प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है। यह प्रतिमा 13वीं सदी की मानी जाती है। एक विशाल पाषाण फलक पर विष्णु को विशालकाय सूकर अवतार में प्रदर्शित किया गया है। देवता की पीठ पर मेरुलिंग तथा शरीर पर अनेक देव प्रतिमाएं अंकित की गयी हैं वराह का आगे की ओर बढ़ा पैर शंख पर स्थित है और बांऐं पैर के निकट ही विष्णु का एक अन्य आयुध चक्र को निर्मित किया गया है चक्र के बिल्कुल बगल में गदा को भी अंकित किया गया है। देवता के पैरों को पादकटकों से तथा गले को मुक्ता माला से अलंकृत किया गया है। वराह के मुख के निकट बायीं ओर पृथ्वी को स्थानक प्रतिमा निर्मित की गयी है तथा पादपीठ पर पैरों के बीचोबीच अधोभाग सर्पाकृत तथा ऊर्धभाग पुरुष आकृति भगवान शेषनाग को रूपायित किया गया

है। इस मूर्ति फलक पर पृथ्वी देवी के सन्निकट अंजलिबद्ध मुद्रा में विष्णु वाहन गरुण को भी अंकित किया गया है। पैरों के मध्य निर्मित शेषनाग के सम्मुख एक पशुमुख को भी निर्मित किया गया है। जिसकी पहचान स्पटतया नहीं हो सकी है। उदयपुर संग्रहालय में सुरक्षित यह मूर्ति भी बहुत कुछ अपराजित पृच्छा में निर्दिष्ट वराह विष्णु प्रतिमा निर्माण से सम्बन्धित लक्षण निर्देशों के अनुरूप प्रतीत होती है।

गुजरात प्रान्त के वाटसन संग्रहालय राजकोट में सुरक्षित 13वीं सदी में निर्मित एक वराह विष्णु की प्रतिमा सुरेन्द्र नगर से प्राप्त हुयी है। वराह के पीठ पर मेरुलिंग का भव्य प्रदर्शन किया गया है उनका दाहिना पैर आगे की ओर बढ़ा हुआ तथा मुख के बयीं ओर मुखाग्र से सटकर भूदेवी की एक स्थानक प्रतिमा निर्मित की गयी है। देवता की पीठ पर अनेक मानवाकार देवताओं की प्रतिमाऐं लगातार छः पंक्तियों में अंकित की गयी हैं। इस मूर्ति में एक विलक्षण अंकन वराह के गले में पड़े पट्ट पर बहुतेरे देव आकृतियों का अंकन भी माना जा सकता है देवता का आगे बढ़ा दायाँ पैर विष्णु के प्रधान आयुध चक्र पर अवस्थित है। जिसके सन्निकट दूसरा आयुध शंख भी प्रदर्शित किया गया है। वराह विष्णु के पैरों के बीचों बीच शेषनाग की मूर्ति है तथा दोनों दाहिने पैरों के मध्यवर्ती भाग में एक पुरुष आकृति को ललितासन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार चक्र के निकट एक चतुर्भुजी पुरुषाकृति भी मिलती है इस चतुर्भुजी आकृति के पास ही एक अस्पष्ट पशुमुख भी निर्मित किया गया है जिसके अंकन का अभिप्राय अज्ञात है।

खजुराहों के वराह मंडप में स्थापित यज्ञ वराह की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। यह एक ब्रह्माण्ड को दर्शाती हुयी प्रतिमा है जिसके शरीर पर सभी देवी देवताओं को प्रदर्शित किया गया है वराह को एक विशाल प्रस्तर फलक पर अंकित किया गया हैं इस प्रतिमा में देवता को रसातल से अपने मुख पर बैठाकर उद्धार करते हुए पृथ्वी पर तत्काल प्रगट होने के सन्दर्भ में अंकित

किया गया है। पीले एकाश्म बलुआ पत्थर पर निर्मित वराह की यह प्रतिमा शक्ति एवं ओज की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता हुआ देखने से सूकर रूप में दैवी अवतार प्रतिभासित होता है। सुविरा जायसवाल के अनुसार वराह मूलतः किसी अनार्य कबीले का टोटम देवता था जिसे विष्णु के अवतार के रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक पौराणिक धारा में समाहित कर लिया गया।[89] लगभग 400 ई० में गुप्तों के राजनीतिक शक्ति के विस्तार के साथ तथा पौराणिक धर्म में विष्णु के वराह अवतार को विशेष विकास प्राप्त हुआ इस काल में वराह विष्णु की पूजा परम्परा रामटेक (नागपुर महाराष्ट्र के निकट), उदयगिरि (विदिशा के समीप), देवगढ़ (ललितपुर जनपद-उत्तर प्रदेश), एरण (म० प्र०), अपसढ (बिहार) आदि स्थानों से यज्ञवराह एवं नृवराह दोनों तरह की प्रतिमाएं प्राप्त हुयी हैं। 882 ई० के पेहोआ (प्रथूदक, हरियाणा) से प्राप्त एक अभिलेख में किसी मंदिर में यज्ञवराह मूर्ति की स्थापना का उल्लेख मिलता है। जिसमें देवता की पूजा अर्चना के लिए भूमिदान के अतिरिक्त पुजारी (पूजक) की भी व्यवस्था की गयी थी[90] इस अभिलेखिक साक्ष्य से मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के अधिकांश भागों में यज्ञ वराह रूप में विष्णु पूजा की परम्परा की लोक प्रियता का पता चलता है।

यज्ञ वराह के स्वरूप को वैदिक पौराणिक ब्रह्माण्ड अंकन से जोड़ा जा सकता है वराह के शरीर के विभिन्न अंगों को वैदिक यज्ञ के विभिन्न भागों से जोड़ा जा सकता है इसे बहुत विस्तार से डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने निरुपित किया है। वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड, बृह्म, हरिवंश, पद्म, एवं विष्णु धर्मोत्तर पुराणों में यज्ञ वराह की प्रतीकात्मकता के सन्दर्भ में विशद् उल्लेख किया है। वायुपुराण में कहा गया है कि प्रजापति ने यज्ञ वराह का रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार

89. दृष्टव्य जायसवाल सुविरा– द ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आफ वैष्णविजम– पृष्ठ– 131-132

90. दृष्टव्य A.P. ग्राफिया इण्डिका वाल्यूम 1 पेज 185-186

करने के लिए जल में प्रवेश किया था।[92] पांचरात्र धर्म से सम्बन्धित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अहिरबुघ्न संहिता में भी यज्ञ वराह का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है।[93]

गुप्तकाल में विष्णु के विभिन्न अवतार रूपों की पूजा विशेष प्रचलित थी इसकाल में भगवान विष्णु के वराह अवतार की मूर्तियाँ दो रूपों में मिलती हैं। (1) वराह पशु की रूप में (2) नृवराह के रूप में। मध्य प्रदेश के सागर जनपद में स्थित एरण नामक स्थान से वराह रूप में अंकित ऐसी ही एक विशाल मूर्ति प्राप्त हुयी है जिसकी ऊँचाई लगभग 6 फिट या इससे अधिक है। यह ठोंस एकाश्मक पाषाण की बनी हुई है तथा अपनी सम्पूर्ण रचना में यह इतनी ओजस्वी प्रतिमा देखने में लगती है जैसे भगवान ने वराह रूप में अभी अभी अवतार ग्रहण किया हो। इस प्रतिमा पर एक अभिलेख उत्कीर्ण मिलता है जिसमें वराह की स्तुति की गयी है।[94] प्रतिमा पर अंकित अभिलेख से प्रतिमा के निर्माता हूण नरेश तोरमाण के अधीनस्थ राजा धन्य विष्णु का भी पता चलता है।[95]

चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल में उदयगिरि पहाड़ी (विदिशा

---

91. विशेष विवरण हेतु दृष्टब्य अग्रवाल V.S सोल सिम्बालिजम आफ बोर (यज्ञवराह, एन इन्टर पटेशन), बनारस1963
92. वायुपुराण– 6.22– भूत्वा यज्ञवराहो वै अपःस प्राविसत्प्रभुः।
    अद्भिः संघादितामूर्वी स तामश्च प्रजापतिः।।
93. अहरि बुघ्नसंहिता, 37.40-48
94. उपाध्याय वासुदेव– गुप्त साम्राज्य का इतिहास द्वितीयखंड सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ 190

    जयति धरण्ययुद्धरणे घनघोराघात घूर्णित महीघ्रः।
    देवो वराह मूर्ति स्त्रैलोक्य महाग्रहस्तम्भः।।
95. वही– पृष्ठ 190– धान्य विष्णुना तेनैव– भगवतो वराहमूर्तिः जगत्परायणस्य नारायणस्य शिला प्रसादः स्वविषये अस्मिन्नैरि किणे कारितः।।

के निकट मध्य प्रदेश) पर एक वराह गुफा का निर्माण कराया गया था जिसमें एक विशालकाय नृवराह की प्रतिमा की निर्माण किया गया था जिसके दांत पर पृथ्वी की एक छोटी सी प्रतिमा को अंकित किया गया है। इसका समय ए० के० कुंमारस्वामी ने 400 ई० निर्धारित किया था।[96] इस प्रतिमा को गुफा नं० 4 के फैकेट पर अंकित किया गया है। नृवराह को दो भुजाओं से युक्त तथा बाऐं पैर को आदिशेष के सिर पर अंकित किया गया है। उनका दाहिना हांथ कमर पर है तथा बायाँ हांथ घुटने पर है। उनके वराह रूप मुख के दाहिने दांत पर पृथ्वी का अंकन किया गया है जो जल से निकलती हुई प्रदर्शित की गई है। प्रस्तर फलक पर समुद्र की लहरों की लाइन खींच-खींच कर विशाल समुद्री जल को अंकित किया गया है। आदिशेष के पीछे भग्न पुरुष की पहचान जनरल कनिंघम ने समुद्रों के राजा से किया था तथा उसके बगल दाहिनी तरफ एक नारी मूर्ति को अंजलिबद्ध मुद्रा में रूपायित किया गया है जिसकी पहचान समुद्र की रानी से की गयी है।[97] प्रस्तर फलक पर ब्रह्मा, शिव, एवं अन्य देवताओं को तथा विभिन्न वाद्ययन्त्रों को बजाते हुए संगीतकारों को एवं असुरों को प्रदर्शित किया गया है। बाई तरफ मकरवाहिनी गंगा तथा कूर्मवाहिनी यमुना को भी अंकित किया गया है। मूर्ति की सम्पूर्ण योजना प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से बहुत ही विलक्षण मानी जा सकती है तथा गुप्त कालीन प्रतिमाओं में इसे अप्रतिम मूर्ति स्वीकार किया जा सकता है।

राजकीय संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित 11वीं सदी में निर्मित एक विशालकाय वराह प्रतिमा उल्लेखनीय है जो उ० प्र० के झांसी जनपद के दुधई नामक स्थान से प्राप्त हुई है। एक वृहद पाषाण पट्ट पर विशालकाय वराह

96. कुमार स्वामी ए० के० हिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड इण्डोनेसियन आर्ट चित्र 174-1927 डोवर एडिसन न्यूयार्क 1965

97. बनर्जी जे० एन०– द डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनो ग्राफी पेज 414, मुंशी राम मनोहर लाल तृतीय संस्करण जनवरी, 1974 नई दिल्ली।

प्रतिमा को परम ओजस्वी मुद्रा में अंकित किया गया है। उसके शरीर पर लघु आकार में द्वादश आदित्यों, नवगृहों, गणेश तथा वीरभद्र सहित सप्तमात्रिकाओं, सप्तऋषियों, अश्विनदेवों, एवं विष्णु के दशावतार रूपों आदि को प्रदर्शित किया गया है। देवता के पैरों के बीच शेषनाग को अंकित किया गया है। जिसका अर्द्धभाग पुरुषाकृति है तथा निम्न भाग सर्पाकृति है। उसके सिर पर अनेक सर्पफणों का अलंकरण है शेषनाग अंजलि बद्ध मुद्रा में अंकित किए गए हैं। उनकी प्रतिमा के बायीं ओर भूदेवी के स्थान पर एक चमक धारिणी स्त्री की स्थानक मूर्ति बनाई गयी है। कलात्मकता की दृष्टि से इसे मध्ययुगीन प्रतिमाओं में विशेष उल्लेखनीय माना जा सकता है।

नृवराह विष्णु की एक प्रतिमा 8-9वीं शताब्दी ई० में बने चित्तौड़गढ़ के कालिकामाता के मंदिर में उत्कीर्ण की गई है। इसमें देवता का मुख वराह की तरह शेष शरीर शक्तिशाली दिव्यपुरुष की तरह अंकित किया गया है। नृवराह का दाहिना पैर दृढ़ता पूर्वक पृथ्वी पर तथा उठा हुआ बांयाँ पैर सपत्नीक शेषनाग की कुण्डलियों (फणों) पर अवस्थित है। प्रतिमा आरुढ़ मुद्रा में है तथा चतुर्भुज है। उनका नीचे का बांयां हांथ कटि पर अवलम्बित है तथा शेष तीनों हांथों में शंख चक्र एवं गदा आयुधों को अंकित किया गया है। चक्रयुक्त ऊपरी बायें हांथ पर पृथ्वी देवी को द्विभंग मुद्रा में अंकित किया गया है। इस मूर्तिफलक के ऊपरी भाग पर देवगणों को पंक्तिबद्ध रूप में अंकित किया गया है। यह प्रतिमा शिल्प ग्रन्थों में वर्णित नृवराह प्रतिमा लक्षण से बहुत साम्य रखती है। इसी प्रकार झालावाड़ जनपद के झालरापाटन नामक पुरास्थल से आलीढ़ मुद्रा में निर्मित 10वीं शती ई० की एक नृवराह मूर्ति प्राप्त हुई है देवता के दायें पैर के नीचे सर्पमिथुन का प्रदर्शन है नीचे का दक्षिण हांथ वस्त्रधारी तथा ऊपर के दोनों हाथों में क्रमशः चक्र एवं गदा धारण कराया गया है। नीचे का बायें हांथ पर कमल पर आसीन भू देवी को आश्रय देते हुए अंकित किया गया है। देवता के गले में मुक्तामणि का आभूषण विराजमान है तथा उनके

सिर पर पद्म पत्र का आच्छादन किया गया है। मूर्तिफलक के शीर्ष भाग पर मालाधारी विद्याधर अंकित किए गए हैं।

अजमेर जनपद के बघेरा नामक पुरास्थल से प्राप्त तथा सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय अजमेर में प्रदर्शित 10वीं सदी ई० की एक नृवराह मूर्ति बहुत महत्वपूर्ण है। पद्मपत्र आच्छादन के नीचे आलीढ़ मुद्रा में अंकित नृवराह का एक हांथ कटिहस्त मुद्रा में तथा शेष तीनों हांथों में गदा, शंख, एवं चक्र सुशोभित है। बांयी तरफ के नीचे हांथ की कुहनी पर भूदेवी को अंकित किया गया है तथा हथेली में शंख रूपायित किया गया है। देवता के दायें पैर के नीचे नागयुगल अंकित किए गए हैं। इसी तरह की एक मूर्ति नागदा के सास मंदिर में उत्कीर्ण मिलती है नृवराह विष्णु को आलीढ़ मुद्रा में पद्मपत्र के नीचे प्रदर्शित किया गया है। दक्षिण के नीचे के हांथ को जंघा पर दोनों ऊपरी हांथों पर गदा एवं चक्र अंकित किया गया है तथा बायें नीचें के हांथ पर शंख तथा कोहनी पर भूदेवी को दर्शाया गया है। यह मूर्ति 10वीं सदी में निर्मित की गयी थी। देवता के दांये पैर के नीचे सर्पयुगल प्रदर्शित किए गये हैं।

राज संग्रहालय आशापुरी में सुरक्षित आशापुरी नामक स्थान से प्राप्त 10वीं सदी ई० की बनी हुई नृवराह की मूर्ति अपनी सम्पूर्ण रचना में अलौकिक है। देवता को आलीढ़ मुद्रा में खड़ा 4 भुजाओं से युक्त तथा वराह मुख से युक्त विभूषित किया गया है। उनका दांया पैर कूर्म की पीठ पर तथा बायां पैर ऊपर की ओर उठा हुआ नाग युगल के फण पर आधारित पद्म पीठ पर अंकित किया गया है। देवता के नीचे का दक्षिण हांथ जंघा पर अवस्थित है तथा अर्द्ध हस्त खण्डित है ऊपर के बायें हांथ में चक्र आयुध को धारण कराया गया है। तथा इसी बांह पर भूदेवी को आश्रय प्रदान किया गया है। वाम अधःकर शंख से विभूषित है यद्यपि शंख का अधिकांश हिस्सा टूट गया है। भगवान नृवराह को अनेक आभूषणों से अलंकृत किया गया है। इस मूर्ति की एक बड़ी विशेषता यह है कि देवता के कटि में बंधी हुयी एक कटार को भी

अंकित किया गया है मूर्ति फलक के ऊपरी हिस्से में भगवान विष्णु के मत्स्य एवं कूर्म अवतारों का अंकन किया गया है। तथा विद्याधरों को भी दर्शाया गया है। फलक के नीचे के भाग पर लक्ष्मी पुरुषाकृति पंख युक्त गरुण को मूर्तित किया गया है। इस प्रतिमा में पैरों के नीचे कूर्म एवं नाग युग्मों का अंकन भी विशेष उल्लेखनीय है इस प्रतिमा में शास्त्रीय विधान से हटकर बायें हांथ के आयुधों को दिखाया गया है।

खजुराहो से नृवराह की एक प्रतिमा जो सम्प्रति खजुराहो संग्रहालय में सुरक्षित है[98] के फलक पर एक आले में बराह के सिर ठीक ऊपर योगासन मुद्रा में आसीन भगवान सूर्य नारायण को दर्शाया गया है। यह प्रतिमा 10वीं शती ई० की है। देवता को आलीढ़ मुद्रा में अंकित किया गया है उनका दाहिना पैर कच्छप पर तथा किंचित उठा हुआ बांया पैर कमल पत्र पर स्थित है। पद्म पत्र के ठीक नीचे अंजलि बद्ध मुद्रा में हांथ जोड़े नागेन्द्र दम्पति रूपायित किया गया है। नृवराह के सिर पर छत्र के समान एक पद्म पत्र फैला हुआ दिखता है। जो इस बात का द्योतक है कि भगवान नृवराह विष्णु समुद्र के जल वनस्पतियों के मध्य रसातल से पृथ्वी का उद्धार करके प्रकट हो रहे हों।

देवता के दोनों दक्षिण अधोकर कट्यवलम्बित मुद्रा में अंकित हैं जिनमें गदा धारण कराया गया है। अर्द्धवामकर की कुहनी पर नीलोत्पल धारणी वसुन्धरा देवी को आसीन दिखाया गया है। कटक से विभूषित नीचे का हांथ खण्डित हो चुका है। नृवराह का मुख भूदेवी के मुख को निहारता हुआ बनाया गया है। इस प्रतिमा में नृवराह के मुख को भूदेवी की सुगन्ध लेने में ब्यस्त दिखाया गया है। गोपीनाथ राव के अनुसार इस मुद्रा का विशद् वर्णन वैखानस आगम में प्रदत्त है।[99] नृवराह को हार, कंकड़, वनमाला, केयरु मेखला आदि

---

98. खजुराहो संग्रहालय, प्रतिमा नं० 861

99. राव गोपीनाथ टी० ए० एलीमेंट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी वाल्यूम 1 पेज 132-33।

आभूषणों से अलंकृत किया गया है तथा उनकी कटि मेखला में असिपुत्रिका स्पष्ट रूप से अंकित की गयी है। देवता के दांयें पार्श्व में लक्ष्मी तथा बायें पार्श्व में गरुण को दर्शाया गया है किंचित सघन अंकन के साथ उनके पार्श्वों में शंख एवं चक्र पुरुप को भी चित्रित किया गया है। मूर्ति फलक के ऊपरी भाग में सूर्यनारायण के अतिरिक्त ब्रह्मा, शिव, विद्याधरों तथा कूर्म, मत्स्य एवं नरसिंह, प्रभृति विष्णु अवतारों को अंकित किया गया है। मूर्तिफलक के निचले हिस्से में भगवान के बुद्ध एवं कल्कि अवतारों के अतिरिक्त उपासकों एवं भक्तों को भी अंकित किया गया है।[100] खजुराहों की इस मूर्ति में शास्त्रोक्त नृवराह विष्णु के प्रतिमा लक्षणों का पूर्ण निर्वाह मिलता है।

नृवराह की प्रतिमाऐं जो अधिकांशतया चतुर्भुजी हैं उत्तर भारत के अनेक स्थानों से बहुतायत में प्राप्त हुई हैं ये मूर्तियाँ अधिकांशतया मध्ययुगीन है जिन्हें 10-12वीं सदी के मध्य निर्मित किया गया था। देवगढ़, चांदपुर, गढ़वा, झालावाड़, जोधपुर, चित्तौड़गढ़, बादामी तथा दक्षिण भारत के अधिकांश मंदिरों की भित्तियों पर चतुर्भुज नृवराह मूर्तियाँ प्राप्य है। वराह विष्णु की प्रतिमाऐं इलाहाबाद संग्रहालय[101], मथुरा संग्रहालय[102], ग्वालियर संग्रहालय,[103] इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता,[104] पटना संग्रहालय[105] राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली[106]

---

100. दृष्टव्य अवस्थी रामाश्रय–खजुराहो की देवप्रतिमाऐं पृष्ठ 98 चित्र संख्या 31।
101. दृष्टव्य चन्द्र प्रमोद स्टोन इन कल्चर्स इन द इलाहाबाद म्यूजियम पृष्ठ 100
102. दृष्टव्य– जनरल ऑफ उ० प्र० हिस्टोरिकल सोसायटी (ओल्ड सीरीज), वाल्यूम 22 पेज 12 प्लेट 1।
103. देसाई कल्पना एस आइकोनोग्राफी ऑफ विष्णु न्यू देलही पेज 77।
104. ब्लाक टी० सप्लीमिन्टरी कटलॉग ऑफ द आर्किलाजिकल कलेक्सन ऑफ इंडियन म्युजियम पृष्ठ 83-84।
105. दृष्टव्य गुप्ता पी० एल० पटना म्यूजियम कैटलाग ऑफ इण्टिपिटीज पेट 701
106. दृष्टव्य ईस्ट एण्ड वेस्ट (न्यूसीरीज वाल्यूम 19 नं० 3-4) पृष्ठ 416 मूर्ति संख्या 4।

राजशाही संग्रहालय ढाका[107] बंगीय साहित्य परिषद संग्रहालय[108] ढाका संग्रहालय ढाका तथा अल्बर्ट एवं विक्टोरिया संग्रहालय लंदन[109] आदि में सुरक्षित हैं।

नृवराह विष्णु की एक सुन्दर प्रतिमा एलोरा के कैलासनाथ मंदिर की भित्तियों पर अंकित मिलती है।[110] महाबलि पुरम में वराह मंडप में वराह की प्रतिमा लघु उत्कीर्ण भाष्कर्य रूप में अंकित मिलती है। जिसमें देवता के सिर पर तिरछा मुकुट अंकित है। वराह की प्रतिमा बैकुण्ठ पेरुमल मंदिर कांची की भित्तियों पर भी अंकित है। दक्षिण भारत के श्रीनिवासल्लुर के कोरंगनाथ मंदिर में तथा तंजौर एवं गंगैकोण्ड चोल पुरम मंदिर तथा बृहदीश्वर मंदिर पर अंकित की गयी है।[111]

बिहार प्रान्त से 9-10वीं सदी में निर्मित एक दशावतार पट्ट प्राप्त हुआ है जिस पर बराह विष्णु का अंकन मिलता है।[112] इस पट्ट पर देवता को चतुर्भुजी दिखाया गया है। ऐसी ही एक अन्य मूर्ति कोटा संग्रहालय राजस्थान में प्राप्त होती है। जिसे शेषशायी भगवान विष्णु प्रतिमा के प्रभावली में नृवराह रूप में अंकित किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है राजकीय संग्रहालय लखनऊ में स्थित यज्ञ वराह मूर्ति की पीठ पर दशावतार के सामूहिक मूर्तन में नृवराह को द्विभुज अंकित किया गया है इसी तरह का द्विभुजी अंकन भरतपुर संग्रहालय राजस्थान में सुरक्षित दशावतार पट्ट पर भी देखने को मिलता है।

107. मजूमदार आर० सी० (सम्पादक) : हिस्ट्री ऑफ बंगाल वाल्यूम नं० 1 (हिन्दू पीरिएड पृष्ठ 436, पटना 1971।)

108. वही पृष्ठ 436 चित्र संख्या 162।

109. देसाई कल्पना एस० आइकोनोग्राफी ऑफ विष्णु पृष्ठ 78।

110. दृष्टव्य डुब्रीविल जी० जे० आइकोनोग्राफी आफ सदर्न इण्डिया पृष्ठ 69 भारत भारती प्रकाशन वाराणसी,1978

111. वही पृष्ठ 76।

112. मुकर्जी आर० के० द कास्मिक आर्ट ऑफ इण्डिया चित्र संख्या 27, बम्बई, 1965।

अध्याय 5

नरसिंह अवतार

वैदिक वाङ्गमय में सर्वप्रथम तैत्तिरीय आरण्यक[1] में नृसिंह का उल्लेख मिलता है–

वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि

तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात।।

उक्त ब्राह्मण के इस अंश को कतिपय विद्वान परवर्ती[2] अवतरण मानते हैं। पी० वी० काणें ने विद्वानों का ध्यान विष्णु के नरसिंहावतार की कथा को कतिपय तत्व इन्द्र के तथा दैत्येन्द्र नमुचि'' के आख्यान से संयुक्त मानते हैं।[3] वस्तुतः विष्णु के इस अवतार का मूलस्त्रोत अज्ञात है प्राचीन मिश्र देश की सांस्कृतिक परम्परा में अर्द्धसिंह रूप धारण करने वाली इष्फिंग्स नामक देवता का उल्लेख मिलता है। इस सम्भावना से इंकार नही किया जा सकता कि प्राचीन भारत एवं मिश्र देश के बीच स्थापित सांस्कृतिक आदान-प्रदान के क्रम में इस्फिंग्स नामक देवमूर्ति जिसमें अर्द्धसिंह एवं अर्द्धपुरुष शरीर का रुपायन होता था की परम्परा का प्रभाव भारतीय संस्कृति में आ गया हो। यहाँ यह ध्यातब्य है कि इस्फिंग्स रूप वाले स्तम्भों का निर्माण पल्लव एवं चोल युगीन शासकों को बहुत प्रिय था पल्लवशासक राजसिंह के समय में निर्मित मंदिर स्तम्भों को सिंह रूप में जिनका कि मुख लगभग मानव के समान होता था निर्मित करने की परम्परा विशेष लोकप्रिय थी।

हापकिंस का विचार है कि नृसिंह विशेषण विष्णु के प्रारम्भिक रूप की

---

1. तैत्तिरीय आरण्यक 10.1.7
2. कीथ इण्डियन मैथालाजी पृष्ठ 80।

नही बल्कि उनकी ओजस्विक श्रेष्ठता प्रदर्शित करने वाला एक विशेषण मात्र था जिसका मूल तात्पर्य है सिंह के समान परमपराक्रमी पुरुष। वस्तुतः विष्णु के लिए नृसिंह के समान ही ऐसे अनेक विशेषण मिलते हैं यथा परम पुरुष, पुरुषोत्तम, आदि जो उनकी प्रधानता है तथा श्रेष्ठता के परिचायक हैं। पुरुष की श्रेष्ठता का परिचय देने वाला यह शब्द महाभारत के शल्य पर्व में भी प्राप्त होता है[4] आर० ओट्टो के मतानुसार नृसिंह मूलतः एक स्वतंत्र देवता थे जिनको शक्ति का अवतार माना जाता था।[5] सुवीरा जायसवाल के अनुसार नृसिंह भी विनायकों की तरह एक स्वतंत्र किन्तु भयानक देवता थे जिनको भयंकर क्रोध के लिए पूजा जाता था।[6] अपने मत की पुष्टि में उन्होंने विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्राप्त विभिन्न प्रकार की बाधाओं को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार की नृसिंह पूजा का विधान किया है।[7] नृसिंह देव की उपासना ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में संभवतः बहुत लोकप्रिय रही होगी। तैत्तिरीय आरण्यक में उनके स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनके पंजे शक्तिशाली तथा दांत अत्यन्त तीक्ष्ण हैं।[8]

---

3. काणे पी० वी० हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र वाल्यूम 2 पृष्ठ 718-19
4. महाभारत शल्य पर्व 53.23 सुरर्पभा ब्राह्मण सतमाश्च।

    तथा नृपाद्या नरदेव मुख्याः।।
    इष्ट्वा महार्हैः ऋतुभिः नृसिंहाः।
    संत्यज्य देहान सुगतिं प्रपन्नाः।।

5. आर ओट्टो-द विश्वभारती क्वाटर्ली–खं० 1 भा० 2 पृष्ठ 17 द ओरिजिनल गीता पृष्ठ 240-41
6. जायसवाल सुवीरा वैष्णव धर्म का उद्‌भव एवं विकास पृष्ठ 125
7. विष्णु धर्मोत्तर पुराण– 3.119.13– तमेव राजशार्दूलं कृषि कर्मप्रसिद्धये।

    सर्वकामप्रदं देवं यथेष्टीं तनुमास्थितम्।।

8. तैत्तिरीय आरण्यक– 10.1.6

चरक संहिता में कष्टदायक प्रेतात्माओं को घरों में प्रवेश करने से रोकने के लिए पुरुष सिंह विष्णु कष्ण विश्वकर्मा, भव तथा विभव एवं सब देवों का एक साथ आह्वान करने का विधान बताया गया है।[9] यहाँ पुरुष सिंह से तात्पर्य नृसिंहदेव से है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में नरसिंह शब्द का प्रयोग किया है।[10]

नृसिंह पूर्वतापनीय एवं नृसिंह उत्तरतापनीय उपनिषदों में नृसिंह को सृष्टि का आदि कारण एवं परमतत्व बताया गया है इन उपनिषदों में हिरण्यकश्यप का न तो उल्लेख किया गया है और न ही अर्द्धसिंह एवं अर्द्धनर रूप का ही। वस्तुतः इनमें नृसिंह शब्द को गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक भावों के अर्थ में ग्रहण किया गया है।

कामिन बुल्के[11] ने वामन एवं नृसिंह के अवतारों को प्रारम्भ से ही विष्णु से सम्बन्धित बताया है। उनके अनुसार नृसिंहावतार की कथा सर्वप्रथम तैत्तिरीय आरण्यक के परिशिष्ट (10, 1, 6) फिर नारायणीयोपाख्यान, हरिवंश पुराण तथा विष्णु पुराण आदि में मिलती है। महाभारत में वन पर्व के 272वें अध्याय में विष्णु के नृसिंहावतार की कथा वर्णित है। परन्तु इसमें न तो उनके स्तम्भ से प्रकट होने का और न ही प्रहलाद का उल्लेख किया गया है। अर्द्धसिंह एवं अर्द्धमानव रूप में विचित्र रूप धारण करके विष्णु ने हिरण्यकश्यप को आक्रान्त किया। भयाक्रान्त हिरण्यकश्यप शूल से उनके ऊपर आक्रमण किया परन्तु

---

9. चरक संहिता चिकित्सा स्थान 23.90-94

10. कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तल 7.3–

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धतदाननकण्टकम्।

तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः।।

11. बुल्के कामिल रामकथा उत्पत्ति एवं विकास पृष्ठ 113 अनुवाक 141

चरक संहिता में कष्टदायक प्रेतात्माओं को घरों में प्रवेश करने से रोकने के लिए पुरुष सिंह विष्णु कष्ण विश्वकर्मा, भव तथा विभव एवं सब देवों का एक साथ आह्वान करने का विधान बताया गया है।[9] यहाँ पुरुष सिंह से तात्पर्य नृसिंहदेव से है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में नरसिंह शब्द का प्रयोग किया है।[10]

नृसिंह पूर्वतापनीय एवं नृसिंह उत्तरतापनीय उपनिषदों में नृसिंह को सृष्टि का आदि कारण एवं परमतत्व बताया गया है इन उपनिषदों में हिरण्यकश्यप का न तो उल्लेख किया गया है और न ही अर्द्धसिंह एवं अर्द्धनर रूप का ही। वस्तुतः इनमें नृसिंह शब्द को गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक भावों के अर्थ में ग्रहण किया गया है।

कामिन बुल्के[11] ने वामन एवं नृसिंह के अवतारों को प्रारम्भ से ही विष्णु से सम्बन्धित बताया है। उनके अनुसार नृसिंहावतार की कथा सर्वप्रथम तैत्तिरीय आरण्यक के परिशिष्ट (10, 1, 6) फिर नारायणीयोपाख्यान, हरिवंश पुराण तथा विष्णु पुराण आदि में मिलती है। महाभारत में वन पर्व के 272वें अध्याय में विष्णु के नृसिंहावतार की कथा वर्णित है। परन्तु इसमें न तो उनके स्तम्भ से प्रकट होने का और न ही प्रहलाद का उल्लेख किया गया है। अर्द्धसिंह एवं अर्द्धमानव रूप में विचित्र रूप धारण करके विष्णु ने हिरण्यकश्यप को आक्रान्त किया। भयाक्रान्त हिरण्यकश्यप शूल से उनके ऊपर आक्रमण किया परन्तु

---

9. चरक संहिता चिकित्सा स्थान 23.90-94

10. कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तल 7.3–

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवमुद्धतदाननकण्टकम्।

तव शरैरधुना नतपर्वभिः पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः।।

11. बुल्के कामिल रामकथा उत्पत्ति एवं विकास पृष्ठ 113 अनुवाक 141

शक्तिशाली नृसिंह अपने तीक्ष्ण नखों से हिरण्यकश्यप को चीर डाला[12] मत्स्य पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण[13] में नृसिंह विष्णु का तो वर्णन मिलता है। परन्तु हिरण्य कश्यप के पुत्र भक्त प्रहलाद से सम्बन्धित व्याख्यान अत्यल्प है।

पुराणों में विष्णु के नृसिंहावतार लेने का मुख्य उद्देश्य अहंकारी दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप का वध करना बताया गया है।[14] भागवत पुराण के अनुसार विष्णु के नृसिंहावतार लेने का मुख्य उद्‌देश्य क्रूर दैत्य हिरण्यकश्यप का वध करके भक्त प्रहलाद की रक्षा बतलाया गया है। इसमें वर्णित कक्षा के अनुसार हिरण्यकश्यप ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा से यह वरदान मांगा था कि वह किसी भी प्राणी से आकाश, पाताल, पृथ्वी आदि कहीं पर भी किसी शस्त्र से दिन

---

12. महाभारत वनपर्व 272-56-60 पुनरेव महाबाहुरपूर्वां तनुमाश्रितः।

नरस्य कृत्वार्धतनुं सिहस्यार्धतनुं प्रभुः।।

दैत्येन्द्रस्य सभां गत्वा पाणिं संस्पृश्य पाणिना

दैत्यानामादिपुरुषः सुरारिर्दितिनन्दनः।।

दृष्टवाचापूर्व पुरुषं क्रोधात संरक्तलोचनः।

शूलोद्यतकरः सृग्वी (V. I. धन्बी) हिरण्यकशिपुस्तदा।।

मेघस्तनितनिर्घोषो नीलाभ्रचयसन्निभिः।

देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंह, समुपाद्रवत।।

समुपेत्य ततस्तीक्ष्णैः मृगेन्द्रेण बलीयसा।

नारसिंहेन वपुपा दारितः करजैः भृशम्।।

13. मार्कण्डेयपुराण 4.55 कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्य कशिपुर्हतः।

विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः।।

14. हरिवंश 3.43 भागवत पुराण 7.2.10-12 अग्नि पुराण 4.3-5, 276.10-13

अथवा रात्रि में न मारा जाय।[15] विष्णु को अर्द्धनर, अर्द्धपशु जैसा विचित्र रूप इसी वरदान के कारण ग्रहण करना पड़ा था कथा के अनुसार जब हिरण्यकश्यप अपने पुत्र प्रहलाद को मारने के लिए उद्धित हुआ उस समय राजदरबार के खम्भे को तोड़कर नरसिंह रूप में भगवान प्रकट होकर गर्जना करने लगे। भागवत पुराण में उनके अत्यन्त भयानक रूप का विशद वर्णन प्राप्त होता है तपाये हुये सोने के समान उनकी विशाल भयानक आंखे तथा जम्हाई लेने से गरदन के बाल इधर-उधर लहरा रहे थे।[16]

नृसिंह की दाढ़ें बड़ी विकराल थी तथा उनकी जीभ तलवार की तरह लपलपाती हुई तथा छूरे के धार के समान तीखी थी। क्रोध से तमतमाये एवं टेढ़ी भौहों से उनका मुख और भी दारुण हो गया था उनके कान ऊपर की ओर उठे हुए निश्चल थे फूली हुई नासिका और पहाड़ की गुफा के समान खुला हुआ मुँह अद्भुत जान पड़ता था। फटे हुए जबड़ों से उसकी भयंकरता और बढ़ गयी

---

15. भागवत पुराण 7.3.35-38– यदि दास्यस्यभिमतान् वरान्मे वरदोत्तम भूतेभ्यस्वृद्विसृष्टिभ्यो मृत्युर्माभून्मम प्रभो।

    नान्तर्बहिर्दिवा नन्कमन्यस्मादपि चायुधैः।
    न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि।।
    ब्यसुभिर्वासुमद्धिर्ण सुरासुरमहोरगैः।
    अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम।।
    सर्वेपां लोकपालनां महिमानं यथाऽऽत्मनः।
    तपोयोग प्रभावाणां पन्न रिष्यति कर्हिचित्।।

16. भागवत पुराण 7.8.20 मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो

    नरसिंह रुपस्यदलं भयानकं।
    प्रपप्तचामीकर चण्डलोचनं
    स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम्।।

थी।[17] नृसिंह का विशाल शरीर स्वर्ग को स्पर्श कर रहा था उनकी गर्दन कुछ नाटी एवं मोटी थी उनकी कमर बहुत पतली तथा छाती चौंड़ी थी उनके शरीर पर के रोंए चन्द्रमा की किरणों के समान चमक रही थी चारों ओर सैकड़ों भुजाएं फैली थी जिनके बड़े-बड़े नख आयुध का कार्य कर रहे थे।[18] उनका अत्यन्त भयानक रूप देखकर उनके समक्ष किसी के जाने का साहस नहीं हो रहा था। हिरण्यकश्यप को इस बात की आशंका होने लगी थी कि कहीं महामायावी विष्णु ने मुझे मारने के लिए तो नहीं यह रूप ग्रहण किया।[19] भागवत पुराण में बताया गया है कि नरसिंह भगवान का रूप न तो पूरा-पूरा सिंह का ही था और न ही मनुष्य का (स्तम्भे सभायां नमृगं न मानुषम्)[20] इसीलिए हिरण्यकश्यप को नरसिंह के रूप में किसी अलौकिकता की आशंका हुई थी।

---

17. भागवत पुराण 7.8.21 करालंदंष्ट्रं कखालचञ्चल
क्षुरान्तजिह्वं भ्रकुटीमुखोल्बणम्।
स्तब्धोर्ध्वकर्णः गिरिकन्दराद्भुत
ब्यात्तास्यनासं हनुभेद भीषणम्।।

18. वही– 7.8.22 दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवर
ग्रीवोरुवक्षः स्थलमल्पमध्यमम्।
चंद्रांशु गौरैश्छुरितं तनूहै
विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम।।

19. वही 7.8.23– दूरासदं सर्वनिजे तरायुध
प्रवेक विद्रावित दैत्यदानवम।
प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना
वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेनकिम्।।

20. वही 7.8.18तथा 19– नायं मृगो नापि नरो विचित्र
महो किमेतन्नृमृगेन्द्ररुपम्।।

हिरण्यकश्यप नरसिंह को अपना शत्रु समझकर हांथ में गदा लेकर सिंह नाद करता हुआ उन पर टूट पड़ा अपनी गदा को बड़े जोर से घुमाकर नरसिंह भगवान पर प्रहार किया परन्तु प्रहार करते समय ही नृसिंह ने गदा सहित उस दैत्य को उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे गरुण सांप को पकड़ लेता है। कुछ देर के बाद नृसिंह ने हिरण्यकश्यप को छोंड़ दिया तदुपरांत वह ढाल तलवार लेकर उन पर दौड़ पड़ा फिर नृसिंह ने अट्टहास करके प्रहलाद को उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे सांप चूहे को पकड़ लेता है। नृसिंह भगवान ने दैत्यराज को सभामण्डप में ले जाकर तथा उसे अपनी जांघों में गिराकर उसके शरीर को उसी प्रकार फाड़ डाला जैसे गरुण महाविषधर सांप को चीर डालता है।[21] नृसिंह भगवान ने जिस समय दैत्यराज हिरण्यकश्यप को मारा उस समय उनकी क्रोध से भरी विकराल आँखों की ओर देखना सम्भव नही था खून के छीटों से उनके बाल लाल-लाल हो रहे थे वे अपनी लपलापती हुई जीभ से फैले मुंह के दोनों कोने चाट रहे थे। दैत्यराज को मारते हुए देखकर हजारों दैत्य दानव सैनिक हांथों में शस्त्र लेकर नृसिंह को मारने के लिए दौड़े परन्तु उन्होंने प्रत्येक दैत्य को खदेड़-खदेड़ कर मार डाला।[22]

---

21. भागवत पुराण 7.8.28-29 तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभि

श्चरन्तम मच्छिद्रमुपर्यधो हरिः

कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्वणं

निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः।।

विष्वक स्पुरन्तं गृहणातुरं हरि–

र्व्याले यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम्।

द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया

नखैर्यथाहि गरुड़ो महाविषम्।।

22. वही 7.8.31

भागवत पुराण में प्रदत्त दैत्यराज हिरण्यकश्यप के वध के समय नृसिंह विष्णु के भयंकर एवं विकराल स्वरूप को अन्य पुराणों में किंचित संक्षेप के साथ प्रस्तुत किया गया है। विष्णु पुराण में नृसिंह अवतार का वर्णन बहुत संक्षेप में आया है।[23] इसमें हिरण्यकश्यप एवं नृसिंह के युद्ध का वर्णन नहीं किया गया है। नरसिंह पुराण में हिरण्यकश्यप दिति का पुत्र कहा गया है[24] इस पुराण में भी भागवत पुराण की तरह विस्तार पूर्वक ब्राह्मण द्वारा हिरण्यकश्यप को वर प्राप्ति तथा अन्ततः प्रहलाद की रक्षा करते हुए हिरण्यकश्यप का वध कर दिया।[25]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में यह कहा गया है कि भगवान विष्णु ने संकर्षण के अंश से नृसिंह रूप धारण किया था।[26] इस पुराण में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि भगवान विष्णु ने अपना नरसिंह अवतार मद्रदेश में ग्रहण किया था। (कर्णाटि पाश्वसिरशं मद्रदेशे नृकेसरिम्)। यहाँ मद्रदेश से तात्पर्य उत्तर मद्र क्षेत्र से न होकर दक्षिण मद्रदेश से लगाया जाता है। जिसकी पहचान पंजाब के मध्यवर्ती प्रदेश से माना जाता है। इसका मुख्य नगर प्राचीन साकल अथवा सागर नगर था जिसकी पहचान वर्तमान स्यालकोट (पाकिस्तान) से की जाती है। पंजाब में आज भी नृसिंह विष्णु की उपासना बहुत लोकप्रिय है कांगड़ा

---

23. विष्णु पुराण अध्याय 20

24. नरसिंह पुराण 40.2 दितेः पुत्रो महानासी द्धिरण्यकशिपुः पुरा।

तपस्तेपे निराहारो बहुवर्षसहस्रकम।।

25. वही अध्याय 44 31-32 एवं वदति दैत्येन्द्र ददार नरकेसरी।

हृदयं दैत्यराजस्य पद्मपत्रमिव द्विपः।।

शकले द्वे तिरोभूते नखरन्ध्रे महात्मनः।

ततः क्व यातो दुष्टोऽसाविति देवोऽतिविस्मतः।।

26. विष्णु धर्मोत्तर पुराण– 3.78.7 हरिः संकर्षणांशेन नरसिंहवपुर्धरः

तमसस्त्रिविधस्मापि नाशनो जगतां हरिः।।

जनपद में प्रत्येक रविवार को यहाँ के निवासी नारियल के रूप में नृसिंह की उपासना किया करते हैं।[27] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नृसिंह प्रतिमाविधान को लक्षित करते हुए कहा गया है कि इस रूप में देवता को मीन स्कन्ध, मोटी गर्दन वाला, पतली कमर वाला, कृषउदरवाला नील कमल की आभा से युक्त तथा नीले वस्त्रों को धारण करने वाला रूपायित करना चाहिए शरीर के अंगों को आभूषणों से सुसज्जित ज्वालाओं से आलोकित देवता का मुख चमकती हुई छटा से युक्त होना चाहिए।[28] नृसिंह भगवान को इस रूप में दिखाया जाना चाहिए जिसमें वे अपनी जांघ पर पड़े हुए हिरण्यकश्यप का वक्षस्थल अपने हांथों के तीक्ष्णनखों से विदीर्ण कर रहे हों।[29]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में नरसिंह के रूप को ज्ञान का रूप बताया गया है (नृरसिंहम् ज्ञानरूपिणं) उनकी तीक्ष्णदाढ़ें भयानक मुख बड़े-बड़े सुन्दर अयाल, हजारों यम के समान क्रोधपूर्ण सहस्त्रों इन्द्र के समान पराक्रमशाली, सहस्त्रों कुबेर के समान एश्वर्यशाली तथा मन से भी अधिक तीव्रगामी स्वरूप का पुराणकार वर्णन करता है।[30] इस रूप में नरसिंह की जिह्वा विद्युत के समान लपलपाती

---

27. दृष्टव्य एपिग्राफिका इण्डिका वाल्यूम 24 पृष्ठ 156

28. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.78.2.3 पीनस्कन्द कटिग्रीवः कृशमध्यः कृशोदरः
सिंहासने नृदेहस्तु नीलवासाः प्रभान्वितः।।
आलीढ़ स्थानसंस्थानः सर्वभरण भूषितः।
ज्वालामाला कुलमुखौ ज्वाला केशर मण्डलः।।

29. वही 3.78.4 हिरण्यकशिपोर्वक्षः पाप्यन्न खरैः खरैः।
नीलोत्पलाभः कर्तब्यो देवजानुगतस्तथा।।

30. वही 3.106.38-39 देवमावाहयिष्यामि नृसिंहम ज्ञानरुपिणं।
दंष्ट्रा करालवदन मलातमासितेक्षणम्।।
सहस्त्रयमसक्रोधं सहस्त्रेन्द्र पराक्रमम।
सहस्त्र धनदनं स्फीतं मनसोप्यति शीघ्रगम

हुई, खुला मुख, भृकुटि कुटिल, मुख भयंकर तथा मुख की कान्ति अग्नि की ज्वाला पुंज की तरह चमकती एवं तेजपूर्ण बताई गयी है।[31]

12वीं सदी के सुप्रसिद्ध शिल्पग्रन्थ अपराजित प्रच्छा में पुराणोक्त नरसिंह प्रहलाद कथा के साथ-साथ नृसिंह विष्णु के प्रतिमा स्वरूप का भी निरूपण किया गया है। इसमें कहा गया है कि सभामण्डप के स्तम्भ को फोड़कर बाहर निकले नृसिंह के शरीर का ऊर्द्धभाग सिंह की तरह तथा अधोभाग मनुष्य के सदृश निर्मित करना चाहिए। देवता के नख एवं मुख विकृत, बड़े-बड़े तीक्ष्णदांत, बाल चन्द्रमा एवं सूर्य के सदृश वर्ण वाला, नेत्र पिंगल, कर्णस्तब्ध, अग्रकेश घुंघराले तथा मुखाकृति अग्नि के सदृश तेजस्वी बताया गया है।[32] इस ग्रन्थ में विष्णु के नृसिंह रूप को स्थूण अर्थात स्तम्भ सहित प्रतिमा निर्माण का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार का उल्लेख वैखानस आगम[33] में भी मिलता है (गिरिज स्थूण जस्चेति)। गोपीनाथ राव[34] ने नृसिंह प्रतिमा को द्विमूर्ति कहा है क्योंकि इसमें नर एवं सिंह के रूपों का मिश्रण मिलता है प्राचीन भारतीय कला में नृसिंह प्रतिमा को दो रूपों में निर्मित देखा जा सकता है–

(1) गिरिज नृसिंह रूप में

(2) स्थूण नृसिंह रूप में

---

31. वही 3.106.40-41– विद्युत जिह्वं व्यादितास्यं भ्रकुटी कुटिललाननम्।
वह्नि ज्वालावली पुञ्जदुर्निरीक्ष्य मुखश्रियम्।।
आगच्छेह नृसिंहाघ महाबल पराक्रमं।
वज्रतीक्ष्णनखाक्रान्त महादैत्येन्द्र जीवित।।

32. अपराजित प्रच्छा 26.7-9

33. वैखानस आगम 42

34. दृष्टव्य राव गोपीनाथ एलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी वाल्यूम 1 भाग 1 पृष्ठ 158

बैखानस आगम में भी नृसिंह को इन्ही दो रूपों में निर्मित करने का विधान दिया गया है।[35] गिरिज नृसिंह रूप देवता को पर्वत की गुफा से निकलता हुआ प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रतिमा रूप को केवल नृसिंह रूप भी कहा जाता है। गिरिज नृसिंह को चार भुजाओं से युक्त अंकित करने का विधान मिलता है। सामने के दोनों हाथ घुटनों तक विस्तीर्ण तथा पीछे के दोनों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र धारण किए हुए बनाने का विधान दिया गया है।[36] शिल्परत्न में नृसिंह को दो भुजाओं से युक्त स्फटिक शिलाओं की भांति श्वेत, उन्मत्त शरीर वाला तथा बैठे हुये बनाने का निर्देश दिया गया है।[37] रुपमण्डन में नृसिंह की प्रतिमा को आंकने के लिए उनके मुख को सिंह की तरह बड़े-बड़े तीक्ष्ण दातों से युक्त उरु टेढ़ा तथा हिरण्यकश्यप के वक्षस्थल को अपने दोनों हांथों से विदीर्ण करते हुए अंकित करने का उल्लेख किया गया है।[38] इस प्रकार रूप मंडन में द्विभुजी नृसिंह प्रतिमा निर्माण का विधान दिया गया है। देवतामूर्ति प्रकरण में भी नृसिंह को द्विभुजी रूपायित करने का विधान मिलता है।[39] इसमें अन्यत्र नृसिंह को चतुर्भुजी एवं अष्टभुजी भी बनाने का विधान दिया गया है। इस प्रकार देवतामूर्तिप्रकरण में नृसिंह के स्थूणरूप का एवं नृसिंह रूप दोनों तरह की प्रतिमाओं के निर्माण का प्रतिमा लक्षण प्रस्तुत किया गया है।

स्थूण एवं नृसिंह रूप प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला दोनों में अधिक लोकप्रिय एवं व्यापक है। पुराणों में इसी रूप का सर्वाधिक वर्णन

---

35. दृष्टव्य वैखानस आगम अध्याय 42 (नारसिंहो द्विविधो गिरिजस्स्थूणजश्चेति)

36. दृष्टव्य वैखानस आगम अध्याय 42

37. शिल्परत्न अध्याय 25.11

38. रुपमण्डन 3, 25 नृसिंह सिंहवक्त्रोऽतिदंष्ट्रालः कुटिलोरुकः हिरण्योरस्थलासक्तविदारणकर द्वयः।।

39. देवता मूर्ति प्रकरण 5.83

मिलता है। इस रूप में नृसिंह विष्णु को खम्भे को तोड़कर निकलता हुआ प्रदर्शित करने का विधान मिलता है। अग्निपुराण[40] में देवता को खुले मुखवाला तथा बायें उर पर दैत्यराज को डालकर उसका उदर विदीर्ण करने वाला कहा गया है। वे अपने दो हांथों में चक्र तथा गदा धारण करते हैं। रूपमण्डन एवं शिल्परत्न में भी नृसिंह के भयानक रूप को अंकित करने का विधान दिया गया है जबकि भागवत पुराण में नृसिंह के स्वरूप को अत्यन्त सहज बताया गया है। वस्तुतः स्थूण नृसिंह को स्तम्भ से निकलकर दैत्यराज हिरण्यकश्यप पर झपटना उसे खींचकर देहली पर ले जाकर अपनी जंघाओं पर लिटाकर उसके उदर को विदीर्ण कर देने का अंकन ही इस प्रतिमा का सहज एवं स्वाभाविक रूप हो सकता है। अधिकांश प्रतिमाएं इसी रूप में मिलती हैं। नृसिंह की स्थूण प्रतिमा अंकित करते समय कितनी भुजाएं होनी चाहिए इसका स्पष्ट उल्लेख पुराणों में नहीं किया गया है। भागवत पुराण में नृसिंह की हजार भुजाओं का उल्लेख किया गया है।[41] इसके विपरीत रूपमंडन[42] तथा शिल्परत्न[43] में स्थूण नृसिंह को आठ भुजाओं से युक्त बताया गया है।

गोपीनाथ राव ने नृसिंह प्रतिमाओं के दो अन्य रूपों का भी उल्लेख किया है। प्रथम यानक नृसिंह रूप तथा दूसरी लक्ष्मीरूप में नृसिंह। यानक नृसिंह को प्रतिमाओं में गरुण के कन्धे पर आसीन तथा शेषनाग को उनके सिर पर अपने फण की छत्र से आवृत्त करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इसके विपरीत लक्ष्मी नृसिंह रूप में भगवान नृसिंह के साथ लक्ष्मी को भी प्रदर्शित किया जाता

---

40. द्रष्टव्य अग्नि पुराण 49.4

41. भागवत पुराण 7.8.22– चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तमूरुहै।
विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधं।।

42. रुपमण्डन 3.25

43. शिल्परत्न 25.13

है। लक्ष्मी नृसिंह रूप से सम्बन्धित कथा भागवत पुराण में आख्यात है। इसमें कहा गया है कि दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप का वध करने के पश्चात् भी जब नृसिंह का क्रोधशांत नही हुआ तब देवताओं ने उन्हें शान्त करने के लिए देवी लक्ष्मी को उनके समीप भेजा।[44]

नृसिंह : द्विभुजी मूर्ति

रुपमंडन[45] देवतामूर्ति प्रकरण,[46] मानसोल्लास[47] तथा वैखानस आगम[48] में नृसिंह को दो भुजाओं से युक्त सिंह के सद्दश मुख वाला, तीक्ष्ण दांतों वाला, कुटिल उर भाग वाला तथा दैत्यराज हिरण्यकश्यप को अपने जंघे पर विदीर्ण करने वाला रूप में रूपायित करने का विधान प्रस्तुत किया गया है।

मूर्तिकला में शिल्पग्रन्थ रूपमण्डन के विवरण से पर्याप्त साम्य रखने वाली एक नृसिंह प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है जो इस समय भारत कलाभवन वाराणसी में संगृहीत हैं। यह मूर्ति गुप्त युगीन है जिसमें द्विभुज नृसिंह को विकराल मुख से युक्त तथा जानु पर लेटे दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप के शरीर को विदीर्ण करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार इलाहाबाद जनपद के ऊंचडीह नामक स्थान से नृसिंह की एक द्विभुजी प्रतिमा प्राप्त हुई है। जिसमें नृसिंह द्वारा हिरण्यकश्यप का उदर विदीर्ण करने का दृश्य दिया गया है। इस प्रतिमा में देवता का दाहिना हांथ खण्डित हो चुका है। इसकी तिथि 9वीं सदी

---

44. भागवत पुराण 7.9.2 साक्षाच्छीः प्रेषिता देवैर्दृष्टा तन्महदद्भुतम्।

अष्टाश्रुत पूर्वत्वात सा नोपेयाय शङ्किता।।

45. रुपमण्डन– 3, 25

46. देवता मूर्तिप्रकरण– 5, 83

47. मानसोल्लास– 2, 3, 1, 709-10

48. वैखानस आगम अध्याय 42

ई० मानी जाती है इसे सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित किया गया है। द्विभुजी नृसिंह की एक प्रतिमा जम्मू-कश्मीर के अनन्तनाग जनपद के वेरीनाग नामक स्थान से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा ग्रेलाइन स्टोन से बनी है। जिसकी तिथि 12वीं सदी ई० मानी जाती है। इसमें विशालकाय नृसिंह अपनी दोनों भुजाओं से दैत्यराज हिरण्यकश्यप की हत्या करते हुए प्रदर्शित किए गए है। इस समय यह प्रतिमा एस० पी० एस० संग्रहालय श्रीनगर में सुरक्षित है।

खजुराहो की सुप्रसिद्ध नृवराह की मूर्ति की प्रभावली में द्विभुजी नृसिंह प्रतिमा का अंकन मिलता है। इसी प्रकार राजकीय संग्रहालय लखनऊ[49] में सुरक्षित यज्ञवराह मूर्ति के पृष्ठ भाग पर विष्णु के अन्य अवतारों के साथ विष्णु के नृसिंह अवतार का भी निर्माण किया गया है। इसमें देवता को द्विभुजी अंकित किया गया है। शासकीय संग्रहालय भरतपुर में सम्प्रति संग्रहीत दशावतार पट्ट पर भी द्विभुजी नृसिंह रूप को अंकित किया गया है। इस पट्ट पर नृसिंह को दैत्यराज हिरण्यकश्यप का वध करते हुए दिखाया गया है।

बसाढ़ (बिहार प्रांत) तथा अनन्तनाग (जम्मू कश्मीर) से प्राप्त द्विभुजी नृसिंह प्रतिमाओं का स्वरूप देवतामूर्ति प्रकरण में वर्णित प्रतिमा लक्षण से पर्याप्त साम्य रखती है। बसाढ़ से प्राप्त नृसिंह को वनमालाधारी तथा एक ऊँचे आसन पर ललितासन मुद्रा में बैठा हुआ प्रदर्शित किया गया है। उनका बायाँ हाथ जांघ पर तथा दाहिना हांथ अभय मुद्रा में दिखाई पड़ता है। इसमें देवता का मुख प्रसन्न मुद्रा में अंकित किया गया है।

चतुर्भुजी नृसिंह मूर्ति–

देवतामूर्ति प्रकरण में नृसिंह को चार भुजाओं से युक्त बनाने का विधान दिया गया है इस ग्रन्थ के अनुसार उनके ऊपरी दांये हांथ में पद्म तथा बांये

---

49. दृष्टब्य देसाई कल्पना यश आइकोनोग्राफी ऑव विष्णु पृष्ठ 86

हांथ में गदा धारण होनी चाहिए। सामने की दोनों भुजाओं को जान तक लम्बायमान निर्मित करना चाहिए देवता के दक्षिण पार्श्व में चक्र तथा वाम वार्श्व में शेषनाग को अंकित करने का विधान दिया गया है।[50] लगभग इसी प्रकार का विवरण शिल्पग्रन्थ मानसोल्लास[51] में भी मिलता है। परन्तु इसमें देवतामूर्ति प्रकरण से हटकर शंख को नृसिंह के वाम पार्श्व में अंकित करने का विधान दिया गया है।

चतुर्भुज नृसिंह प्रतिमाएं हमें गुप्तकाल से ही प्राप्त होने लगती हैं। देवगढ़ (ललितपुर उ० प्र०) के दशावतार मंदिर पर नृसिंह प्रतिमा का अंकन चतुर्भुज रूप में किया गया है। इस प्रतिमा में देवता को सुखासन मुद्रा में लीन तथा सामान्य आभूषणों से विभूषित दर्शाया गया है। उनके पीछे के दांयें एवं बायें हांथ में शंख एवं गदा को तथा सामने के दोनों दांयें बायें हांथ जान पर रखे हुए हैं। नृसिंह प्रतिमा के बायीं ओर अंजलिबद्ध मुद्रा में भक्त प्रहलाद को अंकित किया गया है।[52] नृसिंह विष्णु की एक चतुर्भुज प्रतिमा जो मध्ययुगीन है भारत कला भवन वाराणसी में संग्रहीत है। इसमें चतुर्भुजी नृसिंह के हांथों में क्रमशः गदा, पद्म शंख एवं चक्र आयुध प्रदर्शित किए गए हैं नृसिंह इस प्रतिमा में समभृंग मुद्रा में खड़े दिखाये गये है। इसी प्रकार चतुर्भुज नृसिंह की एक दूसरी प्रतिमा दीनाजपुर से प्राप्त हुई है। जिसमें देवता के हांथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म दर्शाया गया है नृसिंह के दोनों पार्श्वों में क्रमशः श्री एवं पुष्टि देवियों का भी अंकन किया गया है। ऐसी ही नृसिंह की एक चतुर्भुजी प्रतिमा पढौली (मुरैना म० प्र०) के शिव मंदिर के एक दशावतार पट्ट पर अंकित मिलती है इसमें देवता का एक पैर किसी दैत्य की पीठ पर तथा हिरण्यकश्यप उनकी दोनों जांघों

---

50. दृष्टव्य देवतामूर्ति प्रकरण 5.84-85

51. मानसोल्लास 2.3.1.710-12

52. विशेष विवरण हेतु दृष्टव्य देसाई कल्पना यस आइकोनोग्राफी आफ विष्णु पृष्ठ 86-87

के बीच में लेटा हुआ दिखलाया गया है। भगवान नृसिंह अपने सामने के दोनों हांथों से उदर के विदीर्ण करने की मुद्रा में दिखाये गए हैं तथा पीछे के दोनों हांथों में शंख एवं चक्र जैसे आयुध दर्शाये गए हैं। नृसिंह विष्णु की अनेक प्रतिमाएं म० प्र० में प्राप्त होती हैं इनमें से गुप्तयुगीन अथवा प्राक्गुप्त युगीन प्रतिमा द्विभुजी हैं परन्तु मध्ययुगीन प्रतिमा सामान्यतः चतुर्भुजी तथा कुछ एक अष्टभुजी भी हैं यहाँ गुप्त एवं आसन्न गुप्तोत्तर काल की प्रतिमाएं जो सामान्यतः चतुर्भुजी हैं में शंख, चक्र, गदा जैसे वैष्णव आयुधों का अंकन देखने को मिलता है। मध्य प्रदेश में नृसिंह विष्णु के लगभग ग्यारह मंदिर प्राप्त हुए हैं इसके अतिरिक्त शिव एवं विष्णु मंदिरों की भित्तियों पर बने दशावतार पट्टों पर भी नृसिंह प्रतिमाएं उकेरी हुई मिलती हैं। गुप्तयुगीन नृसिंह प्रतिमाएं उदयगिरि, विदिशा, केशकल (बस्तर जनपद) गड़धनौरा, सिन्दुसी, रामगढ़, गुना, नचना के पास स्थिति तेलीयगढ़, बेसनगर, नचनाकुटरा (पन्ना जनपद) पलहेजपुर, तिगवा, जबलपुर, मल्हार (बिलासपुर), पुजारी पाली (रायगढ़) आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं इसी प्रकार मध्यकालीन नृसिंह प्रतिमाएं म० प्र० में बहोड़ पठारी, विदिशा, विराटनगर, जबलपुर, सतना, रायसेन, दोनी दमोह, धमदा (दुर्ग) हिंगला जगढ़ (मंदसौर) तथा खजुराहो आदि से प्राप्त हुई हैं। कोटा संग्रहालय राजस्थान में सुरक्षित शेषशायी विष्णु की मूर्तिफलक के परिकर में तथा बिहार प्रदेश से प्राप्त एक दशावतार पट्ट पर हिरण्यकश्यप का वध करते हुए चतुर्भुज नृसिंह की मूर्ति उकेरी गयी है।[53]

अष्टभुजी नृसिंह मूर्तियों का मूर्तन दक्षिण भारतीय शिल्प में भी विशेष लोकप्रिय था। हलेविड बसान जनपद के नरसिंह मंदिर से एक चतुर्भुजनृसिंह प्रतिमा प्राप्त हुई है इसमें सिंह मुख से विभूषित भगवान विष्णु उत्कूटिकासन मुद्रा में आसीन दिखलाई पड़ते हैं। उनके दोनों पैर योगपट्ट से आच्छादित हैं तथा

---

53. मुकर्जी आर० के० दकास्मिक आर्ट आफ इण्डिया पृष्ठ 27

पीछे के दायें बायें हांथ में क्रमशः शंख, चक्र आयुध तथा सामने के दोनों हांथ क्रमशः दायें बायें जानु का आश्रय लेकर प्रदर्शित किए गए हैं इस प्रतिमा के वाद पीठ पर अंजलिबद्ध गरुण को अंकित किया गया है।[54] इसी प्रकार बादामी (बीजापुर जनपद कर्नाटक) की गुफा संख्या 3 में चतुर्भुज नृसिंह की एक प्रतिमा उकेरी गयी है। देवता नीचे के बायें हांथ में गदा को लेकर द्विभंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। उनके ऊपर के दोनों हांथों में क्रमशः शंख एवं चक्र तथा नीचे के दक्षिणी हांथ में एक छोटा सा कमल का फूल है। मूर्ति के बायीं ओर गदा देवी का तथा दांयीं ओर पद्म पुरुष का तथा फलक के ऊपरी भाग पर अपनी-अपनी षट देवियों के साथ ब्रह्मा एवं विष्णु को अंकित किया गया है। इस मूर्ति की तिथि 578 मानी जाती है।[55] इसी प्रकार राजकीय संग्रहालय चेन्नई में सुरक्षित नृसिंह विष्णु की एक कांस प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। देवता के ऊपर के दोनों हांथ क्रमशः चक्र एवं शंख तथा नीचे का दायां हाथ अभय मुद्रा में तथा बायां योग पट्ट द्वारा बंधे बायें पैर का आश्रय लेकर नीचे की ओर लटका प्रदर्शित किया गया है। नृसिंह का दाहिना पैर नीचे की ओर लटका हुआ किन्तु बायां पैर आसन पर टिका हुआ है[56] खजुराहो से नृसिंह विष्णु की प्रतिमा जिसकी तिथि 11वीं सदी ई० में मानी जाती है। इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार की एक नृसिंह प्रतिमा जो डाहल शैली में है रीवा जनपद म० प्र० के गढ़ नामक स्थान से प्राप्त हुई है यह प्रतिमा कुष्टेर महादेव मंदिर में अंकित की गई थी। 10वीं सदी ई० की नचना कुठार (पन्ना) से प्राप्त एक प्रतिमा तथा

54. दृष्टब्य राव गोपीनाथ इलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी वाल्यूम 1 भाग 1 पृष्ठ 155-56 फलक संख्या XLII

55. दृष्टव्य राव गोपीनाथ एलीमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी वाल्यूम 1 भाग 1 पृष्ठ 155-57 प्लेट XLIII

56. दृष्टब्य जर्नल ऑव द एशियाटिक सोशायटी, लेटर्स एण्ड साइंस, वाल्यूम 21, नं० 2, 1955, फलक 20, मूर्ति संख्या 40

सोहागपुर (शहडोल) से प्राप्त नृसिंह की द्विभुजी प्रतिमा भी उल्लेखनीय है।

अष्टभुजी नृसिंह मूर्ति

देवता मूर्ति प्रकरण में अष्टभुजाओं से युक्त नृसिंह प्रतिमा के निरआण का विधान दिया गया है इसमें कहा गया है कि अष्टभुज नृसिंह के मुख को सिंह की तरह सघन सटा केशों से युक्त नीलवर्ण तथा शरीर को तपे हुए सोने के समान अथवा बालसूर्य के समान आभायुक्त बनाना चाहिए। उनकी जंघाओं पर खड्गखेटकधारी दैत्यराज हिरण्यकश्यप को लेटा हुआ तथा उनके उदर को नृसिंह के सामने की भुजाओं के नखों से विदीर्ण करते हुए अंकित करना चाहिए इस मूर्ति में ऊर्ध की ओर उठे दो भुजाओं में दैत्यराज की आंतो को पकड़े हुए तथा मध्य स्थित 4 भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, एवं पद्म धारण कराया जाना चाहिए[57] इस प्रकार का विवरण मानसोल्लास[58] तथा शिल्परत्न[59] में भी प्राप्त होता है।

उपर्युक्त शिल्पग्रन्थों से साम्य रखती हुई नृसिंह की एक प्रतिमा राजकीय संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है इसकी निर्माण 9-10वीं शताब्दी मानी जाती है। इसमें अष्टभुजाओं से युक्त नृसिंह को प्रत्यालीढ़ मुद्रा में खड़ा अंकित किया गया है उनका दायां पैर एक खड्गखेटकधारी असुर की पीठ पर तथा दायां पैर दृढ़ता पूर्वक भूमि पर स्थित है देवता के ऊपर के दो हांथ अब खण्डित मिलते हैं जंघे पर पड़ा हुआ हिरण्यकश्यप के हांथ में छोटी सी कटार है इस मूर्तिफलक पर देव एवं असुर दोनों को सामान्य आभूषणों से युक्त दर्शाया गया है। इसमें नृसिंह के दायीं ओर पद्महस्ता लक्ष्मी तथा असुरों की ओर सर्पधारी गरुण एवं अंजलिबद्ध मुद्रा में प्रहलाद की मुद्रा अंकित की गयी हैं। मूर्तिफलक के ऊपरी

---

57. दृष्टव्य देवतामूर्ति प्रकरण 5.77-82

58. मानसोल्लास– 2.3.1-703, 09

59. शिल्परत्न 2.25.117-121

भाग पर बायीं ओर की रथिका पर शिव तथा दक्षिणी ओर की रथिका में ब्रह्मा को दर्शाया गया है।

हिरण्यकश्यप के उदर को विदीर्णकर उसकी हत्या करते हुए नृसिंह की अन्य अष्टभुजी प्रतिमाएं खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), शीरपुर, गढ़वा, नागदा, अघूर्णा, चित्तौड़गढ़, दाडिकोम्ब आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं इसी प्रकार राजकीय संग्रहालय चेन्नई में सुरक्षित तथा दाडिकोम्ब संग्रहालय में सुरक्षित नृसिंह प्रतिमाएं आठ भुजाओं से युक्त मिलती हैं।

लक्ष्मी नृसिंह मूर्ति

नृसिंह बिष्णु को कतिपय प्रतिमाओं में लक्ष्मी के साथ अंकित किया गया है इन प्रतिमाओं पर तंत्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। ये मध्ययुगीन चतुर्भुजी नरसिंह प्रतिमाएं शक्ति के साथ उकेरी गई हैं। इस रूप में देवता के तीन हांथों में क्रमशः शंख, चक्र तथा अभय मुद्रा प्रदर्शित है तथा नीचे का चौथा दाहिना हांथ लक्ष्मी के साथ आलिंगन मुद्रा दर्शाया गया है। भुवनेश्वर (उड़ीसा) के लिंगराज मंदिर के प्रांगण की दीवालों से प्राप्त लक्ष्मी नरसिंह की तीन मूर्तियाँ उल्लेखनीय है जिसमें देवता के ऊपरी हांथों में चक्र एवं शंख है तथा घुटनों पर योगपट्ट नीरुपित किया गया है। लक्ष्मी देवता की बायीं गोद में विराजमान है तथा मूर्तिफलक के परिकर में ब्रह्मा एवं शिव को प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार नरसिंह रूप में आंकी गई एक प्रतिमा हम्पी के मन्दिर से भी प्राप्त हुई है।

अध्याय 6

वामन अवतार

विष्णु का वामनावतार प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला अंकनों में विशद् रूप से अनुरेखित किया गया है। विष्णु के वामन रूप की परिकल्पना वैदिक ग्रन्थों के विवरण के आधार पर की गयी है ऋग्वेद में यद्यपि विष्णु प्रमुख देवता नहीं हैं परन्तु उनकी प्रमुख विशेषता उनके तीन पदक्रमों का रखा जाना बताया गया है। इसमें कहा गया है कि वे तीन प्रकार से विचक्रमण करते हुए सम्पूर्ण जगत को व्याप्त कर लेते हैं। विष्णु के इस विलक्षण कृत्य का उल्लेख वेदों में अनेकत्र मिलता है।[1]

ऋग्वेद में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि विष्णु के इन्ही विस्तीर्ण तीन चरणों के अन्तर्गत तीनों लोक विद्यमान हैं तथा विश्राम करते हैं।[2] उनके विशिष्ट कार्यों में तीन डगों में सम्पूर्ण पृथ्वी को नापना तथा अंतरिक्ष को ब्याप्त कर लेना बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है इसी उपलब्धि के कारण उनको उरुक्रम तथा उरुवाय जैसे विशेषणों से सम्वोधित किया गया है।[3] तीनों लोकों की व्याप्ति के कारण ही विष्णु को पृथ्वी में अग्नि, अंतरिक्ष में वायु एवं इन्द्र तथा आकाश में सूर्य को विष्णु का ही रूप स्वीकार किया गया है। उनके इन्हीं

1. दृष्टव्य ऋग्वेद 1.22.17, वाज० सं० 5.15 तथा 34-43, सा० वे० 2.10.20, अथर्ववेद 7.26.5

   ''इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम।

   समूल्हमस्य पांसुरे।''

   ऋग्वेद 1.154.3 ''यः पार्थिवानि विममे रजांसि विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।

   वही 1.154.3 यत इमं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः।

2. ऋग्वेद 1.154.2– ''यस्योरुषु तिषु विक्रमणेपु अधिक्षियन्ति भुवान विश्वा।''

   बाज० सं० 23.49– ''येषु विष्णुस्त्रिषु पदेपु, इष्टः तेषु विश्वं भुवनमाविवेश।

3. ऋग्वेद 1.22.17 इदं विष्णुविचक्रमे त्रेदा निदधे पदम् समूढ़स्य पांसुरे

तीनों पगों एवं रूपों के आधार पर कालान्तर में उनका पौराणिक वामन रूप विकसित माना जा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण[4] में वामन को विष्णु कहा गया है। इसमें देवताओं के कार्य के लिए विष्णु के द्वारा पृथ्वी अंतरिक्ष एवं आकाश को तीन पदक्रमों के द्वारा व्याप्त करने का स्पष्ट उल्लेख किया गया है– ''यज्ञों वै विष्णुः। स देवेभ्य इमां विक्रान्ति विचक्रमे। यैषामियं विक्रान्तिः। इदमेव प्रथमेन पदेन पस्पार। अथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन। दिवमुत्तमेन। एताषु एवैप एतस्मै विष्णुर्युज्ञो विक्रान्ति क्रमते।'' शतपथ ब्राह्मण के ही समान तैत्तिरीय संहिता[5] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[6] में विष्णु के तीन पद क्रमों से त्रैलोक्य मापन का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ के समय राजा एवं यजमान को विष्णु की ही भांति तीन पद चलाया जाता था जिसके पीछे सम्भवतः यही उद्देश्य होता था कि वामन विष्णु के साथ यज्ञकर्ता यजमान भी तेजस्वी हो और विजयी हो।[7]

शतपथ ब्राह्मण[8] में पुराणोक्त वामनावतार की कथा का पूर्वरूप आख्यात है इसमें देवता एवं असुर दोनों को प्रजापति की संतान कहा गया है। एक बार देवता निर्बल पड़ गए जिसका लाभ उठाकर असुरों ने पृथ्वी को अपनी मानकर बंटवारा करने लगे। असुरों ने बृषभ चर्म से निर्मित प्रमाणसूत्र से पृथ्वी को नापकर आपस में उसका विभाजन करने लगे देवों ने असुरों के इस कृत्य को देखकर विष्णु के समक्ष जाकर पृथ्वी को अपने हिस्से के भाग के लिए कहा। विष्णु वामन रूप थे असुरों ने देवताओं को केवल उतना ही भूभाग देना स्वीकार

---

4. शतपथ ब्राह्मण 1.2.5.5 वामनो हि विष्णुरास।

5. तैत्तिरीय संहिता 5.2.1

6. तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.7.4.4–''विष्णुक्रमान क्रमते विष्णुर्भूत्वा इमाँल्लोकान भिजयति।''

7. दृष्टब्य शतपथ ब्राह्मण– 5.4.2.6

8. वही– 1.2.5.1-7

किया जितना विष्णु लेटकर अपने शरीर से पृथ्वी को ढक सकते थे। देवताओं को इस बात का ज्ञान था कि विष्णु वामन रूप में साक्षात यज्ञ हैं यदि असुरगण विष्णु के शरीर के बराबर हमें भूमि प्रदान कर दिया तो हमें सबकुछ मिल जायेगा। अतः उन्होंने छन्दों से विष्णु को घेर दिया तथा अग्नि को पूर्व में प्रतिष्ठित करके यज्ञस्य रूप विष्णु की प्रार्थना प्रारम्भ की इसके फलस्वरुप उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त हो गयी।[9] शतपथ ब्राह्मण में विष्णु के वामन एवं त्रिविक्रम दोनों रूपों का वर्णन किया गया है विष्णु का त्रिविक्रम रूप ऋग्वेदोक्त तीन पगों से जुड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है अतः ऋग्वैदिक है। किन्तु उनका वामन रूप यज्ञ विष्णु से जुड़ा होने के नाते पूर्णतया ब्राह्मणकालीन है। यही कारण है कि ब्राह्मणकालीन वैदिक ग्रन्थों में विष्णु के दोनों रूपों को प्रथक-प्रथक वर्णित किया गया है। तैत्तिरीय संहिता[10] में भी शतपथ ब्राह्मण की तरह विष्णु के वामन रूप धारण का विशद् उल्लेख किया गया है (स यतं विष्णुर्वामिनम पश्य - - - - - - - - स इमान् लोकान् अभ्यजयत)। इसके ठीक विपरीत ऐतरेय ब्राह्मण[11] में विष्णु के तीन विक्रमणों से क्रमशः त्रिलोकी, वेद तथा वाक् आच्छादित करने का उल्लेख किया गया है। इसमें विष्णु के वामन रूप का उल्लेख नही किया गया है।

पुराणों में ऋग्वेदोक्त उरुगाय तथा विष्णु के त्रिविक्रमण रूप को त्रिविक्रम के रूप में तथा शतपथ एवं अन्य ब्राह्मणों में वर्णित वामन यज्ञविष्णु रूप को मिलाकर विष्णु के वामनावतार का विस्तार पूर्वक कथानक प्रस्तुत किया गया है। वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों में बहुत थोड़ा सा अन्तर मिलता है

---

9. शतपथ ब्राह्मण 1.2.5.1-7– ''ते प्राञ्चं विष्णुंनिपाद्य छन्दोभिरभितः पर्यगृह्नन। तं छन्दोभिरभितः परिगृह्य अग्निं पुरस्तात् समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुः। तेनेमां सर्वां प्रथिवीं समविन्दन्त।''

10. तैत्तिरीय संहिता– 2.1.3

शतपथ ब्राह्मण में असुरों से देवतागण विष्णु को आगे करके भूमि प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं जबकि पुराणों में यही कार्य वामन विष्णु असुर नरेश राजाबलि से प्राप्त करते हैं। यज्ञ का प्रसंग वैदिक एवं पौराणिक दोनों आख्यानों में थोड़े अन्तर के साथ प्राप्त होता है।

रामायण में बाल्मीकि ने वामन विष्णु के द्वारा पृथ्वी को अपहृत करने की कथा का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है[12] रामायण में अन्यत्र विष्णु द्वारा अदिति के गर्भ से जन्म लेने तथा दैत्येन्द्र बलि से तीन पगभूमि की याचना कर उनसे तीनो लोकों को आक्रान्त कर देवताओं के राजा इन्द्र को उसका राज्य

---

11. ऐतरेय ब्राह्मण 6.3.7

12. बाल्मीकि कृत रामायण बालकाण्ड 29-4-9

सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः।
एतस्मिन्नेव काले तु राजा वैरोच निर्बलिः।।
निर्जित्य दैवतगणान सेन्द्रान सहमरुङ्गणान्।
कारयामास तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।
यज्ञं चकार सुमहान सुरेन्द्रो महाबलः।
बलेस्तु यजमानस्य देवाः साग्निपुरोगमाः।
समागम्य स्वयं चैव विष्णुमूचुरिहाश्र मे।।
बलिर्वैरोचनिर्विष्णो यजते यज्ञमुत्तमम।
असमाप्तवृते तस्मिन स्वकार्यम भिपद्यताम्।।
ये चैनंम्भिवर्तन्ते याचितार इस्ततः।
यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति।।
स त्वं सुरहितार्थाय मायायोगमुपाश्रितः।
वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कल्याण मुत्तमम्।।

वापस दिलवा दिया था।[13]

उपर्युक्त उद्धरण रामायण के बालकाण्ड के उस अंश से जुड़े हुए हैं जिन्हें कुछ विद्वान प्रक्षिप्तांश मानते हैं परन्तु रामायण में दैत्येन्द्र बलि के यज्ञ से वामन रूप विष्णु के द्वारा पृथ्वी की याचना का प्रसंग अरण्यकाण्ड[14] तथा युद्ध काण्ड[15] में संक्षिप्त ही सही आख्यात मिलता है।

महाभारत में बलि-वामन कथानक को सन्दर्भित करते हुए विष्णु के वामनावतार का वर्णन वनपर्व तथा शान्तिपर्व में किया गया है। वन पर्व में शिव जयद्रथ को कृष्ण के विभिन्न अवतारों का उल्लेख करते हुए उनके वामनावतार का वर्णन करते हैं शिव ने कहा कि इन्द्र की माता अदिति ने वामन को पुत्र रूप में उत्पन्न करने के पूर्व एक हजार वर्ष तक अपने पेट में सुरक्षित कर रखा था।[16]

इसमें यह भी कहा गया है कि वामन विष्णु का स्वरूप वर्षाकालीन

---

13. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 29.19-22

''अथ विष्णुर्महातेजा आदित्या समजायत्।
वामनं रुपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत्
त्रीनपदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम
आक्रम्य लोकाँल्लोकार्थी सर्वलोकहिते रतः
महेन्द्राय पुनः प्रदान्नियम्य बलिमोजसा।
त्रैलोक्यं स महातेजश्चक्रे शक्रवशं पुनः।।''

14. रामायण अरण्यकाण्ड– 61-24

15. वही युद्धकाण्ड– 56.38

16. महाभारत वनपर्व– 272.62

कश्यपस्यात्मजः श्रीमानदित्या गर्भधारितः।
पूर्णे वर्षसहस्त्रे तु प्रसूता गर्भमुत्तमम्।।

मेघ के समान श्यामवर्ण का था उनके दोनों नेत्र परम देदीव्यमान थे वे वामन रूप में वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न से विभूषित दोनों हांथों में दण्ड एवं कमण्डल धारण किए हुए थे उनके सिर पर जटा थी गले में यज्ञोपवीत था बाल रूपधारी ऐसे विष्णु दानवेन्द्र बलि की यज्ञशाला के समीप गये थे।[17] वृहस्पति की सहायता से वामन विष्णु का बलि की यज्ञ मंडप में प्रवेश हुआ बलि वामन को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ उसने कहा हे ब्रह्मन–मैं आपको सेवा के लिए क्या प्रदान करूँ। वामन विष्णु ने उसे आर्शीवाद देते हुए कहा मुझे तीन पग भूमि दे दीजिए। बलि ने तीन पगभूमि देना स्वीकार कर लिया तब भूमि का मापन करते हुए विष्णु का अत्यन्त अद्‌भुत रूप प्रकट हुआ तथा उन्होंने तीनपग द्वारा समस्त भूमि को माप लिया।[18]

---

17. वही 272.63-64 दुर्दिनाम्भोदसदृश्यो दीप्ताक्षो वामनाकृतिः।

दण्डी कमण्डलुधरः श्रीवत्सोरसि भूषितः।।

जटी यज्ञोपवीती च भगवान वालकरुपधृक।

यज्ञवाटं गतः श्रीमान दानवेन्द्रस्य वै तदा।।

18. महाभारत वमपर्व 272.67-70

''स्वस्तीत्युक्ता बलिं देवः स्मयमानोऽभ्यभाषत।

मेदिनी दानवपते देहि मे विक्रमत्रयम्।।

बलिर्ददौ प्रसन्नात्मा विप्रायमिततेजसे।

ततो दिब्याभ्युदततमं रूपं विक्रमतो हरेः।।

विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्यो जहाराशु स मेदिनीम।

दरौ शक्राय च महीं विष्णुर्देवः सनातनः।।

एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावः प्रकीर्तितः।

तेनदेवाः प्रादुरासन् वैष्णवं चोच्यते जगत्।।''

महाभारत शान्तिपर्व में भगवान विष्णु स्वयं नारद से अपने भावी वामनावतार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि दैत्येन्द्र बलि के द्वारा इन्द्र से तीनों लोक का राज छीन लेने के बाद मैं वामन रूप में अवतार लेकर बलि से त्रैलोक्य के राज्य को छीनकर इन्द्र को पुनः सौंप दूंगा। इसमें बलि को पाताल भेजने का भी उल्लेख किया गया है।[19]। इस पर्व में एक अन्य स्थान पर अन्यत्र कहा गया है कि विष्णु ने वामनरूप धारण करके तीनों लोकों को नाप लिया था।[20]।

विष्णु के वामन अवतार का संक्षिप्त उल्लेख महाकवि कालिदास ने रघुवंशम महाकाव्य के सप्तम सर्ग में किया है[21] इन्दुमती के स्वयंबर के बाद

---

19. महाभारत शान्तिपर्व 339.79-83

विरोचनस्य बलवान बलिः पुत्रो महासुरः।
अवध्यः सर्वलोकानां सदेवासुरक्षसाम।।
भविष्यति स च स्वराज्याद् च्यावयिष्यति।
त्रैलोक्येऽपहृते तेन विमुखे च शतक्रतौ।।
आदित्यां द्वादशादित्यः संभविष्यामि कश्यपात्।
ततो राज्यं प्रदास्यामि शक्रायामिततेजसे।
देवताः स्थापयिष्यामि स्वेषु स्थानेषु नारद।
बलिं चैव करिष्यामि पातालतलवासिनम्।।

20. वही 227-7.8– ''वृत्ते देवासुरे युद्धे दैत्य दानव संक्षये।
विष्णुक्रान्तेपु लोकेषु देवराजे शतक्रतौ।।
इज्यमानेषु देवेपु चतुर्वर्ण्ये व्यवस्थिते।
समृद्धमात्रे त्रैलोक्ये प्रीतियुक्ते स्वयम्भुवि।।''

21. कालिदास रघुवंशम सप्तम सर्ग श्लोक 7.35

तमुद्वहन्तं पथि भोजकयां रुरोध राजन्यगणः स दृप्तः।
बलि प्रदिष्टां श्रियमाददानं त्रैविक्रमं पादमिवेन्द्रशत्रुः।।

इन्दुमती को लेकर अपने घर के लिए प्रस्थान कर रहे थे तो अभिमानी राजाओं ने उन्हें उसी प्रकार रोंक लिया जैसे इन्द्र के शत्रु वृत्तासुर ने वामन के चरण को उस समय रोंक लिया था जब वे बलि की राजलक्ष्मी लेकर चले थे।

पुराणों में विष्णु के वामनावतार की कथा विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की गयी है विष्णु पुराण, मत्स्यपुराण, वामन पुराण, ब्रह्म पुराण, भागवद पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, पद्म पुराण तथा स्कन्दपुराण आदि में वामनावतार विष्णु की कथा विशद् रूप से प्राप्त होती है। विष्णु पुराण में दो श्लोकों में विष्णु के वामन अवतार का वर्णन किया गया है इसमें कहा गया है कि वैवश्वत मनु के काल में भगवान विष्णु कश्यप के रूप में अदिति के गर्भ से वामन के रूप में प्रकट हुए। वामन ने अपने तीन डगों से सम्पूर्ण लोकों को जीतकर निष्कंटक तीनों लोकों के राज्य को इन्द्र को प्रदान किया।[22] मत्स्य पुराण में कहा गया है कि भगवान विष्णु ने माया से वामन रूप धारण किया था।[23] बलि के यज्ञ स्थल में उपस्थित देवादिदेव वामन रूपी साक्षात विष्णु ने विनीत बली, मुनिवरों तथा यज्ञकर्माधिकारी सदस्यों तथा यज्ञ कर्म में प्रयुक्त द्रव्यादि सामग्री की प्रशंसा की। यज्ञशाला में उपस्थित वामन की सभी सदस्यगणों ने साधु-साधु ध्वनि से अपनी प्रशन्नता व्यक्त की तथा प्रसन्न महासुर बलि ने वामन विष्णु की पूजा की। उसने विष्णु से कहा कि आप वामन रूप धारण करके आए हैं जो मांगना चाहें

---

22. विष्णु पुराण 3.1.42-43

मन्वन्तरेत्र सम्प्राप्ते तथा वैवश्वते द्विज।
वामनः कश्यपद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह।।
त्रिभिः कृमैरिमाँल्लोकज्जित्वा येन महात्मना।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकष्टकम्।।''

23. मत्स्य पुराण– 246.37– इत्येवं वदतस्तस्य सम्प्राप्तः स जगत्पतिः।
सर्वदेवममोऽचिन्त्यों मायावामनरूप धृक।।

आपमांगिए मैं वह प्रदान करूँगा।[24] वामन को तीन पग भूमि प्रदान करने के लिए ज्यों ही संकल्प जल उनके हांथों में डाला गया उनका विराट रूप प्रकट हो गया चन्द्र-सूर्य उनके नेत्र, आकाश मस्तक, पृथ्वीदोनों चरण, पिशाचगण पैरों की अंगुलियों के रूप में उनके शरीर पर अंकित दिखलाई पड़ने लगे।[25] इस पुराण में वामन के विराट रूप का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। ध्यातब्य है कि वामन त्रिविक्रम प्रतिमाओं पर कहीं-कहीं मत्स्य पुराणोक्त वर्णन का रूपायन देखने को मिलता है। व्रह्म पुराण में आख्यात है कि वामन विष्णु विराट रूप धारण करके अपने दो पगों से सम्पूर्ण व्रह्माण्ड को आच्छादित कर लिए तथा तीसरे पग के लिए बलि से स्थान बताने के लिए कहा[26] वामन की बात

---

24. वही 246.43-46– ''ततः प्रशन्नमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्।
    यज्ञ वाटस्थितं वीरः साधु साध्वित्युदीरयन्।।
    स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा।
    पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः।।
    सुवर्णरत्नसंघातं गजाश्वममितं तथा।
    स्त्रियोवस्त्राण्यलङ्कारांस्त था ग्रामाश्च पुष्कलान।
    सर्वस्वं सकलामुर्वी भवतो वा यदीप्सितं।
    तद ददामि वृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः।।''
25. मत्स्यपुराण 246-53-54– चन्द्रसूर्यो च नयने धौर्मूर्धा चरणौ क्षितिः।
    पादाङ्गल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गल्यश्च गुह्यकाः।।
    विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
    यज्ञा न खेषु सम्भूता रेखाश्चाप्सरसस्तथा।।''
26. ब्रह्मपुराण– 73वां अध्याय श्लोक सं० 49 तृतीयस्य पदस्यात्र स्थानं नास्त्यसुरेश्वर।
    क्व क्रमिष्ये भुवं देहि बलिं तं हरिरब्रवीत्

को सुनकर दैत्यराज बलि विनोद के साथ बोला–भगवन अब आपके तीसरे पग के लिए स्थान कहाँ से पैदा करूँ यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही आपका बनाया हुआ है यदि इसमें आपके तीसरे पैर के लिए जगह नहीं है तो इसके लिए मैं दोषी नहीं हूँ।[27] बलि की इस बात को सुनकर प्रसन्न वामन विष्णु ने उसे वर प्रदान किया।

वामन पुराण में विष्णु के वामन अवतार की कथा विस्तार पूर्वक वर्णित है इस पुराण में वामनाख्यान तीन प्रथक-प्रथक स्थानों पर वर्णित है। दो स्थानों पर वर्णित वामनाख्यान में विष्णु के द्वारा वामन रूप ग्रहण कर छल द्वारा बलि से पृथ्वी के राज्य को अपहृत करने की कथा वर्णित है।[28] इस पुराण में तीसरे स्थल पर वामनाख्यान धुन्धुवध के सम्बन्ध में है[29] भागवत पुराण में विशेषरूप से अष्टम स्कन्ध में समुद्रमंथन के समय हुए देवासुर संग्राम में इन्द्र द्वारा बलि का बध एवं शुक्राचार्य द्वारा संजीवनी विद्या के प्रवेश से दैत्यराज बलि के पुनर्जीवन के बाद उसके द्वारा सम्पन्न किए गए यज्ञ से सम्बन्धित हैं। बलि स्वर्ग को जीतकर स्वयं इन्द्र बन गया तथा देवताओं को पराजित कर उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिए उनकी प्रार्थना पर विष्णु ने अदिति के गर्भ से वामन रूप ग्रहण किया।[30] इस पुराण में बलि के यज्ञ

---

27. वही– 73.50– ''विहस्य बलिरप्याह सभार्यः संस्कृतांजलि।

त्वया सृष्टं जगत्सर्वं न स्त्रष्टाहं सुरेश्वर।

त्वददोषादल्पमभवत् किं करोमि जगन्मय।।''

28. वामन पुराण 52.51-56

29. वही 52.13

आसीत धुन्धुरिति ख्यातः कश्यपस्यौरसः सुतः।

दनुगर्भसमुद्भूतो महाबल पराक्रमः।।

30. श्री मदभागवत् 8.17.12 ''देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांङ्क्षितम।

यत्न सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः।।''

स्थल का उल्लेख करते हुए कहा गया है। कि नर्मदा नदी के तट पर भृगुकच्छ नाम का एक बड़ा सुन्दर स्थान था जहाँ भृगुवंशी ऋत्विजश्रेष्ठ बलि के लिए यज्ञ करा रहे थे। भगवान वामन भृगुकच्छ की यज्ञशाला में पधारे उनका स्वरुप ऐसा लग रहा था जैसे सूर्योदय हो रहा हो।[31] अन्यत्र इसमें कहा गया है कि अदिति एवं कश्यप के समक्ष भगवान आयुधों से युक्त परमपुरुष के रूप में प्रकट हुए थे जिन्हें देखकर वे लोग अत्यन्त आश्चर्य चकित रह गए। परन्तु देखते ही देखते भगवान विष्णु अपनी लीला से वामन वृह्मचारी का रूप धारण कर लिया।[32]

भागवद् पुराण में आख्यात है कि शुक्राचार्य जी के द्वारा निशेध करने के बावजूद दैत्येन्द्र बलि ने वटुरूप धारी वामन को तीन पग भूमि देने का वचन दिया वामन ने अपने दो डगों में क्रमशः पृथ्वी एवं स्वर्ग को नाप लिया तथा तीसरा पग आत्मसमर्पित बलि के मस्तक पर रखकर अपने त्रिविक्रम रूप को चरितार्थ किया। यहाँ यह ध्यातब्य है कि भागवद पुराणोक्त बलि वामन आख्यान अनेक पुराणों में विवृत है।

अग्नि पुराण में यह कथा इसी रूप में विस्तार पूर्वक वर्णित है।[33] पुराणों

---

31. भागवत् पुराण– 8.18.21 ''तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगकच्छसंज्ञके
    प्रवर्तयन्तो भृगवः कृतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम्।।''
32. वही 8.18.11-12– दृष्टादितिस्तं निजगर्भ संभवम्
    परम पुमांसं मुदमाप विस्मिता।
    गृहीतंदेह निजयोग मायया
    प्रजापतिश्चाह जेति विस्मितः।।
    ''येत तद वपुर्भाति विभूषणायुधै ख्व्यक्तचिद व्यक्तम धारयद्धरिः।
    वभूव ते नैव स वामनो वटुः संपश्य तोदिव्यगतिर्यथा नटः।।''
33. दृष्टव्य अग्नि पुराण 4.5.13

में विशेषतः भागवद पुराण में वामन विष्णु के लिए प्रयुक्त विशेष[34] यथा त्रिनाभ, उरुक्रम, उरुगाय, वीर्यगर्भ, ब्रह्मण्यदेव तथा प्रश्नगर्भ आदि वैदिक साहित्य में विष्णु के लिए प्रयुक्त अभिधानों की ओर संकेत देते हैं।

विष्णु के वामनावतार की कथा हरिवंश, वायु पुराण[36] पदम पुराण[37] विष्णु धर्मोत्तर पुराण[38] बृहम पुराण[39], स्कन्द पुराण[40] आदि पुराणों में विस्तारसः आख्यात है पद्म पुराण में दैत्यराज बलि के स्थान पर वाष्कलि नामक दैत्य का उल्लेख किया गया है। इसमें वर्णित कथानुसार वामन विष्णु ने विराट त्रिविक्रम रूप धारण करके सम्पूर्ण पृथ्वी को अधिग्रहीत कर लिया था।[41] (अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे)। इसमें अन्यत्र कहा गया है कि वामन ने त्रिविक्रम रूप में अर्जित वाष्कलि के राज्य को अपहृत करके इन्द्र को प्रदान कर दिया था।[42]

वामन त्रिविक्रम विष्णु की प्रतिमा निर्माण के सम्बन्ध में विष्णु धर्मोत्तर

---

34. दृष्टव्य भागवद् पुराण 8.17.25-26
35. उ० अ० 65.72
36. वायु पुराण– 36-74-86
37. पद्म पुराण अ० उ० 366-67
38. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 21.4.32
39. ब्रह्म पुराण अ०– 73.213
40. स्कन्द पुराण– 1.1.17, 276.19.63, 5.315, 11-13, 7.1.114.1-11 आदि
41. पद्म पुराण उत्तरखण्ड 40.28 एवं 47.43
42. वही 77.18

''त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः।

त्वयेन्द्रश्च कृतो राजा बलिबद्धो महासुराः।।''

पुराण[43] का निर्वचन है कि वामन को दूर्वा की भांति श्यामवर्ण, दुर्बल एवं हाथ में दण्ड धारण किये हुए, कष्णार्जिन् युक्त शिक्षार्थी बटु वेश में मूर्ति शिल्प में अंकित करना चाहिए। इसी प्रकार उक्त पुराण में त्रिविक्रम के आकार को निरूपित करते हुए कहा गया है कि उन्हें मेघ के समान नीलवर्ण तथा चतुर्भुज अथवा षष्ठभुज रूप में निर्मित करना चाहिए तथा उनकी भुजाओं में क्रमशः पद्म, दण्ड, पाश, शंख, चक्र तथा गदा आदि आगे त्रिविक्रम के रूप निर्माण का उल्लेख करते हुए पुराणकार ने लिखा है कि उनका स्वरूप स्वाभाविक मानवरूप न होकर विलक्षण होना चाहिए उनकी आंखे पर्याप्त विस्फारित तथा मुख ऊपर की ओर उठा हुआ होना चाहिए।[44]

शिल्प ग्रन्थों में वामन त्रिविक्रम प्रतिमा विधान

पुराण में वर्णित वामन त्रिविक्रम आख्यान तथा स्वरूप को किंचित

---

43. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.85.53.54

ब्राह्मं रौद्रं च रामीयं पुष्करेण महात्मना।
कर्तब्यो वामनो देवः संकटैगत्रिपर्बभिः।।
पीन गात्रस्च कर्तब्यो दण्डी चाध्यपनोद्यतः।
दूर्वाश्यामश्च कर्तब्यः कृष्णाजिन धरस्तथा।।

44. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 385.55.56.57

सजलाम्बुदसंङ्काशर्स्तथा कार्यस्त्रिविक्रमः।
दण्डपाशधरःकार्यः शङ्खसञ्चुम्बिताधरः।।
शंख चक्रगदापद्मः कार्यस्तस्य स्वरुपिणः।
नृदेहास्ते न कर्तब्या शेषं कायं तु पूर्ववत्।।
एकोर्ध्ववदनः कार्यदेवो विस्फारितेक्षणः।
रुपं नरस्य कथितं तथा नारायणस्यते।।

अंतर के साथ अथवा उसी रूप में शिल्पग्रन्थों में भी वर्णित किया गया है इनमें आख्यान अंश को छोड़कर विष्णु के वामन त्रिविक्रम अवतार के प्रतिमा वैज्ञानिक लक्षणों का विशद् वर्णन मिलता है। सुप्रसिद्ध शिल्पग्रन्थ अपराजितपृच्छा[45] (12वीं सदी ई०) में कहा गया है कि वामन विष्णु की प्रतिमा को लघुकाय दृढ़ात्मक बनाया जाना चाहिए। इसी प्रकार रूप मंडन में निर्देश मिलता है कि विष्णु के वामन रूप को शिखायुक्त, श्यामवर्ण तथा चतुर्भुज रूप में अंकित करना चाहिए जिनके तीन हाथों में क्रमशः दण्ड, छत्र एवं कमण्डल धारण कराना चाहिए[46] शिल्परत्न में भगवान की वामन प्रतिमा को यज्ञोपवीत कृष्णाजिन, कानों में कुण्डल धारण किए हुए शिखायुक्त हांथों में छत्र, कमण्डल धारण किए हुए विशाल उदर वाला कुब्जाकार निर्मित करने का विधान किया गया है।[47] इसी प्रकार वामन त्रिविक्रम प्रतिमा विधान का वर्णन करते हुए शिल्परत्न में कहा गया है कि त्रिविक्रम रूप विष्णु को बायें पैर से पृथ्वी को दबाते हुए तथा दाहिने पैर को आकाश की ओर क्रमश उठाते एवं विस्तीर्ण करते हुए रूपायित करना चाहिए।[48]

शिल्पग्रन्थ वैखानसआगम में वामन त्रिविक्रम प्रतिमा विधान का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि उन्हें शिखायुक्त, कौपीनवस्त्रधारी, कृष्णाजिन, मेखला तथा यज्ञोपवीत पहने हुए, हांथ में छत्र, दण्ड तथा पुस्तक धारण किए

---

45. अपराजितप्रच्छा 26.17

46. रूप मंडन 3-26– वामनः सशिखः श्यामो दण्डी पीताम्बुपात्रवान [छत्राम्बुपात्रवान]
जटाजिनधरे रामो भार्गवः परशुंदधत्।।

47. शिल्परत्न– 25.15– कृष्णाजिन्युपवीती स्याच्छत्रीधृत कमण्डलुः।
कुण्डली शिखया युक्ता कुब्जाधारो महोदरः।।

48. वही– त्रिविक्रमं वक्ष्ये वामपादेन मेदिनीम्।
आक्रामन्तं द्वितीयेन साकल्पेन नभस्थलम्।।

हुए बालक एवं ब्रह्मचारी रूप में निर्मित किया जाना चाहिए।[49]

''अथवामनं पंचतालमितिं द्विभुजं छत्रदण्डधरं।

कौपीनवाससं शिखापुस्तकमेखलोपवीत कृष्णाजिन।

समायुक्तं पवित्रपाणिं बालरूपं ब्रह्मवर्चस्विमं कारयेत।।''

वामन-त्रिविक्रम का मूर्तिकला में अंकन

वामन-त्रिविक्रम का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद में त्रिविक्रम का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। वेदों के अतिरिक्त पुराणों में भी वामन (विष्णु) का वर्णन मिलता है विष्णु पुराण में कहा गया है कि वामन (विष्णु) में ही विश्व की समस्त शक्ति समाहित है।[50] मूर्तिकला में वामन प्रतिमाओं का अंकन बहुतायत प्राप्त होता है। शिलापट्टों पर वामन-त्रिविक्रम द्वारा किए गए चमत्कार पूर्ण कार्यों को बहुत बारीकी से उकेरा गया है। कहीं-कहीं विष्णु के दस अवतारों में से बराह, नरसिंह एवं वामन-त्रिविक्रम को एक साथ मूर्तित किया गया है। वामन एवं त्रिविक्रम इन दोनों रूपों को विष्णु ही मानकर साथ-साथ इनकी मूर्तियों का निर्माण किया गया है। त्रिविक्रम की आकृति को बहुत उग्र रूप में तथा उनकी अनेक भुजाओं को चारों तरफ फैलाये हुए वीभत्स रूप में दर्शाया गया है, एवं कहीं-कहीं उन्हें उपास्य विष्णु रूप में अंकित किया गया है। वामन एवं त्रिविक्रम दोनों प्रकार की मूर्तियों का तादात्म्य वेदों एवं पुराणों से स्थापित किया गया है। अग्निपुराण में कहा गया है कि वामन (विष्णु) ने बालब्रह्मचारी का रूप धारण करके अपने हांथों में छत्र, दण्ड एवं

---

49. दृष्टव्य राव टी० ए० जी० एलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी जिल्द-2 अपेण्डिक्स सी पृष्ठ 36

50. विष्णु पुराण 3.1.45– यस्मादिष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।

तस्माता प्रोच्यते विष्णुविशेर्धातोः प्रदेशनात्।।

कमण्डलु लेकर दैत्येन्द्र बलि की यज्ञशाला में पहुँछ गए।[51] 11वीं सदी में उत्तर भारत में निर्मित अनेक मंदिरों में वामन रूपी मूर्तियों को अलंकृत ढंग से बनाया गया है। वामन की स्वतंत्र रूप में अनेक मूर्तियाँ पाई गयी हैं लेकिन कहीं-कहीं भूमि दान का संकल्प लेते हुए असुरों के गुरु शुक्राचार्य, दैत्येन्द्र बलि एवं उनकी पत्नी विन्ध्यावली को सामूहिक रूप से मूर्तित किया गया है।

त्रिविक्रम (विष्णु) के विराट रूप को भी अलंकृत रूप से प्रदर्शित किया गया है। जिसमें त्रिविक्रम उग्ररूप धारण किये हुए अपने एक पैर को ऊपर उठाये हैं जिसके भीतर त्रैलोक्य को दर्शाया गया है। एक स्थान पर त्रिविक्रम के साथ उनका वाहन गरुण, ब्रह्मा, सूर्य, कुछ संगीतज्ञ, दैत्येन्द्र बलि एवं उनके गुरु शुक्राचार्य के साथ-साथ त्रिविक्रम के ऊपर बलि के अंगरक्षकों द्वारा आक्रमण करने की मुद्रा में मूर्तित किया गया है। त्रिविक्रम के इस तरह के दृश्यांकनों का वर्णन अनेक पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है।[52]

वामन-त्रिविक्रम प्रतिमाओं को बनाने का विधान दो प्रकार से प्राप्त होता है (1) बाल ब्रह्मचारी वामन रूप (2) विराट त्रिविक्रम रूप। वामन रूपी मूर्ति का सबसे प्राचीन साक्ष्य मध्य प्रदेश के पवाया नामक स्थान की खुदाई के समय पुरातत्वविद एम० एस० गार्डे (1924-25)[53] को मिला है जो प्राचीन हिन्दू मंदिर के प्रवेश द्वार की छत पर उकेरा गया है रचना शैली की दृष्टि से यह मूर्ति गुप्तकाल की प्रतीत होती है। इस मूर्ति को देखने से प्रतीत होता है कि वामन (विष्णु) अपने बांयें हांथ में एक भिक्षापात्र लिए हैं तथा दाहिने हांथ

---

51. अग्निपुराण 59.5– (छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः)
52. श्रीमदभागवद पुराण– 8.18.27-30, मत्स्यपुराण 260.36.8, वामन पुराण सरो० माहा० 9.33-42 एवं विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.85.54.7।.
53. दृष्टव्य– आर्क्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया आर्क्योलाजिकल रिपोर्ट 1924-25 पृष्ठ संख्या165-66

में दैत्येन्द्र बलि कलश से जल छोंड रहे हैं ये प्रतिमाऐं एक शिलापट्ट पर सामूहिक रूप से मूर्तित की गयी हैं। इस समूह में मूर्ति के एक ओर दैत्येन्द्र बलि तथा दूसरी ओर असुरों के गुरु शुक्राचार्य को मूर्तित किया गया है। के० एल० मन्कोन्डी[54] कहते हैं कि शिलापट्ट पर निर्मित ये प्रतिमाएं सूक्ष्मता से देखने पर नग्न प्रतीत होती हैं या उन्हें बहुत झीना ब्याघ्रचर्म पहने हुए प्रदर्शित किया गया है। यह प्रतिमा राजकीय संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है।

इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित एक वामन प्रतिमा जिसे गुप्त कालीन (लगभग 5वीं सदी ई०) का माना जाता है[55] इस मूर्ति फलक में वामन (विष्णु) को ब्रह्मचारी वेश में कृष्णाजिन यज्ञोपतीत तथा एक हाथ में भिक्षा का पात्र लिए हुए दो भुजाओं वाला बनाया गया है जो विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उल्लिखित वामन रूप प्रतीत होता है। अधिकांशतया गुप्तकालीन समस्त वामनरूपी मूर्तियाँ द्विभुजी ही बनाई गई हैं।

विदिशा संग्रहालय मध्य प्रदेश में सुरक्षित एक वामन प्रतिमा जिसे चतुर्भुजी बनाया गया है मूर्ति के बायें हांथ में चक्र तथा दाहिने हांथ में गदा जो पिछले हांथ में अंकित हैं एवं सामने के दोनों हाथों में से बायें हांथ में कोई वस्तु लिए हुए तथा दाहिने हांथ को वरदमुद्रा में मूर्तित किया गया है। उनके घुंघराले बाल कुण्डलीनुमा प्रदर्शित किये गए हैं वामन के सिर के पृष्ठभाग में अलंकृत प्रभामण्डल है। वामन के गले में रत्नों की माला, कानों में कर्ण आभूपण हांथों में बाजूबन्द, कमर में करधनी पैरों में नुपुर एवं गले में एक विशाल बैजयन्ती माला धारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है जो 9वीं सदी की प्रतिमा प्रतीत होती है। इसकी शिलापट्ट पर अनेक विद्याधरों को जो गले

---

54. दृष्टब्य–पुराणम् पत्रिका काशीराज ट्रस्ट, रामनगर फोर्ट वाराणसी जिल्द 12 संख्या 1 फर०1970 पृष्ठ 51 में प्रकाशित के० एल० मैकोण्डी का लेख।

55. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 85.54.55

में माला पहने हुए हैं तथा पैरों के पास शंख पुरुप को मूर्तित किया गया है। इसी पट्ट पर विष्णु के अन्य अवतारों को भी लघु आकार में बनाया गया है यह एक उपास्य वामन प्रतिमा है। 10वीं सदी की एक प्रतिमा जो मनवा सीतापुर (उ० प्र०) से प्राप्त हुई है तथा यह राजकीय संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है। यह प्रतिमा द्विभुजी है जिसमें वामन विष्णु को श्रीवत्स, बाघाम्बर तथा यज्ञोपवीत धारण किए हुए दिखाया गया है। यह प्रतिमा कट्टावलम्बित मुद्रा में प्रदर्शित की गयी है इस पट्ट पर छः अन्य प्रतिमाऐं भी बनाई गई हैं यह एक उपास्य प्रतिमा है

ध्यातब्य है कि देवता की चतुर्भुजी जिसमें शंख चक्र गदा एवं पद्म धारण कराने का शास्त्रीय विधान रूपमण्डन[56] एवं अपराजित प्रच्छा[57] में प्राप्त होता है। 10वी सदी की वामन प्रतिमा जो भारत कलाभवन वाराणसी में सुरक्षित है जो चतुर्भुजी है तथा कमल पर पद्मासन मुद्रा में निर्मित इस प्रतिमा के पीछे के दोनों हांथों में से एक में गदा एवं दूसरे में चक्र आयुध तथा सामने के दोनों हाथ जिसमें बायें हांथ में शंख एवं दाहिना हाथ बरद मुद्रा में अंकित है। इस वामन मूर्ति के मस्तक पर किरीट, माथे पर तिलक, गले में मणि एवं वैजयन्ती माला तथा कानों में कुण्डल, धड़ पर यज्ञोपवीत, हांथों में बाजूबन्द तथा पैरों में नुपुर सुशोभित हो रहे हैं। प्रतिमा के बायीं तरफ सरस्वती को वीणाधारण किए हुए एवं उनके अगल-बगल अन्य देवी देवताओं का सामूहिक रूप से मूर्तन प्राप्त होता है। बदामी (वातापी) से प्राप्त एक वामन प्रतिमा उल्लेखनीय है जिसमें वामन विष्णु के हांथ में दण्ड, कमण्डल, शरीर पर कृष्णाजिन, कटि में मेखला तथा सिर पर छत्र धारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है देखने से यह प्रतिमा सौम्यरूप में उकेरी गई गयी है। इस मूर्ति का प्रतिमा लक्षण पुराणोक्त श्रीमद्भागवत्

56. रुपमण्डन 3.17 ''वामनस्तु शंखचक्रगदापदमलसत्करः।

57. अपराजितपृच्छा अ० 2.9

से अत्यधिक साम्यता रखती है।[38] 11वीं 12 वीं सदी में अधिकांश प्रतिमाएं प्राप्त होती है जिनमें से एक प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित है यह प्रतिमा चतुर्भुजी है। 12वीं सदी की अधिकतर प्रतिमाऐं काले पत्थर में बनाई गई हैं जिनमें वामन को कुम्भाकार उदर वाला, मेखला, यज्ञोपवीत, श्रीवत्स धारण किए हुए तथा घुंघराले बालों वाला रूप में प्रदर्शित किया गया है। दिल्ली संग्रहालय की ही एक अन्य प्रतिमा में वामन को छत्र, माला एवं कमल से युक्त मूर्तित किया गया है।[59]

एक प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है जो अनेक अलंकरणों से युक्त हैं यह मूर्ति मत्स्य पुराणोक्त[60] वामन प्रतिमाओं से पर्याप्त साम्यता रखती है। इस प्रतिमा को बासुदेव शरण अग्रवाल[61] मध्यकालीन मानते हैं। 11वीं 12वीं सदी की एक वामन प्रतिमा जिसे पाल कालीन माना जाता है इस वामन मूर्ति का तादात्म्य विष्णु से रखते हुए प्रदर्शित किया गया है जिसमें वामन को ब्रह्मचारी रूप में छत्र एवं कमण्डल धारण किए हुए, चार भुजाओं वाला, कुम्भाकार उदर वाला तथा वैष्णव चिह्नों से अंकित मुद्रा में उकेरा गया है इसमें वामन के साथ लक्ष्मी को भी दर्शाया गया है इसी प्रतिमा के अगल बगल अन्य अनेक प्रतिमाओं का अंकन किया गया है। गोपीनाथ राव[62] इस प्रतिमा के साथ प्रदर्शित अन्य मूर्तियों का तादात्म्य बलि एवं उसकी पत्नी विध्यावली तथा गुरु

58. भागवत पुराण 8.20– ''छत्रं सजलदं सदण्डं कमण्डलु'' तथा

''मौञ्जामेखलया वीतमुपवीता जिनोत्तरम जटिलं वामनम्।।''

59. दृष्टव्य आर० सी० अग्रवाल ईस्ट एण्ड वेस्ट रोम एन० एस० 17.3.4, पृष्ठ 282, प्लेट 24

60. मत्स्य पुराण– 245, 88, 89– स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः

61. दृष्टव्य जर्नल आँव यू० पी० हिस्टारिकल सोसायटी लखनऊ जिल्द 22 1949 पृष्ठ 123

62. राव गोपीनाथ ए० हि० आ० वा० 1 भाग 1 पृष्ठ 175-76

शुक्राचार्य से स्थापित करते हैं। यह प्रतिमा बलि की यज्ञशाला में उपस्थित तीन पग भूमि मांगने की मुद्रा में खड़ी अंकित की गयी है।

वामन की एक चतुर्भुजी प्रतिमा राजस्थान से प्राप्त हुई है जो 11वीं सदी की है प्रतिमा के नीचे के हाथ खण्डित हैं तथा ऊपर एक हाथ में चक्रआयुध तथा दूसरे हाथ में गदायुध निर्मित किया दिखाया गया है। इस मूर्ति के पट्ट पर ही विष्णु के दशावतारों के मूर्तन के साथ-साथ अन्य देवी देवियों एवं दानव आकृतियों को भी मूर्तित किया गया है। इसी प्रकार की एक प्रतिमा 12वीं सदी की है जो लाल बलुए पत्थर से बनाई गयी है। इस वामन मूर्ति के बाल घुंघराले हैं, कमर पर दाहिनी ओर तलवार धारण कराई गई है। यह एक विलक्षण प्रतिमा है इस मूर्ति के पैरों के पास खड़े शंख पुरुष तथा चक्रपुरुष तथा अन्य भक्तगणों की मूर्तियों को सामूहिक रूप से प्रदर्शित किया गया है। खजुराहो के वामन मंदिर से प्राप्त चन्देल कालीन एक चतुर्भुजी वामन प्रतिमा जिसकी चारो भुजाएं खण्डित हैं तथा उसका शरीरिक सौष्ठव छोटा, गंठीला एवं प्रथुल तथा सुडौल प्रदर्शित किया गया है। इस मूर्ति का विलक्षण अलंकरण किया गया है। इस वामन मूर्ति के घुंघराले बाल गले में वनमाला, ग्रैवेयक हार, यज्ञोपवीत, केयूर, कटिमेखला तथा पैरों में नुपुर अलंकृत किए गए हैं। इस मूर्ति के दाहिनी तरफ शंख पुरुष तथा बायी तरफ चक्रपुरुष अंकित हैं। शंखपुरुष के पीछे भूदेवी तथा चक्रपुरुष के पीछे वाहन गरुण को मूर्तित किया गया। वामन के सर के पीछे प्रभामंडल बनाया गया है जिसके एक कोने पर शिव तथा दूसरे कोने पर ब्रह्मा की छोटी-छोटी मूर्तियों को प्रदर्शित किया गया है। इसमें दशावतार का प्रदर्शन भी किया गया है।[63] 12वीं सदी की एक वामन प्रतिमा सांभर से प्राप्त हुई है जो केन्द्रीय संग्रहालय जयपुर राजस्थान में सुरक्षित[64] है। इस वामन मूर्ति में विलक्षण

---

63. द्रष्टव्य अवस्थी रामाश्रय खजुराहो में हिन्दू प्रतिमा विज्ञान पृष्ठ 161-62
64. आर० सी० अग्रवाल जर्नल ऑव इण्डियन म्यूजियम बम्बई जिल्द 14-15 पृष्ठ 14 आकृति संख्या 10

अलंकरण किया गया है इसके बाल घुंघराले इसके पार्श्व भाग में शंख एवं चक्र पुरुष की आकृतियाँ प्रदर्शित की गयी हैं। सी० शिवराममूर्ति[65] ने इसकी विशिष्टता बताते हुए कहते हैं कि यह चतुभुर्जी प्रतिमा के बायें हस्त में गदा आयुध एक विलक्षण अलंकरण है। इसमूर्ति के हृदय पर श्रीवत्स-लांक्षन भी प्रदर्शित किया गया है। एक वामन प्रतिमा ब्रह्मचारी रूप में घुंघराले बालों से युक्त जो अपनी विलक्षण रूप सज्जा के लिए विख्यात है इसकी सुन्दरता का अलंकरण अपने आप में अलग तरह का है राजस्थान के अघूर्णा नामक स्थान से प्राप्त हुई है।[66] म० प्र० के मुरैना जनपद में स्थित पढोली शिवमन्दिर में जडित एक प्रस्तर फलक पर बिष्णु के दशावतार रूपों का अंकन किया गया है जिसमें विष्णु के वामनावतार को छत्र एवं दण्ड के साथ अंकित किया गया है।

त्रिविक्रम प्रतिमाऐं

वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में वामन-त्रिविक्रम रूप को अलंकृत रूप से भारतीय कला में उकेरा गया है। जिसमें वामन के सौम्य एवं वीभत्स दोनों रूपों का अंकन मिलता है। जो वामन त्रिविक्रम रूप से पूर्ण साम्यता रखती है। परन्तु विष्णु के त्रिविक्रम रूप को अपेक्षाकृत विशाल, भयानक एवं विलक्षण रूप में मूर्तित किया गया है। पुराणों में भी विष्णु के इस त्रिविक्रम रूप को अपेक्षाकृत विशाल रूप में दर्शाने का विधान किया गया है। त्रिविक्रम मूर्ति निर्माण के समय उनके आकार को विशाल फलक पर भयानक परमपराक्रमी, विश्वरूप एवं शौर्य के प्रतीक रूप में प्रदर्शित किया जाना अनिवार्य लगता है। त्रिविक्रम को विशाल मूर्ति के साथ ही सामूहिक रूप से दैत्येन्द्र बलि उनकी

---

65. सी० शिव राममूर्ति ऐंशयेन्ट इण्डिया नई दिल्ली जिल्द 6, 1950 पृष्ठ 44.45, आकृति संख्या 34।

66. दृष्टव्य आर० सी० अग्रवाल जर्नल ऑव इण्डियन म्युजियम बम्बई 14.15 पृष्ठ 15

यज्ञशाला, उनकी पत्नी एवं गुरु शुक्राचार्य के साथ-साथ मौजूद समस्त यज्ञिक देव व असुरों को प्रदर्शित करने का विधान पुराणों में अनेकत्र मिलता है। उनकी शौर्यता के प्रतीक के रूप में त्रिविक्रम के एक पैर को दृढ़ता से धरती पर जमा हुआ एवं दूसरे पैर को आकाश की ओर फैलाये हुए तथा इस पैर के नीचे बहुसंख्यक देवी-देवताओं एवं दानवों की आकृतियों को उकेरा जाना चाहिए यह उनके विराट रूप एवं विश्वब्यापी स्वरूप का प्रदर्शन है।

शिल्पशास्त्र रूपमंडन[67] में त्रिविक्रम विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति के निर्माण का विधान प्राप्त होता है इसमें त्रिविक्रम को शंख, चक्र, गदा, आयुधों से युक्त वीभत्सरूप को प्रदर्शित किये जाने का विधान दिया गया है। इसी प्रकार बैखानस आगम शिल्पग्रन्थ में त्रिविक्रम को चतुर्भुज अथवा अष्टभुज रूप में अंकन करने के विधान के साथ-साथ त्रिविक्रम के एक पैर को धरती पर जमाये हुए एवं एक पैर से स्वर्ग को आक्रान्त करने का विधान सविस्तार दिया गया है।[68] महाबलिपुरम के मामल्ल शैली में निर्मित प्रसिद्ध पंचपाण्डव मंडप में त्रिविक्रम की एक प्रतिमा का उल्लेख गोपीनाथ राव[69] ने किया है जिसमें श्रीराव ने बताया है कि यह मूर्ति सामूहिक मूर्तन में प्रदर्शित की गयी है। इससे यह प्रतिमा मूर्तन वैखानसआगम इत्यादि शिल्पग्रन्थों में वैज्ञानिक प्रतिमा विधान से पर्याप्त साम्यता रखती है। इसी प्रकार एक प्रतिमा वादामी से प्राप्त हुयी हैं यह प्रतिमा भी समूह मूर्तन का ही प्रतीक है। इस प्रतिमा के फलक पर त्रिविक्रम के साथ छत्रधारी वामन को बलि एवं उनकी पत्नी तथा उनके गुरु शुक्राचार्य एवं उपस्थित असुरों के समक्ष वामन को दान ग्रहण करते हुए प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा के दायें पैर को त्रिविक्रम दृढ़ता से पृथ्वी पर जामाये हुए

---

67. रूपमंडन 3.15 ''त्रिविक्रमस्त्रिषु गदा चक्र शंङ्खान् विभर्तियः''

68. दृष्टव्य जे० एन० बनर्जी डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी पृष्ठ 418

69. वही पृष्ठ 419

हैं जिसके पास दैत्येन्द्र बलि आलिंगन मुद्रा में है एवं वायां पैर स्वर्ग की ओर उठाये हुए है तथा समीप में देवगण वाद्ययन्त्रों को बजाने में रत हैं। यह मूर्ति अष्टभुजी है तथा हांथों में विष्णु के समान आयुधों से युक्त है।

मध्यकालीन मूर्तांकन में राहु को प्रायः इसी मुद्रा में अंकित किया गया है। इस मूर्तांकन में त्रिविक्रम की प्रतिमा को विलक्षणरूप से प्रदर्शित किया गया है इस मूर्ति का जो पैर ऊपर उठा है उसी के साथ एक हांथ भी ऊपर को उठा हुआ अंकित किया गया है। त्रिविक्रम की आंखे क्रोधावेश में खूब फैली हुई तथा फैले हुए हाथ की पांचों उंगलियाँ अत्यन्त रौद्र रूप में तथा आवेशित मुद्रा में उनका उकेरा गया मुखमण्डल बदसूरत दिखाई देता है। त्रिविक्रम की इस तरह की वीभत्स प्रतिमाओं का वैज्ञानिक आधार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में उल्लिखित "एकोर्ध्ववदनः कार्यों देवो विस्फारितेक्षण" जैसे उल्लेखों से साम्यता दर्शाई जाती है। त्रिविक्रम (विष्णु) की एक प्रतिमा बांग्लादेश के ढाँका जनपद के जूरादल (अब्दुल्लापुर में सुरक्षित) स्थान की काले पत्थर में उकेरी गई प्रतिमा उल्लेखनीय है। इस मूर्ति के चारो भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए दिखाया गया है। मूर्ति के बायें पैर के ऊपर चतुर्मुख ब्रह्मा को मूर्तित किया गया है। जो सत्यलोक (स्वर्गलोक) के आक्रांत करने का परिचायक है। इस तरह की प्रतिमा लक्षण का विधान भागवद् में प्राप्त होता है। राजस्थान के राजकीय संग्रहालय जयपुर में सुरक्षित जयपुर जनपद के चत्सु नामक स्थल से अतिकलात्मक एवं पौराणिक प्रतिमा वैज्ञानिक लक्षणों में प्राप्त मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं।

अध्याय 7

परशुराम अवतार

भागवत पुराण के अनुसार हैहय राजवंश का अंत करने के लिए विष्णु ने परशुराम के रूप में अवतार लिया था।[1] विष्णु के दस अवतारों में छठां अवतार परशुराम का माना जाता है। परशु आयुध धारण करने के कारण इनका नाम परशुराम पड़ा था। माता रेणुका तथा पिता जमदग्नि से उत्पन्न परशुराम को जामदग्नि भी कहा जाता है। भागवत पुराण के अनुसार उन्होंने इस पृथ्वी को 21 बार क्षत्रिय हीन कर दिया था। इस पुराण के अनुसार जब क्षत्रिय राजागण दुष्ट रजोगुणी तथा विशेष रूप से तमोगुणी हो गए थे तब प्रजा को उनके क्रूर व्यवहार से बचाने के लिए परशुराम रूप में अवतार लेकर भगवान ने इनका विनाश करने के लिए अवतार लिया था।[2] पौराणिक कथा के अनुसार हैहय राजवंश का अधिपति सहस्त्रार्जुन कार्तवीर्य एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था उसने भगवान नारायण के अंशावतार दत्तात्रेय जी को प्रसन्न करके उनसे एक हजार भुजाऐं तथा शत्रुओं से अपराजेयता का वरदान प्राप्त कर लिया था इसके अतिरिक्त उसने दत्तात्रेय जी की कृपा से इन्द्रियो का अवाधबल, तेजस्विता, अतुलसम्पत्ति, वीरता, कीर्ति तथा शारीरिक बल भी प्राप्त कर लिया था।[3] वह योगेश्वर हो गया था तथा उसको ऐसे गुण प्राप्त थे कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल शरीर ग्रहण कर लेता था। वायु की तरह वह सर्वत्र बेरोंकटोंक

1. भागवत पुराण– 9.15.14– यमाहुर्वासुदेवांश हैहयां कुलान्तकम्।

   तिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम।।

2. वही 9.15.15– दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत्।

   रजस्तमोवृतमहन फल्गुन्यपि कृतेंऽहंसि।।

3. वही 9.17.18

विचरण करता रहता था।[4] एकबार सहस्त्रार्जुन अपने गले में वैजयन्ती की माला डाले अनेक सुन्दरी स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जलविहार कर रहा था। उस समय मदोन्मत्त अवस्था में उसने अपनी बाहों से नर्मदा के प्रवाह को रोंक दिया। दशमुख रावण का भी शिविर संयोगवश वहीं कही लगा था। प्रवाह रूक जाने के फलस्वरुप नदी की धारा उल्टी बहने लगी इसके परिणामस्वरुप रावण का शिविर डूबने लगा रावण स्वयं को सबसे बड़ा वीर मानता था फलतः सहस्त्रार्जुन का यह पराक्रम प्रदर्शन उसे सहन नहीं हुआ। जब रावण सहस्त्रार्जुन के पास जाकर उसे भला-बुरा कहना शुरू किया तब उसने जल क्रीड़ा में रत स्त्रियों के सामने ही खेल-खेल में रावण को बन्दी बना लिया और अपनी राजधानी माहिष्मती में ले जाकर बन्दर के समान बन्दी बना लिया। कुछ दिनों के बाद पुलस्त जी के समझाने पर सहस्त्रार्जुन ने रावण को कारागार से मुक्त किया[5] उपर्युक्त पुराण के अनुसार एक दिन सहस्त्रभुजाओं वाला कार्तवीर्य अर्जुन जंगल में शिकार खेलने के लिए निकला दैववश वह जमदग्नि मुनि के आश्रम पर पहुँचा वहाँ उसने मुनिप्रवर की कामधेनु को देखा जमदग्नि मुनि ने उसे काम धेनु के प्रताप से सेना मंत्री एवं वाहन आदि के सहित पधारे हैहय नरेश अर्जुन का बड़ा स्वागत सत्कार किया। राजा ने देखा कि मुनि का ऐश्वर्य तो मुझसे भी कहीं बढ़चढ़ कर है इसलिए उसने मुनि द्वारा किए गये स्वागत सत्कार को कुछ भी आदर न देकर कामधेनु को अपहृत करने की योजना बनाई। अभिमानवश सहस्त्रार्जुन ने मुनि जमदग्नि से कामधेनु न मांगकर अपने सेवकों को आज्ञा दी कि कामधेनु को मुनि से छीनकर ले चलो राजा की आज्ञा से सेवकगण बछड़े के साथ रोती बिलखती कामधेनु को बलपूर्वक अपहृत करके राजधानी माहिष्मतीपुरी

---

4. वही 9.15.19– योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः।

चाचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा।।

5. वही 9.15.22– गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिबिषः।

महिष्मंत्या सनिरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा।।

ले आए। राजा तथा उनकी सेना आदि के चले जाने पर परशुराम जी अपने पिता के आश्रम पर आए। उन्हें हैहय नरेश अर्जुन की दुष्टता का पूरा वृतांत सुनाया गया परशुराम जी चोटिल सांप की भांति हैहयाधिपति के दुराचरण से क्रोध से तिलमिला उठे तथा अपना भयंकर फरसा (परशु), तरकस, धनुष, तथा ढाल आयुधों को लेकर बड़े वेग से सहस्त्रार्जुन के पीछे दौड़े।[6] हांथ में धनुष बाण एवं फरसा लिए शरीर पर कालामृगचर्म धारण किए परशुराम की छटा विलक्षण थी उनकी जटाएं सूर्य की किरणों के समान चमकीली थीं क्रोधावेग में आते हुए परशुराम के इस वेग को देखकर हैहय नरेश ने पहले अपनी भयंकर सत्रह औक्षहणी सेना भेजी तदुपरांत सेना के पराजित होने के बाद अपनी सहस्त्र भुजाओं में धनुष बाण इत्यादि लेकर स्वयं उनसे युद्ध के लिए तत्पर हुआ परशुराम ने बड़ी सहजता के साथ अपनी कुठार से उसके सिर को काट डाला।[7] इस प्रकार अपने विपक्षी वीरों का नाश करके परशुराम जी ने बछड़े के साथ कामधेनु ने पुनः प्राप्त कर लिया। कामधेनु बलात् अपहृत किए जाने से बहुत ही दुःखी हो रही थी। परशुराम ने उसे आश्रम पर ले आकर पिता को सौंप दिया।[8]

हैहय नरेश सहस्त्रार्जुन के पुत्रगण परशुराम द्वारा अपने पिता की हत्या

---

6. वही 9.15.28– घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम्।

अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम।।

7. वही 9.15.34– पुनः स्वहस्तैरचलान् मृधेऽङ्घ्पा

नुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि।

भुजान कुठारेण कठोरनेमिना,

चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव।।

8. वही 9.15.36– अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा।

समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत्।।

से बड़े दुःखी थे उन्होंने प्रतिशोध स्वरुप मुनिजमदग्नि के आश्रम में प्रवेश करके उनका सिर काट लिया तथा उसे लेकर माहिष्मती चले आए इस बात की सूचना परशुराम को अपनी माता रेणुका से मिली उन्होंने माहिष्मत्री में प्रवेश करके सहस्त्रार्जुन के पुत्रों का एक-एक करके वध कर डाला तथा उनके सिरों को नगर के बीचोबीच एकत्रित करके एक भारी पर्वत सा खड़ा कर दिया।[9] परशुराम ने अपने युग के क्षत्रियों के अत्याचार को देखते हुए उनके पाप के भार से पृथ्वी को हल्का करने तथा अपने पिता के वध को निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया था।[10] भागवत पुराण के अनुसार परशुराम आज भी शांतचित्त होकर महेन्द्र पर्वत पर निवास करते हैं जहाँ सिद्ध गन्धर्व एवं चारण उनके चरित्र का मंगलगान किया करते हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु ने भृगुवंशियों में अवतार ग्रहण करके अत्याचारी पृथ्वी के भारभूत राजागणों का अनेक बार बध किया।[11]

वस्तुतः परशुराम के व्यक्तित्व से जुड़ा उपर्युक्त आख्यान का मूल स्त्रोत महाभारत है[12] इसी प्रकार संक्षेप में मत्स्य पुराण में भी विष्णु के परशुराम

---

9. वही 9.15.17– गत्वा माहिष्मतीं रामो बृह्मघ्नविहतश्रियम।
   तेपां स शीर्पभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम।।
10. वही 9.15.18.19– तद्रक्तेन नदीं घोराम व्रह्मण्य भयावहाम्।
   हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि।।
11. वही 9.15.26.271 आस्तेधापि महेन्द्रादौन्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः।
   उपगीयमान चरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः।।
   एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान हरिरीश्वरः
   अवतीर्य परं भारं भुवोऽन बहुशो नृपान्।।
12. महाभारत 2.49.3.98

अवतार का उल्लेख किया गया है।[13] विष्णु पुराण में कहा गया है कि इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न महाराज रेण्ड की कन्या रेणुका से मुनि जमदग्नि को क्षत्रिय राजाओं का ध्वंस करने वाला भगवान परशुराम पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए जो सम्पूर्ण लोक के गुरु विष्णु नारायण के अंश थे।[14]

विष्णु के अवतारों में उनका परशुराम अवतार छठां बताया गया है मत्स्य पुराण में इस कथन की पुष्टि होती है परन्तु इसमें एक विशेप बात यह भी कही गयी है कि यह अवतार 19वें त्रेता युग में हुआ था जब विश्वामित्र विष्णु के यज्ञ के पुरोहित बने थे।[15] भागवत पुराण के अनुसार यह विष्णु का सोलहवाँ अवतार था।[16]

विष्णु के अवतारों में राम एवं कृष्ण की भांति परशुराम का अवतार भी ऐतिहासिक माना जाता है। क्योंकि उन्हें एक ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उनके द्वारा किए गये कार्य विलक्षण एवं अलौकिक अवश्य थे परन्तु अतिमानवीय अथवा अतिदैवीय नही कहे जा सकते हैं। विष्णु का परशुराम का अवतार क्षत्रिय शासकों के द्वारा प्रजा का पालन और कल्याण

---

13. मत्स्य पुराण 47.244 एकोनविश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रांतकृद विभुः।
    जामदग्न्यस्तथा पष्ठो विश्वामित्रपुरः सरः।।
14. विष्णु पुराण 4.7.35.36– ''जमदग्निरिक्ष्वाकुवंशो द्भवस्य
    रेणोस्तनयां रेणुकामुपयेमे।।''
    ''तस्यां चाशेपक्षत्रहन्तारं परशुरामसंज्ञं
    भगवतस्सकललोकगुरोर्नारायणस्यांशं
    जमदग्निरजीजनत्।।''
15. मत्स्य पुराण 47.244
16. भागवत पुराण 1.3.20 अवतारे पोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान
    त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम्।।

(लात् किल त्रायते इति क्षत्रियः)। विशेप रूप से अध्यात्म्य परायण व्राह्मण मुनियों के पोषक न होकर शोषक बनने वाले क्षत्रियों के संहार के लिए हुआ था। महाभारत के पहले प्राप्त साहित्य में इस अवतार का पता नही चलता। कात्यायन कृत ''सर्वानुक्रमणीय'' में जामदग्नि राम को किन्हीं वैदिक मंत्रों का दृष्टा कहा गया है।[17] कुछ विद्वान जमदग्नि के पुत्र राम का समीकरण पौराणिक परशुराम से करते हैं। परन्तु वैदिक ऋषि के रूप में परशुराम के ऊपर पौराणिक परशुराम की क्रिया कलाप पारस्पर विरोधीस्वभाव का द्योतन करते हैं। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में परशुराम के प्रतिमालक्षण का विशद् निरुपण मिलता है। इसमें कहा गया है कि भार्गव राम को जटामंडल के कारण दुर्दर्श हांथ में परशु लिए हुए, कृष्णाजिन धारण करने वाला रुप अंकित करना चाहिए।[18] अन्यत्र इसी पुराण में उन्हें जटायुक्त धनुषबाण एवं परशु जैसे आयुधों को धारण करने वाला कहा गया है।[19] अग्नि पुराण में भार्गव राम को परशु धनुषबाण एवं खड्गधारी बताया गया है।[20]

अपराजित प्रृच्छा में परशुराम को केवल शस्त्रभ्रताम् कहा गया है। उनके

17. कात्यायन वार्तिक ''सर्वानुक्रमणीय'', 10.110

18. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.85.61– कार्यस्तु भार्गव रामो जटामण्डल दुर्दशः।
हस्तेस्य परशुः कार्यः कृष्णाजिन धरस्य तु।।

19. वही 3.106, 100-102– वाल्मीके त्वमिहाभ्येहि वेदोद्धरणतत्पर।
ाममावाहयिप्यामि हृतक्षत्रियमण्डलम्।।
ागर्वाभ्येहि में नाथ जटामण्डल दुर्दश।
आवाहनं करिष्यामि परशुं दीप्तितेजसम्।।
आगच्छ परशो शीघ्रं लक्षीकृत वसुन्धर।
प्रथुमावाहिष्यामि चक्रवर्तिनमूर्जितम्।।

20. अग्निपुराण– 49.50– ''रामश्चापेपुहस्तस्यात्खड्गी परशुनान्वितः।''

रूप एवं आयुध का वर्णन नहीं किया गया है।[21] रुपमंडन ने परशुराम को परशु आयुध धारी, जटाधारी एवं अजिनधारी कहा गया है।[22] वैखानसआगम में उन्हें श्वेतवस्त्रधारी, जटायुक्त तथा रक्तवर्ण वाला कहा गया है।[23] परशुराम के परशु आयुध का वर्णन लगभग सभी पुराणों एवं शिल्पग्रन्थों में किया गया है।

कला अंकनों में विष्णु के परशुराम अवतार को दो रूपों में निर्मित किया गया है–

(1) दो भुजाओं से युक्त प्रतिमा।

(2) चार भुजाओं से युक्त प्रतिमा।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण तथा रूपमंडन में निर्दिष्ट प्रतिमालक्षण के अनुरूप परशुराम की परशुधारी, मूर्तियां अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं।

खजुराहो (म० प्र०) में स्थित पार्श्वनाथ जैनमंदिर में परशुराम की दो प्रतिमाएं अंकित है[24] पहली प्रतिमा दो फुट ऊंची है देवता के सिर पर किरीट मुकुट तथा गले में वनमाला है यह प्रतिमा चतुर्भुजी है जिनमें परशु, शंख, पद्म तथा चक्र आयुध निर्मित किए गये हैं। एक अन्य मूर्ति खजुराहो के ही लक्ष्मण मंदिर में भी उत्कीर्ण है इसमें परशुराम को परशु तथा धनुषबाण के साथ अंकित किया गया है। गढ़वा से प्राप्त परशुराम की एकमूर्ति जो दसवीं-ग्यारहवीं सदी की है विशेष उल्लेखनीय है इसमें देवता के सिर पर किरीट मुकुट, गले में मणिमाला, कन्धे पर यज्ञोपवीत, बाईं भुजा पर बाजूबन्द तथा कलाईबन्द तथा दाहिने हांथ में परशुधारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। यह बहुत ही भव्य

---

21. अपराजितप्रृच्छा– 27.2

22. रुपमंडन– 23.26 जटाजिन धरो रामो भागर्वः परशुं दधत्।।

23. वैखानस आगम– जामदगन्यरामं द्विभुजंरक्ताभं श्वेतवस्त्रधरं जटामुकुटधरं सोपवीतं कारयेत्।।

24. दृष्टव्य अवस्थी रामाश्रय खजुराहों की देवप्रतिमा पृष्ठ 166-67

प्रतिमा है। चित्तौड़गढ़ में विजयस्तम्भ की सातवीं मंजिल में परशुराम की एक प्रतिमा तथा दूसरी प्रतिमा वहाँ स्थित पद्मिनी महल के निकट बने तालाब की दीवार पर उकेरी गई है। पहली प्रतिमा स्थानक तथा चतुर्भुजी है देवता के दोनों ऊर्धकर में क्रमशः परशु एवं धनुप तथा वामाधःकर में कमण्डलु धारण कराया गया है। नीचे का दक्षिण हांथ खण्डित हो चुका है मूर्ति के दायीं ओर परशुराम के लहराते हुए उत्तरीय का एक छोर प्रदर्शित किया गया है यह लेखयुक्त प्रतिमा है। मूर्ति के पादपीठ पर ''पर्शुरामः'' लेख खुदा हुआ है। तालाव की दीवार पर जड़ी हुई दूसरी प्रतिमा ललितासनमुद्रा में अंकित तथा द्विभुजी है। इसके दायें हांथ में परशु तथा बायें हांथ में कमण्डलु सुशोभित है। देवता का जटामुकुट वहुत ही भव्य रूपायित किया गया है। ध्यातव्य है कि विजय स्तम्भ वाली मूर्ति पर जटामुकुट के स्थान पर किरीट मुकुट निर्मित किया गया है। इन मूर्तियों की तिथि लगभग 15वीं सदी ई० मानी जाती है। ढाका[25] (बांग्लादेश) से प्राप्त परशुराम की एक प्रतिमा चतुर्भुजी तथा जटायुक्त है उनके हाथों में क्रमशः परशु, गदा, शंख तथा चक्र निर्मित किया गया है। रानीहाटी नामक स्थान से परशुराम की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जो चतुर्भुजी है इन हांथों पर आयुध हैं परशु, शंख, चक्र तथा पद्म। संम्प्रति यह प्रतिमा औटशाही नामक स्थान में सुरक्षित है। इसी प्रकार चम्बा (हिमांचल प्रदेश) से परशुराम की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जो सम्प्रति भूरसिंह संग्रहालय चम्बा में सुरक्षित है यह प्रतिमा 17वीं सदी की है। बलुआ पत्थर से बनाई गई है। परशुराम की इस प्रतिमा में उन्हें चार भुजाओं से युक्त आंका गया है। उनके नीचे के दाहिने हांथ में परशु तथा बायें हांथ में धनुष सुशोभित हैं। ऊपर के हाथों में वाण एवं शंख विराजमान हैं किरीट मुकुट से युक्त परशुराम के कानों में कुण्डल, गले में हार, वक्ष पर श्रीवत्स कटि में मेखला, गले में वनमाला तथा शरीर पर यज्ञोपवीत से अलंकृत किया गया है। परशुराम की एक द्विभुजी मूर्ति अमरेली नामक स्थान से प्राप्त हुई है उनके एक हांथ में परशु तथा दूसरे हांथ में बाण सुशोभित हैं। इनके अतिरिक्त दशावतार पट्ट तथा विष्णु अवतार की प्रभावलियों में भी परशुराम का अंकन देखा जा सकता है।

---

25. दृष्टव्य– बनर्जी जे० एम० डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी पृष्ठ 420

अध्याय 8

रामावतार

विष्णु का एक अवतार दशरथ नन्दन राम के रूप में हुआ था। यह कथा लोकमानस में वैदिककाल से बनी हुई है। वेदों में राम की कथा संक्षिप्त तथा संकेत रूप में मिलती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य में रामकथा से सम्वन्धित कतिपय पात्रों का उल्लेख अवश्य मिलता है परन्तु उन पात्रों के पारस्परिक सम्वन्ध का उल्लेख नहीं किया गया है इससे यह स्पष्ट होता है कि बाल्मीकिकृत रामायण अथवा पुराणों में वर्णित रामकथा का स्वरूप वैदिककाल में नहीं वन पाया था। ऋग्वेद में दशरथ शब्द का उल्लेख एक दाम स्तुति में कुल एक बार किया गया है।[1] इसी प्रकार राम नामक एकाधिक व्यक्तियों का वर्णन वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। किन्तु ऋग्वेद में एक राजा के रूप में राम का उल्लेख एक बार हुआ है।[2] इसके विपरीत ऐतरेय ब्राह्मण में ''राममार्गविय'[3], शतपथ ब्राह्मण[4] में ''रामऔपतस्विनी'' तथा जैमिनीय उपनिषद में ''रामक्रातुजातेय' का उल्लेख किया गया है जहाँ उन्हें ब्राह्मण आचार्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। डा० बलदेव उपाध्याय का यह निष्कर्ष यथेष्ट प्रतीत होता है कि राम नामक संज्ञा वैदिककाल में राजा तथा ब्राह्मण आचार्य वर्गों में प्रचलित था किन्तु रामकथा जैसी कोई चीज अथवा विष्णु का राम के अवतार जैसी बात वैदिक वाङमय में प्रचलित नहीं थी। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तथा

---

1. ऋग्वेद–1.126.4 चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्याग्रेश्रेणि नमन्ति।
2. वही–10.93.14 ''प्र तद्दुःशीमे प्रथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मधवस्तु।
   ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु प्रथा विश्राव्येषाम्।।''
3. ऐतरेय ब्राह्मण 7.27.34
4. शतपथ ब्राह्मण 4.6.1.7

शतपथ ब्राह्मण में जनक बैदेह तथा सीता[5] का वर्णन मिलता है। तैत्तिरीय-ब्राह्मण में सीता सावित्री को सूर्य की पुत्री कहा गया है।[6] कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता का उल्लेख वैदिक साहित्य में अनेक बार हुआ है।[7] बाल्मीकिकृत रामायण में राम के लिए दाशरथिराम का प्रयोग हुआ है। तथा आगे चलकर रामभद्र के अतिरिक्त एक अन्य नाम रामचन्द्र प्रचलित हो गया। रामायण में रामदाशरथि का प्रयोग इसलिए किया गया है, क्योंकि इसमें परशुराम एवं बलराम की कथाएं भी वर्णित हैं।[8] तथा ''उत्तररामचरित्''[9] में पहलीबार राम के लिए रामचन्द्र शब्द का प्रयोग किया है। ध्यातव्य है कि रूपक के रूप में रामायण[10] में रामचन्द्र का प्रयोग किया गया है जो भवभूति के काल तक आते-आते रूपक न होकर व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त होने लगा। बाल्मीकिकृत रामायण में प्रस्तुत प्रमुख पात्र राम का भारतीय जनमानस में व्यापक प्रभाव पड़ा है। रामायण ही नहीं बल्कि इसके पहले भी रामचरित का गुणगान गीतों एवं आख्यानों के माध्यम से भारतीय जनमानस में पड़ा है; इसके साक्ष्य हमें महाभारत के शान्तिपर्व एवं द्रोणपर्व में संक्षिप्त रूप से प्राप्त होते हैं।[11] बाल्मीकि जी यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि तत्समय राम के गुणों का बखान जनसामान्य

---

5. तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.3.10
6. तैत्तिरीय ब्राह्मण–2.3.10
7. ऋग्वेद–1.40.4

   अथर्वेद 11.3.12 तैत्तिरीय संहिता 5.5.5

   काठक संहिता 20.3 कपिष्ठल संहिता 32.5–6 तथा शतपथ ब्राह्मण 13.8.2.6-8 आदि
8. भवभूति, महावीरचरित अंक 2 श्लोक 20
9. दृष्टव्य उत्तररामचरित अंक 7. श्लोक 18
10. दृष्टव्य वाल्मीकिकृत रामायण 6.302.32
11. दृष्टव्य टी० परमशिव ऐप्पर रामायण ऐण्ड लंका पृ० 8

में बखूबी प्रचलित था। उन्हीं गुणों से आकर्षित होकर ऐसे दिव्य पुरुष का गुणगान करना उन्हें अभीष्ट लगा और उन्होंने रामायण जैसे महाग्रन्थ की रचना में उनके गुणों का खूब बखान किया है। उन्होंने लिखा– ''इक्ष्वाकुवंश रामो नाम गुणैर्श्रुतः''।

रामायण की रचना की प्रमाणिकता के बारे में विद्वानों के विभिन्न मत प्रचलित हैं। विन्टरनिट्स रामायण को 300 ई०पू० की रचना मानते हैं जबकि मैकडानेल एवं कीथ रामायण की रचनाकाल को 400 ई०पू० एवं याकोबी इसे 800-600 ई०पू० की लिखी गई मानते हैं। फादर कामिन बुल्के ने अपना मत दिया जो यौक्तिक प्रतीत होता है कि लगभग इसी समय के ग्रन्थकार कौटिल्य, महाकविभास एवं पतंजलि रामायण की कथा से पूर्णरूप से परिचित थे।[12] यह बात ध्यान देने योग्य है कि रामायण की भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो पाणिनि के ग्रन्थों से मेल नहीं रखते हैं। परन्तु पाणिनि की अष्टाध्यायी में बाल्मीकि, भरत, रावण, कौशिल्या, कैकय, कैकेई, वैश्रवण, विभीषण जैसे रामायण में उल्लिखित शब्द प्राप्त होते हैं। परन्तु यह ध्यातव्य है कि अष्टाध्यायी में रामायण के प्रमुख पात्र राम, सीता, एवं दशरथ का उल्लेख नहीं मिलता है।

भारतीय जनमानस को रामायण के विस्तृत रूप को ग्रहण करने में काफी समय लगा होगा। याकोबी रामायण के विस्तृत प्रचलित रूप को प्रथम शताब्दी ई० मानते हैं जबकि विन्टरनिट्स द्वितीय सदी ई० मानते हैं। इसी प्रकार चिन्तामणि विनायक वैद्य रामायण के प्रचलित रूप को प्रथम सदी ई०पू० मानते हैं। विवाद में न पड़ा जाय तो माना जा सकता है कि गुप्तकाल के पहले ही रामायण का विस्तृत रूप समाज में आ चुका था क्योंकि महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में इसका वर्णन प्राप्त होता है और कालिदास गुप्तकालीन कवि एवं नाटककार हैं।

---

12. फादर कामिन बुल्के रामकथा पृ० 36

रामकथा के प्रचलन ने नाटककारों, कवियों, लोकगायकों, रंगमंचन करने वाले कलाकारों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया है ईसा पूर्व द्वितीय सदी के लगभग यह कथा जनमानस के पटल पर आच्छादित हो चुकी थी। गुप्तकाल में रामकथा का नाटक, गीत के रूप में एवं रंगमंच में प्रदर्शन तथा कला के रूप में पात्रों के अंकन का विस्तृत वर्णन मिलता है। कालान्तर में गुप्त एवं गुप्तोत्तर दोनों कालों में राम को विष्णु का ही अवतार माना जाने लगा और इस रूप की व्यापक रूप में पूजा होने लगी।

पुराणों में राम की प्रतिमा अंकन का विधान प्रस्तुत किया गया है। मत्स्यपुराण में राम की प्रतिमा की उँचाई इत्यादि की गणना का भी उल्लेख मिलता है। जिसमें राम की मूर्ति को 10 ताल या 120 अंगुल की ऊंचाई वाली बनाने का विधान है।[13] पुराणों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों बृहत्संहिता[14] तथा मानसोल्लास[15] में भी राम की मूर्ति को किस लम्बाई-चौड़ाई में बनाना चाहिए का विधान किया गया है। शिलरत्न में राम को कृष्ण मेघ की कान्ति के समान, नीलकमल के सदृश बताया गया है।[16] बाल्मीकि रामायण में भी राम को नीलकमल के समान श्यामल वर्णवाला बताया गया है।[17] उक्त महाकाव्य में अन्यत्र भी राम को तपस्वी के रूप में जटायुक्त बताया गया है।[18] राम की

---

13. मत्स्यपुराण 259.1–''दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा।''

14. बृहत्संहिता 58.30 ''दशरथतनयो रामो बलिश्च शतं विंशम्''।

15. मानसोल्लास 3.698 ''श्री रामश्च वराहश्च दशतालावुदाहृतौ''

16. शिल्परत्न उत्तरभाग 23–29-32

कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितम्।
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्।।

17. बाल्मीकिकृत 'रामायण' 1.1.11 ''नीलोत्पलदलश्यामः''

18. वही– 2.99.25– ''उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिण्''

प्रतिमा को द्विभुजी, चतुर्भुजी एवं अष्टभुजी बनाने का विधान भी अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। समरांगण सूत्रधार में राम को द्विभुजी, चतुर्भुजी तथा अष्टभुजी बताया गया है।[19] राम की प्रतिमा को राजा के रूप में प्रदर्शित करते हुए विशेष अंलकरण में बनाने का विधान अनेक शिल्पग्रन्थों में विस्तार पूर्वक दिया गया है। शिल्परत्न में वर्णित है कि राजा के रूप में मूर्तित करते समय राम की मूर्ति के अलंकरण में उनके सिर पर किरीट मुकुट, कानों में कुण्डल, केयूर, गले में हार इत्यादि आभूषणों से युक्त बनाना चाहिए।[20]

पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्ग भजे।

रामं रत्नकिरीटकुण्डलधरं केयूरहारान्वितम्।।

भगवान राम के साथ सीता की मूर्ति का अंकन शिल्पग्रंथों में विभिन्न रूपों में बनाये जाने का विधान प्रस्तुत किया गया है। राम को राजा एवं सीता को रानी के रूप में भी चित्रित करने का विधान ग्रन्थों में बहुतायत में मिलता है। शिल्परत्न में श्रीराम को वीरासन में विराजमान, मुकुट आदि अलंकरणों से सुसज्जित, ज्ञानरूपी मुद्रा में लीन एक हाथ एवं दूसरा हाथ घुटने रखा हुआ, श्यामल वर्ण की कान्ति वाले उनके पार्श्वभाग में सीता विद्युत के समान आभावाली, समस्त आभूषणों से सुसज्जित रुप में अलंकृत किए जाने का विधान प्राप्त होता है।[21] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में दाशरथि राम को सपरिवार अंकित किए जाने का विधान प्रस्तुत किया गया है। इसमें राम को राजा के

19. समरांगणसूत्रधार 77.40 ''द्विभुजोऽष्टभुजो वापि चातुर्बाहुररिन्दमः''

20. शिल्परत्न उत्तरभाग– 23.29.31

21. वही 23.29– कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितम्।

मुद्रांज्ञानमयी दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।

सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवम्।

पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादि विविधाकल्पोज्ज्वलाङ्ग भजे।।

रूप में तथा उनके सभी भाइयों को राजदरबार में उपस्थित अंकित किये जाने का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है।[22] अपने भाइयों, पत्नी, हनुमान एवं अन्य वानरों, ऋषियों इत्यादि के साथ राम को सामूहिक रूप में मूर्तित किए जाने का भी विधान मिलता है।

राम ध्यानमुद्रा में राजा के रूप में सिंहासन में विराजमान जिनके बायीं तरफ सीता को एवं अगल-बगल सुग्रीव, हनुमान आदि वानर सेना तथा वशिष्ठ एवं विश्वामित्र आदि मुनियों के साथ विचार-विमर्श में लिप्त बहुत ही अलौकिक दृश्यांकन किए जाने का विधान शिल्परत्न में प्रस्तुत किया गया है।[23] इसी प्रकार की अन्य ध्यान मुद्राओं में राम के बायीं ओर सीता, उनके सामने हनुमान पीछे लक्ष्मण तथा दोनों पार्श्वों में भरत एवं शत्रुघ्न तथा चारो कोनों में सुग्रीव, विभीषण, अंगद, जाम्बवन्त इत्यादि समस्त बानर सेना सहित मूर्तित किया गया जाता है एवं नीलवर्ण के सदृश्य अलंकृत वस्त्र धारण किये हुए द्विभुजा युक्त निर्मित किया जाता है। कहीं-कहीं राम को समस्त बानर सेना के साथ महत्वपूर्ण बैठक में विराजमान हाथों में धनुषबाण लिए हुए वल्कल वस्त्र धारण किये, सिर के बालों को जूड़े के समान बांधे द्विभुजी प्रतिमा निर्मित मिलती है। शास्त्रों में

---

22. विष्णु धर्मोत्तर पुराण 3.85.62-63

रामो दाशरथिः कार्यो राजलक्षणलालितः।
भरतो लक्ष्मणश्चवैशत्रुघ्नश्च महायशाः।
तथैव सर्वे कर्तव्याः किन्तु मौलिविवर्जिताः।।

23. शिल्परत्न उत्तरभाग 23, 32–

रामं रत्नकिरीट कुण्डलधरं केयूरहारान्वितम्।
सीतालंकृत वामभागममलं सिंहासनस्थं प्रभुम्।
सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यमानं सदा।
विश्वामित्र पराशरादिमुनिभिः संस्तूयमानंभजे।।

वनगमन की मुद्रा में प्रदर्शित प्रतिमाओं को भी उकेरे जाने का विधान दिया गया है। शिल्पग्रन्थ वैखानस आगम में उल्लिखित है कि श्री राम को राजा के रूप में उनके बायीं तरफ सीता एवं पार्श्वभाग में अन्य तीनों भाइयों एवं हनुमान के साथ बानर सेना तथा पुरोहित वशिष्ठ को भी मूर्तित किया जाना चाहिए।

गुप्त एवं गुप्तोत्तरकाल में निर्मित मंदिरों की भित्तियों पर राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान की मूर्तियों का मूर्तांकन बहुतायत प्राप्त होता है। इन मूर्तियों की पूजा समाज में देवरूप में होने लगी तथा मंदिर बनाकर इन मूर्तियों की स्थापना एक पवित्र कार्य मान कर जन सामान्य में प्रचलित हो गया जो आज समस्त भारत में अनेकत्र बिखरे पड़े हैं। नवीं-दसवीं सदी के मंदिरों के गर्भगृह में राम-सीता, लक्ष्मण एवं हनुमान की मूर्तियों का उकेरा जाना पुजारियों को बहुत भाया इससे कला में उन्नति हुई। बाल्मीकि रामायण संस्कृत में लिखे होने के कारण जनसामान्य में सुगम नहीं थी अधिक लोग इसे समझ नहीं पा रहे थे लेकिन भक्ति आन्दोलन के समय रामायण का कई भाषाओं में अनुवाद ने जनसामान्य ने वैष्णव धर्म के तथा रामकथा के प्रचलन का मार्ग और सुगम कर दिया। इसी समय महाकवि तुलसीदास जी ने रामकथा का विस्तृत एवं सुगम एक ग्रन्थ ''रामचरित मानस'' को लिखकर राम की भक्ति एवं जनसामान्य में रामकथा के प्रचलन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। रामकथा का साहित्यकारों के साथ-साथ कलाकारों ने भी रामायण के प्रमुख पात्रों के चरित् का दृश्य अभिनीत करके एवं कला अंकनों द्वारा इस कथा को व्यापक रूप से प्रचारित किया।

भारतीय कला में रामायण के पात्रों एवं उनकी कथा का सर्वप्रथम अंकन कौशाम्बी में मिलता है। यहाँ से प्राप्त एक मूर्तिफलक पर रावण द्वारा सीता को अपहृत करने का दृश्य अंकित मिलता है[24] यह प्रतिमा द्वितीय सदी

24. दृष्टव्य आर. सेनगुप्त जर्नल आफ दि आंध्र हिस्टॉरिकल रिसर्च सोसायटी जिल्द XXXII भाग 1 1971-72 पृष्ठ 126-132

ई० पू० की है जो इलाहाबाद संग्रहालय में सुरक्षित है। द्वितीय सदी ई०पू० के कवि भास भी रामकथा की लोकप्रियता को देखते हुए ''प्रतिमा'' तथा अभिषेक'' नाटकों की रचना की जो जनसामान्य में खूब प्रचलित हुए।

रामायण में उल्लिखित महर्षि विभाण्डक के पुत्र के जन्म का अंकन भरहुत से प्राप्त एक प्रस्तर फलक पर मिलता है जिसमें यह दर्शाया गया है कि एक हिरणी अपने पुत्र को विभाण्डक ऋषि को सौंप रही है तथा हिरणी संन्यासी के रूप में चित्रित है इसके एक सींग है एवं एक हांथ में कमण्डल जैसा एक पात्र लिए विभाण्डक पुत्र ऋष्यश्रृंग को अंकित किया गया है। रामायण कथा में कहा गया है कि जब श्रृंगी ऋषि ने यज्ञ किया तब महाराजा दशरथ को राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न एवं पुत्री शान्ता की प्राप्ति हुई। ऋष्यश्रृंग के जन्म का ऐसा ही एक दृश्यांकन सांची से प्राप्त होता है जो प्रथम सदी ई० का है। मथुरा संग्रहालय से मिली एक मूर्ति एक ऐसे बालक की है जिसके सिर पर सींग बनाई गयी है। यह प्रतिमा कुषाणकालीन मानी जाती है। इस प्रतिमा को प्रो० वासुदेवशरण अग्रवाल ने देखकर कहा कि यह श्रृंगीऋषि की ही है। ऐसी ही एक प्रतिमा अंगदेश से प्राप्त कुषाणकालीन है जो 200 ई० के लगभग की मानी जाती है के प्रस्तर फलक में श्रृंगीऋषि के अपहरण को गणिकाओं द्वारा किए जाने का दृश्यांकन मिलता है। जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है।

एक प्रतिमा आंध्रप्रदेश के नागार्जुनकोण्डा से मिली है जो तृतीय सदी की है के फलक पर दो तरह से अंकित है। एक में राम-सीता को तापस वेशभूषा में वनगमन करते हुए एवं दूसरे में भरत द्वारा राम से अयोध्या लौट चलने के प्रसंग को अंकित किया गया है। प्रथम दृश्य में राम के त्याग एवं द्वितीय में भरत के धैर्य को प्रदर्शित किया गया है।

गुप्तकाल के मंदिरों में रामकथा का विस्तारपूर्वक दृश्यांकन अनेकत्र बहुलता से प्राप्त होता है। भीतरगांव, कानपुर जनपद (उ०प्र०) से प्राप्त गुप्तयुगीन

मंदिर की एक प्रतिमा के फलक पर माली-सुमाली एवं माल्यवंत आदि भयानक राक्षसों के साथ राम एवं लक्ष्मण के युद्ध को प्रदर्शित किया गया है। जो ब्रुकलीन संग्रहालय संयुक्त राज्य अमेरिका में सुरक्षित है। यहीं से प्राप्त एक अन्य मूर्तिफलक पर जयंत नामक कौवे के द्वारा सीता के मुख पर आक्रमण करने का दृश्य अंकित है जिसमें सीता के मुख के पास कौवे की खुली हुई चोंच को प्रदर्शित किया गया है। यह प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। भिण्ड जनपद (म०प्र०) से प्राप्त एक मूर्तिफलक पर सीता को अशोक वाटिका में बैठे हुए अंकित किया गया है यह प्रतिमा दिल्ली संग्रहालय में सुरक्षित है। पौमार नागपुर (महा०) से प्राप्त एक मूर्तिफलक पर रामायण कथा के पात्रों को प्रदर्शित किया गया है। गुप्तकालीन एक प्रतिमा वोमेल को सहेत-महेत (श्रावस्ती) जिला ब्रलरामपुर (उ०प्र०) से प्राप्त हुई है जिसमें राम के चरणों के स्पर्श से श्रापित अहिल्या के उद्धार को दर्शाया गया है इस प्रतिमा का अलंकरण उच्चकोटि का है। राम की एक मूर्ति जिसमें रावण को कैलास पर्वत उठाये हुए दर्शाया गया है इसमें शिवशक्ति का प्रदर्शन किया हुआ स्पष्ट रूप से अंकन है यह प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है जो चतुर्थ या पांचवी सदी की मानी जाती है। श्रृंगवेरपुर से प्राप्त एक गुप्तकालीन प्रतिमा के प्रस्तर फलक पर राम-लक्ष्मण, सुग्रीव एवं उनके साथी तथा वानर सेना को अंकित किया गया है जो इलाहाबाद संग्रहालय मे सुरक्षित है।

गुप्तकालीन प्रसिद्ध मंदिर देवगढ़ झांसी (उ०प्र०) की भित्तियों पर रामायण कथा के पात्रों का सविस्तार दृश्यांकन प्राप्त होता है जिसमें राम-लक्ष्मण सीता को वन जाने, शापित अहिल्या का उद्धार करने, अत्रि के आश्रम में विश्राम करने, राम-लक्ष्मण को गुरु विश्वामित्र से धनुर्विद्या सीखने एवं सूपनखा की नाक को लक्ष्मण द्वारा काटने, लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव को माला पहनाने एवं बालि तथा सुग्रीव के युद्ध करने तथा रावण द्वारा सीता का अपहरण करने के दृश्यों को अलंकृत ढंग से उकेरा गया है। इन दृश्यांकनों से रामायण के अरण्यकाण्ड

की पुष्टि होती है। जो पुरातात्विक दृष्टि से सटीक है। गुप्तयुगीन की नचना (म०प्र०) से प्राप्त एक प्रतिमा के फलक पर लक्ष्मण द्वारा सूर्पनखा की नाक काटने, सुग्रीव-बालि का युद्ध एवं रावण द्वारा सीता के बलात् अपहृत किए जाने जैसे रामायण के दृश्यों का बखूबी चित्रांकन किया गया है। इस मूर्तिफलक में उकेरे गये चित्रों से रामाख्यानों की पुष्टि होती है। जिससे पता चलता है कि गुप्तकालीन लोकजीवन में रामायण का प्रचलन बखूबी हो चुका था।

गुप्तोत्तरकाल में रामकथा एवं राम की पूजा का सर्वत्र प्रसार हो चुका था। पूर्वमध्यकाल एवं मध्यकाल दोनों कालों के साहित्य एवं कलाकृतियों में रामकथा एवं उनके दृश्यांकनों का प्रचलन खूब हुआ। हिन्दू एवं जैन पुराणों में रामकथा को अत्यधिक मार्मिक ढंग से लिपिबद्ध किया गया है। भारत की विभिन्न प्रकार की भाषाओं में रामायण का अनुवाद किया गया। संस्कृत साहित्य में भी राम कथा का सविस्तार वर्णन किया गया एवं इन्हीं वर्णनों के अनुरूप मंदिरों में चित्रांकन भी किया गया। राम, लक्ष्मण, सीता एवं हनुमान की मूर्तियों को अलग-अलग एवं संयुक्त रूप से भी मूर्तिफलकों पर बखूबी अंकित किया गया।

बाल्मीकिकृत रामायण मे राम को पुरुषोत्तम के रूप में वर्णित किया गया है तथा बाद में बालकाण्ड एवं अन्य काण्डों में राम को विष्णु का अवतार माना जाने लगा। इन दोनों कथाओं को गुप्तकाल में एकीकृत करके मंदिरों में उकेरा गया। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रंथ ''रघुवंशम्'' में राम को दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार लेकर रावण के बध की कथा में राम को विष्णु का अवतार माना है–

''अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच।।''

नागपुर के पास स्थित रामगिरि एवं पौनार से प्राप्त एक प्रतिमा के फलक

पर रामकथा का दृश्यांकन मिलता है जिसे प्रो० वासुदेव विष्णु मिराशी[25] ने गुप्तकालीन वाकाटक नरेश प्रवरसेन की माँ भगवान राम की अनन्य भक्त थीं जिसका साक्ष्य उसके द्वारा मंदिरों को दिये जाने वाले अनुदान ताम्रपत्रों से मिलता है। इनमें से के दानपत्र भगवान राम के पैरों से समर्पित किया गया हैं। रामगिरि की पहचान आज रामटेक से की जाती है जो नागपुर जनपद (महा०) में है। गुप्तयुगीन ज्योतिषी एवं खगोलविद् वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता[26] में राम के प्रतिमा लक्षणों एवं तत्कालीन समाज में राम की पूजा परम्परा का सविस्तार वर्णन किया है।

एरण से चतुर्थ सदी ई० का समुद्रगुप्त का एक अभिलेख मिला है जिसमें राम को महान नायक बताया गया है।

''न्यककारिता नृपतयः पृथराघवाद्याः''

एलोरा (महाराष्ट्र) से आठवीं सदी के दशावतार एवं कैलास के मंदिरों की भित्तियों पर रामायण कथा के दृश्यों को उकेरा गया है। मंदिर के सभामण्डप की दक्षिणी दीवार पर राम, लक्ष्मण, सीता का अयोध्या छोड़कर वन की ओर प्रस्थान, चित्रकूट में राम एवं भरत का मिलाप, रावण द्वारा सीता को अपहृत किया जाना, जटायु द्वारा रावण से किया गया युद्ध, बालि एवं सुग्रीव द्वारा आपस में गदा युद्ध इत्यादि अनेक कथाओं का अंकन किया गया है। इसी तरह पहाड़पुर (बांग्लादेश) में स्थित एक मंदिर जो 8वीं सदी में निर्मित है कि भित्तियों पर रामकथा को चित्रांकित किया गया है। नालन्दा (बिहार) के एक मंदिर परिसर में भी राम कथा दृश्यांकनों को उकेरा गया है। उड़ीसा प्रान्त के भुवनेश्वर के

---

25. दृष्टव्य वासुदेव विष्णु मिरासी स्टडीज इन इण्डोनाजी जिल्द II पृष्ठ 276-277.

26. बृहत्संहिता, प्रतिमालक्षणाध्याय, श्लोक 30

''दशरथ तनयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतं विशम्।

द्वादशहान्या शेषाः प्रवर समन्यून परिमाणाः।।''

शत्रुयनेश्वर, स्वर्णजालेश्वर तथा चौरासी में स्थित वाराही, एवं कटक जनपद में स्थित सिंहनाथ मंदिरों में रामाख्यानों का दृश्यांकन किया गया है।

गुप्तोत्तर काल के मंदिरों में रामकथा के दृश्यों का मूर्तन बहुतायत मिलता है। चालुक्यकालीन ऐहोल के दुर्गामंदिर एवं पट्टदकल के विरुपाक्ष तथा पापनाथ मंदिरों में रामायण के दृश्यों को बहुत ही अलंकृत ढंग से उकेरा गया है।[27] विरुपाक्ष मंदिर की दीवार पर जटायु-रावण युद्ध, बालि-सुग्रीव युद्ध के अतिरिक्त राम से जुड़ी अन्य घटनाओं का मूर्तन भी चित्रित है। इसी प्रकार पापनाथ मंदिर की भित्ति पर राम के पिता महाराजा दशरथ के द्वारा पुत्र प्राप्ति हेतु यज्ञ करने के दृश्य से लेकर रावण के वध तक के दृश्यों का अलंकरण रुपायित किया गया है। यह दृश्यांकन 6-7वीं सदी के है जिनसे दक्षिण में रामोपासना की स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है।

मामल्लपुरम् (तमिलनाडु) में आदिवराह के गुहा मंदिर से प्राप्त एक अभिलेख में भगवान के दशावतार नामों में राम अवतार का उल्लेख प्राप्त होता है–

मत्स्यकूर्मोवराहश्च नरसिंहोऽथवामनः।

रामो रामाश्च रामश्च बुद्धो कल्किदश स्मृताः[28]।।

भगवान विष्णु के दस अवतारों में रामावतार का गुप्तकाल से ही लोकमानस में प्रचलन हो चुका था परन्तु राम (विष्णु अवतार) के स्वरूप की पूजा का विधिवत कार्य पूर्वमध्यकाल में ही व्यापक प्रसरित हुआ एवं राम की मूर्तियों का अंकन करके उनकी स्वतंत्र रूप से पूजा की जाने लगी। जो इस समय व्यापक रूप ग्रहण कर जनमानस पटल पर छा गई प्रसिद्ध जैनग्रन्थकार अमितमति

---

27. दृष्टव्य, सी, शिवराममूर्ति द रामायण इन इण्डियन स्कल्पचर द रामायण ट्रैडिशन इन एशिया न्यू देलही 1980 पृष्ठ 638-40

28. दृष्टव्य साउथ इण्डियन इनसक्रिपसन्स XII नं० 116

ने श्रीराम को सर्वज्ञ, सर्वव्यापी तथा समस्त लोकों के जीवों की रक्षा करने वाला बताया है। इससे पता चलता है कि राम एक लोकव्यापी विष्णु का अवतार माने जाने लगे और संसार का सर्वश्रेष्ठ पद पाकर लोगों के लिए वन्दनीय हो गए।

पल्लवकाल की कलाकृतियों में रामकथा का मूर्तन बहुतायत प्राप्त होता है। कुछ अलंकरण जैसे गंगावतरण एवं रावण द्वारा कैलास पर्वत उठाने, बालि द्वारा शिव पूजा करने इत्यादि दृश्यों का चित्रांकन अत्यन्त मनमोहक एवं आकर्षक है। चोलकाल में भी रामायण के अत्यन्त दृश्यों का चित्रांकन मिलता है। प्रारम्भिक चोल मंदिरों तथा नागेश्वर, अवनीश्वर, धर्मपुरी, पुल्लमंगई, पुज्जई, कुम्भकोणम्, कम्पहरेश्वर में रामायण की कथा से सम्बन्धित दृश्यों को उकेरा गया है। चोलकाल में श्रीराम तथा रामायण के अन्य कथानकों की कांस्य प्रतिमाएं बहुतायत में प्राप्त होती हैं। बदक्कुपयानुर से प्राप्त श्रीराम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान की बड़ी-बड़ी सुन्दर एवं चित्ताकर्षक कांस प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जो चेन्नई संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

होयसल राजाओं द्वारा बनवाये गए मंदिरों में रामायण कथा के दृश्यों का दृश्यांकन बहुत भव्यता से किया गया है– यहाँ के अनेक मंदिरों में जैसे बेलूर के चेन्नाकेशव मंदिर अमृतकुंड के अमृतेश्वर मंदिर, हलेबिड के होयलेश्वर मंदिर,लाकुण्डि के काशी विश्वेश्वर मंदिर जथवल के लक्ष्मी नारायण मंदिर, सोमनाथपुर के सोमनाथ मंदिर तथा बसराल के मल्लिकार्जुन मंदिरों में भी रामकथा का चित्रांकन प्राप्त होता है। इसी प्रकार रामाख्यान यथा राम, लक्ष्मण, सीता, एवं हनुमान आदि की बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण चन्देलों, गहड़वालों तथा प्रतिहार शासकों द्वारा कराया गया है। 7वीं-8वीं सदी की एक मूर्ति सतना के निकट प्राप्त हुई है जिसमें सीता, लक्ष्मण तथा राम को अंकित किया गया है। 9वीं सदी के प्रारम्भ में निर्मित एक विशालकाय हनुमान की मूर्ति खजुराहो (म०प्र०) से प्राप्त हुई है इस प्रतिमा के निचले भाग में 932 ई० का एक छोटा लेख भी अंकित है। हनुमान की यह प्रतिमा स्वतन्त्र रूप से निर्मित है। राम की

भी धनुर्धारी प्रकार की एक प्रतिमा स्वतन्त्र रूप से निर्मित है। राम की धनुर्धारी प्रकार की एक प्रतिमा शिरपुर (रायपुर) से प्राप्त हुई है इसमें राम को धनुष एवं तरकस के साथ उत्कीर्ण किया गया है। खजुराहो के अन्य मंदिरों जैसे पार्श्वनाथ मंदिर से परशुरम, राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान इत्यादि की मूर्तियों का अलंकृत किया जाना अपने आप में भव्यता लिए हुए तत्कालीन जनमानस में अपनी व्याप्ति का द्योतन भी करती हैं। खजुराहो से ही प्राप्त धनुर्धारी राम तथा उनके पार्श्व में खड़ी सीता की एक भव्य मूर्ति जो चन्देल कालीन है से राम की पूजा का सार्थक उदाहरण मिलता है। यह प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय म०प्र० में सुरक्षित है।

रामकथा का चित्रांकन भी गुप्तोत्तर काल में जोरों से हुआ। 8वीं सदी के एलोरा के कैलास मंदिर के बरामदे की छत पर रामायण की कथा के दृश्यों का चित्रांकन बड़ी भव्यता से किया गया है। सल्तनत काल में भी महलों की दीवारों पर चित्रांकन राम की पूजा का प्रमाण हैं। मुगलकाल में तो रामायण एवं महाभारत के अनुवाद के साथ-साथ उनकी कथाओं से सम्बन्धित अत्यधिक चित्रों को बनवाया गया। सम्राट अकबर के समय के चित्रों में 176 चित्र आज भी सवाईमान सिंह संग्रहालय जयपुर में सुरक्षित हैं। इसी तरह के बहुत चित्र जो रामायण कथा को लेकर बनाए गए हैं देश के अनेक संग्रहालयों में सुरक्षित है। राजस्थानी एवं पहाड़ी चित्रकला में भी रामकथा के तथा कृष्ण से सम्बन्धित चित्रांकन बहुलता में प्राप्त होता है। कुल्लू एवं मालवा से प्राप्त रामकथा के दृश्यों के बने चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली एवं भारत कला भवन संग्रहालय वाराणसी में सुरक्षित रखे हैं जिनका चित्रांकन भव्य तथा चित्ताकर्षक है।

12वीं-13वीं सदी की राम का सपरिवार अंकन, कांसप्रतिमाओं में प्राप्त होता है। ऐसी प्रतिमाएँ मद्रास प्रेसीडेन्सी के तिन्नवेल्ली में सुरक्षित हैं। इन कांसप्रतिमाओं में राम, लक्ष्मण, सीता एवं हनुमान की मूर्तियाँ अंकित की गई हैं। राम, लक्ष्मण, सीता की प्रतिमाएं त्रिभंग हैं। महाबलिपुरम के विष्णु मंदिर

से प्राप्त प्रथम या द्वितीय सदी की राम व हनुमान की प्रस्तर प्रतिमाओं का अलंकरण अपने आप में अनूठा है। इस मूर्ति में राम के हाथ में धनुष है तथा दायें कंधे पर तरकश लटकाया गया है एवं हनुमान को अंजलिबद्धमुद्रा में अंकित किया गया है।[29] त्रिवेन्द्रम से मिली हांथी दांत पर उकेरी गई राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता एवं हनुमान की प्रतिमाएँ बहुत सुन्दर एवं सौम्य हैं। इसमें श्रीराम के तीनों छोटे भाई (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) हांथ जोड़े हुए प्रदर्शित किए गए हैं। राम की भांति लक्ष्मण के हांथों में धनुषबाण है, सीता के दाहिने हांथ में कमल का फूल, भरत एवं शत्रुघ्न के शीर्षभाग पर चक्र एवं शंख अंकित है तथा हनुमान का बायां हांथ वक्षपर एवं दाहिना हांथ मुख के सामने निर्मित किया गया है।[30]

इस प्रकार राम की अनेक प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं। लोक में दृश्यमान राम की प्रतिमाओं को शिल्पशास्त्रीय ढंग से निर्मित किया गया है। शास्त्रकारों ने अपने शास्त्र के द्वारा एवं शिल्पकारों ने अपनी कला कौशल के माध्यम से आदर्श राम को साकार करने में सक्षम रहे हैं।

---

29. राव गोपीनाथ एलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी खण्ड 1 भाग 1 पृष्ठ 194.

30. वही पृष्ठ 194-95

अध्याय 9

बलराम– कृष्ण अवतार

पुराणों में बलराम एवं कृष्ण दोनों को बिष्णु का अवतार वताया गया है। बिष्णु पुराण में बलराम और कृष्ण दोनों को बिष्णु का अंशावतार कहा गया है।[1]

अन्यत्र कृष्ण को बिष्णु का स्पष्ट रूप से अंशावतार कहा गया है।[2]

ऐसा लगता है कि परवर्ती पुराणों के समय में अर्थात् ई० सन् की छठी शताब्दी के बाद कृष्ण को बिष्णु का पूर्णावतार माना जाने लगा। भागवत पुराण में कृष्ण को बिष्णु का पूर्णावतार बताया गया है। भगवदगीता में अर्जुन वासुदेव कृष्ण को बिष्णु कहकर सम्बोधित करते हैं। भगवद्गीता की रचना तिथि पर बहुत विवाद है अधिकांश विद्वान इसे महाभारत के 18वें अध्याय के रूप में स्वीकार करते हैं। लेकिन बिष्णु के पूर्णावतार के सम्बन्ध में श्री कृष्ण का यह नाम भागवत पुराण में वर्णित परम्परा का पूर्ववर्ती स्त्रोत स्वीकार किया जा सकता है। पद्म पुराण में इस बात का उल्लेख मिलता है। कि बिष्णु अपना 8वां अवतार आहीरों के बीच लेंगें।[3]

इससे भी स्पष्ट होता है कि कृष्ण बिष्णु के अंशावतार थे। बिष्णु, ब्रह्मवैवर्त, हरिवंश तथा भागवत आदि पुराणों में बलराम एवं श्रीकृष्ण की

---

1. विष्णु पुराण– 5.1.60 एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः।
   उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने।।
2. वही– 5.1.2 ''अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः।
   विष्णोस्तं विस्तरेणाहं श्रोतुमिच्छामितत्वतः।।''
3. पद्म पुराण खण्ड 3 5.17.1–19

उत्पत्ति की कथा मिलती है। इनमें यह आख्यात मिलता है कि देवकी के सातवें गर्भ में बलराम ने जब प्रवेश किया तब कृष्ण ने योगमाया को प्रेरित करके देवकी के उदर से उस गर्भ को खींच कर रोहिणी के उदर में स्थापित करवा दिया था। देवकी के उदर में स्थापित गर्भ के खीचें जाने के कारण बलराम को संकर्षण के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।[4]

देवकी के 8वें गर्भ से स्वयं बिष्णु ने अवतार ग्रहण किया जो कृष्ण के नाम से विश्वविख्यात है। भागवत् एवं अन्यपुराणों में बलराम एवं कृष्ण दोनों को सृष्टि का रक्षक कहा गया है। भागवद् पुराण[5] में प्रदत्त बिष्णु के अवतारों की प्रथम सूची दसम स्कन्ध में मिलती है। कालान्तर में कृष्ण को साक्षात् बिष्णु का पूर्णावतार मान लिया गया तथा बलराम को उनके आठवें अवतार के रूप में परिग्रहीत कर लिया गया।[6]

एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत।।''

बिष्णु पुराण के अनुसार योगमाया ने बिष्णु के काले केश को देवकी के गर्भ में स्थापित किया था उसी से कृष्ण का जन्म हुआ था।[7]

(केशौसित कृष्णौ तत्रायमष्टमोगर्भो मत्केशोभवितारासुराः)। कृष्ण के जीवन की अनेक कथायें प्राचीन भारतीय वाङ्मय में आख्यात मिलती हैं जिनमें

---

4. भागवतपुराण– 10.2.13– ''गर्भसंकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि।
   रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छयात।।''

5. वही 10.1.8– रोहिन्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया।
   देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं बिना।।

6. वही 10.1.14 ''यानमास्थाय जह्येतद् व्यसनात स्थान समुद्धर
   एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत।।''

7. बिष्णुपुराण 5.1.63

उनका विलक्षण जन्म बालकृष्ण रूप, गोपालरूप, बालमुकुन्द रूप, वेणुगोपाल रूप, कालीय मर्दन रूप, गोवर्धन रूप, पार्थसारथी रूप, रुक्मिणी हरण रूप, युद्ध वेशधारी रूप, योगीश्वर कृष्ण रूप, विराट विश्वरूप तथा समाधिष्ठ रूप आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

भारतीय कलांकनों में कृष्ण के इन रूपों को कुषाणकाल से लेकर अद्यतन रुपायित करने की परम्परा देखी जा सकती है। बादामी त्रिपुरी, पहाड़पुर तथा खजुराहो के मंदिरों की भित्तियों पर कृष्णाख्यानों के कलाकारों ने शिल्पांकित किया है। इसी प्रकार कृष्णाख्यानों का प्रतिमा रूप में अंकन ओशिया[8] केकीन्द[9] (प्राचीन किष्किन्धा, कर्नाटक) तथा अटस[10] आदि शिल्पों में कृष्ण की लीलाओं को बहुत कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है।

दशावतार पट्टों पर प्रायः कृष्ण की प्रतिमा का रूपायन नहीं किया गया है। उन पर बलराम का अंकन मिलता है। इतना ही नहीं बिष्णु मूर्तियों की प्रभावलियों में अंकित वैष्णव अवतारों में भी बलराम का ही अंकन किया गया है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्यकालीन दशावतार परिकल्पन में कृष्ण के स्थान पर बलराम को ही परिगणित किया जाने लगा था। कृष्ण 16 अंशों से युक्त बिष्णु के पूर्णावतार थे। जिसका स्पष्ट उल्लेख भागवत् पुराण में किया गया है।[11]

परन्तु मध्यकालीन कम से कम तीन ऐसी प्रतिमाएं उपलब्ध है जिसमें बिष्णु के अवतार रूपों में बलराम के स्थान पर कृष्ण की प्रतिमा को उत्कीर्णित

8. दृष्टव्य इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली

9. वही पृष्ठ 348

10. दृष्टव्य मरुभारती वर्ष 8 अंक 1 पृष्ठ 68

11. श्रीमद्भागवत– 12.9.6 अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोक शिखामणे।

दृक्ष्ये मायां यमा लोकः स पालो वेद सद्भिरदासः।।

किया गया है। इस प्रकार की एक मूर्ति सम्प्रति अलवर्ट संग्रहालय जयपुर में सुरक्षित है। कृष्ण की एक छोटी प्रतिमा भगवान बिष्णु की बड़ी प्रतिमा के दायीं ओर अधःभाग में अन्य अवतारों के साथ अंकित की गयी है।[12]

दूसरी प्रतिमा राजकीय संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है इसमें बिष्णु की प्रतिमा के निचले भाग में बायीं ओर बुद्धावतार से पहले अंकित की गयी है। इस मूर्तिफलक पर कृष्ण को चतुर्भुज तथा किंचित द्विभृंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। उनके हाथों में क्रमशः गदा, पद्म, शंख तथा चक्र आयुध तथा सिर पर किरीट मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में वनमाला एवं घर आदि अंकित किए गए हैं। राजकीय संग्रहालय लखनऊ में यज्ञवराह की प्रतिमा सुरक्षित मिलती है। जिसमे दाशरथिराम एवं बुद्ध के बीच में यज्ञवराह की पीठ पर कृष्णावतार मूर्ति का भी अंकन किया गया है। इसमें चतुर्भुज कृष्ण को किरीट मुकुट युक्त सुखासन मुद्रा में विराजमान दर्शाया गया है। उनका नीचे का दाहिना हांथ अभयमुद्रा में तथा शेष तीन हांथों में क्रमशः गदा, चक्र एवं शंख, निर्मित किए गए हैं।

पुराणों की परम्परा का बहुत कुछ अनुमोदन प्राचीन भारतीय शिल्पग्रन्थ भी करते हैं। 12वीं सदी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अपराजित पृच्छा में कृष्ण को बिष्णु का 8वां अवतार कहा गया है।[13]

इसमें कृष्ण के साथ-साथ 8वें अवतार के रूप में बलराम का भी नामोल्लेख किया गया है।[14]

परन्तु रूपमंडन में बिष्णु के 8वें अवतार के रूप में बलराम का उल्लेख

---

12. दृष्टव्य इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली वाल्यूम 30 न० 4 पृष्ठ 342–343
13. अपराजितपृच्छा 28.18
14. दृष्टव्य वही 28.19

किया गया है इसमें कृष्ण की चर्चा नहीं की गयी है।[15]

अपराजितपृच्छा में कृष्ण एवं बलराम दोनों के प्रतिमालक्षणों का उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु रूपमंडन में बलराम के प्रतिमा लक्षणों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इसमें कहा गया है कि बलराम की प्रतिमा को हल और मूसल आयुधों के साथ अंकित किया जाना चाहिए (सः सीर मुसलो बलः) अर्थात् बलराम की प्रतिमा द्विभुजी बनाना चाहिए।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में आख्यात है कि बलराम की प्रतिमा को दो भुजाओं से युक्त श्वेतवर्ण नीलेवस्त्र से युक्त, कुण्डलयुक्त, भुजाओं में हलमूसल धारण किए हुए मदोन्मत्त आंखों से युक्त निर्मित करना चाहिए।[16] बिष्णु धर्मोत्तर, पुराण, अग्निपुराण[17] तथा रूपमंडन आदि शास्त्रों में बलराम की प्रतिमानिर्माण का विशद् वर्णन किया गया है। अग्नि पुराण में बलराम को चतुर्भुज रूप में अंकित करने का विधान दिया गया है। उनके ऊपर के बायें हांथ में लांगल (हल) तथा निचले हांथ में शंख, दाहिने ऊपरी हांथ में मूसल तथा निचले हांथ में चक्र बनाए जाने का विधान दिया गया है। इस पुराण में राम एवं बुद्ध के बीच का अवतार बलराम का बताया गया है।[18] इसमें कृष्ण का नामोल्लेख नहीं किया गया है।

15. रूपमंडन– 3.27 रामः शरेषुधृक् श्यामः सशीरमुशलो बलः बद्धपद्मासनो (बुद्धः पद्मासनो)

    रक्तस्यक्ताभरणमूर्धजः।।

16. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3.85.72–73 कटिस्थवामहस्ता सामध्यस्थां रामकृष्णयोः।

    सीरपाणिर्बलः कार्यो मुसली चैव कुण्डली।।

    श्वेतोऽतिनीलवसनो मदादञ्चितलोचनः।

    कृष्णश्चचक्रधरः कार्यो नीलोत्पलदलच्छविः।।

17. अग्निपुराण 15.5

18. वही 49.6–7

प्राचीन भारतीय शिल्पांकनों में बलराम की प्रतिमा का अंकन शुंगकाल (ईसापूर्व प्रथम सदी) से प्राप्त होने लगता है। जो अवान्तर युगों में क्रमशः शिल्पांकित होता रहा। राजकीय संग्रहालय लखनऊ में बलराम की एक प्रतिमा सुरक्षित है जिसे अधिकांश कलाविद ईसा पूर्व प्रथम सदी में निर्मित मानते हैं। इसमें बलराम को सर्पफणों के घटाटोक के नीचे खड़ा दिखाया गया है। उनके दाहिने हांथ में 'मूसल तथा बायें हांथ में हल निर्मित है। उनका बांया पैर बिल्कुल सीधा एवं दायां पैर किंचित मुड़ा हुआ प्राप्त हुआ है।[19]

सर्पफणों से युक्त हलधर एवं मुसलधारी बलराम की एक शुंगकालीन प्रतिमा भारत कला भवन वाराणसी में भी सुरक्षित है। दुर्भाग्यवश अब उसका शीर्षभाग ही अवशिष्ट रह गया है।[20]

सर्पफणों के नीचे अंकित बलराम की एक प्रतिमा तुमयन से प्राप्त हुई है इसमें देवता को द्विभुजी तथा हल-मूसलधारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है। चित्तौड़गढ़ के विजय स्तम्भ की 7वीं मंजिल में मूर्तित बलराम की एक प्रतिभा अभिलेख युक्त प्राप्त हुई है इस पर 'बलदेवः' लेख उत्कीर्ण है। 15वीं सदी की यह प्रतिमा समकालीन शिल्पग्रन्थ के वर्णन से पूर्णतः मेलखाती है। द्विभ्रंग मुद्रा में खड़े बलराम के दोनों हाथों में क्रमशः हल एवं मूसल आयुध हैं तथा उन्हें किरीट मुकुट, कुण्डल, हार, बनमाला, श्रीवत्स, केयूर, कंकण, मेखला, तथा पादकटकों से विभूषित किया गया है।

बिष्णु के दशावतार पट्टों पर द्विभुजी बलराम की मूर्तियाँ प्रायः अंकित मिलती हैं। इन शिलापट्टों पर अंकित बलराम के दायें हांथ में प्रायः वारुणी पात्र तथा बायें हांथ में हल निर्मित किया गया है।[21] ज्ञातव्य है कि हल चशक

---

19. दृष्टव्य देसाई कल्पना यश आइकोनोग्राफी आफ बिष्णु पृष्ठ 135 चित्रफलक 198

20. वही पृष्ठ 135

21. दृष्टव्य इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली वाल्यूम 30, नं० 4 पृष्ठ 342-43

धारी बलराम की मूर्तियों की परम्परा कुषाणकाल से प्रारम्भ हुई थी जिसके कुछ उदाहरण मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है।[22] गुप्तकाल के उपरान्त बलराम को जब चतुर्भुज रूप में दर्शाया जाने लगा तब भी उनका एक हांथ चषक धारण किये हुए ही निर्मित किया जाने लगा।[23] बलराम की चतुर्भुजी मूर्तियों में जहाँ एक हांथ चषक पात्र लिए हुए अंकित करने की परम्परा मिलती है। वहीं दूसरे हांथ को कट्टयावलम्बित रूपायित करने की परम्परा विकसित की गई थी। उनके शेष दोनों हांथों में शिल्पग्रन्थों में वर्णित परम्परानुसार हल एवं मूसल धारण कराए जाने का यथावत वर्णन मिलता है। खजुराहो से चषकधारी चतुर्भुज बलराम की एक मूर्ति जिसमें उन्हें रेवती के साथ आलिंगन मुद्रा में निर्मित किया गया है। मध्ययुगीन बलरामावतार का उत्तम उदाहरण माना जा सकता है।[24] चषकधारी चतुर्भुज बलराम की प्रतिमाएं राजकीय संग्रहालय मथुरा तथा केन्द्रीय संग्रहालय मथुरा में भी सुरक्षित हैं।

---

22. दृष्टव्य अग्रवाल वासुदेव शरण जर्नल आफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसायटी ओल्ड-सीरीज वाल्यूम 42 पृष्ठ124, 200 चित्रफलक, 1

23. दृष्टव्य देसाई कल्पनायश आइकोनोग्राफी आफ विष्णु पृष्ठ 135

24. अवस्थी रामाश्रय खजुराहो की देवप्रतिमाएं पृष्ठ 124–25 चित्र 154

अध्याय 10

बुद्ध अवतार

बुद्ध एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व के रूप में बहुत विख्यात हैं पालिग्रन्थों में तथा हीनयान सम्प्रदाय में बुद्ध का वैयक्तिक जीवन एवं उनकी शिक्षाएँ आदर्श के रूप में मनोनीत हैं उनके द्वारा उपदिष्ट अष्टांगिक मार्ग अर्हत जैसी समुन्नत दशा में पहुँचाना बताया गया है। ईसा की प्रथम सदी में चतुर्थ बौद्धसंगीति के माध्यम से महायान बौद्ध धर्म प्रकाश में आया है। महायान धर्म के अनुयायी बौद्धों ने गौतम बुद्ध को देवता के रूप में उनकी मूर्ति बनाकर पूजना आरम्भ किया। गौतम बुद्ध जब तक जीवित रहे उन्होंने अपनी मूर्ति बनाने तथा उसकी पूजा करने का विरोध किया था किन्तु ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में उन्हें अतिमानवीय तथा देवता के रूप में पूजने एवं मूर्ति बनाने की परम्परा बहुत तेजी से प्रचलित हुई। इस प्रकार महायान बौद्ध धर्म के अनुयायियों की मान्यता में बुद्ध तुषित स्वर्ग के निवासी तथा लोकोत्तर बुद्ध के रूप में मान्य हो गए। धीरे-धीरे गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल में गौतम बुद्ध का मानव रूप क्रमशः तिरोहित हो गया तथा उनका लोकोत्तर स्वरूप जनमानस में सम्पूज्य हो गया। यह तो बौद्ध धर्म के अवतार का प्राथमिक स्वरूप रहा है। ईसा की 9वीं 10वीं सदी में ब्राह्मण वैदिक एवं पौराणिक धर्मावलम्बियों ने भी बुद्ध को लोकोत्तर देवता मानते हुए उन्हें विष्णु के नवें अवतार के रूप में प्रतिष्ठित करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि 9-10वीं सदी में बुद्ध को विष्णु के अवतार में परिगणित पाते हैं परन्तु इस तरह की धारणा कब और किन परिस्थितियों में ब्राह्मण वैदिक एवं पौराणिक धर्म में आई यह एक विचारणीय विषय है। बौद्ध धर्म के अभ्युदय तथा उसकी विकास यात्रा का ऐतिहासिक सर्वेक्षण करने से ज्ञात होता है कि इसे मौर्य नरेश अशोक ने तथा कुषाण नरेश कनिष्क ने राजाश्रय प्रदान करके व्यापक प्रचार-प्रसार एवं राजकीय प्रश्रय प्रदान किया था। ईसा पूर्व तृतीय सदी

में अशोक महान के अनुरक्षण में यह मध्य एशिया तथा दक्षिण पूर्व एशिया में श्रीलंका में अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की थी। भारतीय समाज में भी बौद्धधर्म में व्याप्त करुणा, अहिंसा एवं दया जैसे उदात्त भावनाओं से प्रभावित होकर इसे भारी संख्या में धर्म के रूप में स्वीकार किया था। कनिष्क प्रथम ने ईसा की प्रथम सदी में स्वयं बौद्ध धर्म स्वीकार करके तथा बौद्ध धर्म के अन्दर लोकोत्तर बौद्ध की स्थापना करवा करके इस धर्म के प्रचार-प्रसार को बहुत गतिशील बना दिया था। उसके प्रयास से यह धर्म बर्मा, मध्य एशिया, तिब्बत तथा चीन देश तक लोकप्रिय धर्म बन गया था। गुप्त नरेशों के शासनकाल में उनकी धार्मिक नीति की सहिष्णुता के चलते सभी धर्मों का निरावरोध विकास हुआ जिसमें बौद्धधर्म विशेष रूप से विकसित हुआ इस काल में निर्मित बहुसंख्यक विहार, चैत्यग्रह, स्तूप तथा बुद्ध एवं बोधिसत्व मूर्तियां आदि साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

पुराण जिनकी दृष्टि एक ओर वैदिक मान्यताओं पर रहती थी तथा दूसरी दृष्टि लोकजीवन एवं उनकी मान्यताओं को भी महत्व देती थी में बौद्धधर्म की व्यापक लोकप्रियता को तथा उनमें श्रद्धा रखने वाली तत्युगीन भारतीय जनता को वैदिक पौराणिक धर्म में पुनर्दीक्षित एवं समाहित करने के लिए विष्णु के अवतारों में बुद्ध को भी एक अवतार के रूप में स्वीकार कर लिया। किसी समय वैदिक धर्म में हिंसा के विरोध में समद्भूत बौद्धधर्म प्रारम्भिक मध्यकाल तक आते-आते बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका था अन्य धर्मों की भाँति इस धर्म में भी अनेक तरह के दोष आने लगे थे तथा लोग धीरे-धीरे बौद्धधर्म से हटकर वैदिक पौराणिक धर्म के प्रति आकृष्ट होने लगे थे। यूँ तो पौराणिक देवताओं में ब्रह्मा विष्णु एवं महेश अर्थात् त्रिदेवों को मान्यता प्रदान की है फिर भी इनमें विष्णु गुप्तोत्तर युग तक आते-आते प्रधानतम् देवता के रूप में मनोनीत हो चुके थे। वैष्णव धर्म की बढ़ती लोकप्रियता तथा जनता का उसके प्रति अधिकाधिक आग्रह ने एक ऐसी स्थिति प्रस्तुत की होगी। जिसके चलते पुराणकारों ने बिष्णु

के दशावतार में बुद्ध को उनके एक अवतार के रूप में ग्रहण कर लिया।

जैमिनिसूत्र[1] पर तन्त्रवार्तिक लिखने वाले महान मीमांसाचार्य कुमारिल भट्ट ने बौद्ध धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों का बहुत तर्कपूर्ण खण्डन किया है। इसी प्रकार आदि शंकराचार्य ने भी अपने शास्त्र दिग्विजय अभियान में बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रबल खण्डन किया था। पारिणामस्वरूप बौद्धधर्म के अधिकांश भिक्षु एवं आचार्य उपयुक्त आचार्यों के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन एवं तर्कवादों के सामने टिक न सके एवं धीरे-धीरे अपने मूल भारतीय स्थान को छोड़कर तिब्बत आदि भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में जाकर आश्रय ग्रहण कर लिए। इस प्रकार बौद्ध धर्मावलम्बियों में अधिकांश जनसंख्या बैष्णव धर्म के प्रति अधिक आकृष्ट हो चुकी थी तथा पुराणकारों ने बुद्ध को बिष्णु का ही एक रूप मानकर नवें अवतार के रूप में मान्यता प्रदान कर दी थी। संभवतः बुद्ध को अवतार के रूप में परिगणन ईसा की सातवीं सदी के अंतिम दशकों में अथवा आठवीं सदी के प्रारम्भिक चरण में हो चुका था क्योंकि तमिलनाडु में महाबलिपुरम् रथमंदिर पर एक शिलालेख[2] प्राप्त होता है जिसमें बिष्णु के अवतारों में बुद्ध को भी परिगणित किया गया है। इसी प्रकार म०प्र० के सीरपुर नामक स्थान से आठवीं सदी के लगभग निर्मित एक बैष्णव मंदिर में एक दशावतार पट्ट पर राम की मूर्ति के पास ही बुद्ध की भी ध्यानावस्थित

---

1. तंत्रवार्तिक (जैमिनिसूत्र) 1.3.7 स्मर्यन्ते च पुराणेषु धर्म विप्लुति होतवः कलौ
   शाक्यादयस्तेषां को वाक्यं श्रोतुमर्हति।

2. महाबलिपुरम् में निर्मित रथमंदिर से प्राप्त अभिलेख– ''हस्य नारसिंहश्च वामनः।
   रामो रामस्य (श्च) रामस्य (श्च) बुद्धः कल्कीति ते दश।।''
   ''ध्यातव्य है। कि यही श्लोक महाभारत शान्तिपर्व अ० 348 में भी प्राप्त होता है।''

मूर्ति निर्मित की गई है।[3] इसी प्रकार पढौली (म०प्र० मुरैना) शिवमंदिर के दशावतार पट्ट पर बुद्ध को ध्यानस्थ किन्तु स्थानक मुद्रा में स्थापित किया गया है।

सुप्रसिद्ध महाकवि क्षेमेन्द्र ने ''दशावतार'' (1060 ई० के लगभग) महाकाव्य में बुद्ध को बिष्णु का नवाँ अवतार स्वीकार किया है। इस प्रकार नवीं सदी ई० तक अथवा दसवीं सदी के पूर्वार्द्ध काल में बिष्णु के अवतारों में बुद्ध को परिगणित किया जाने लगा था।

प्रारम्भिक पुराणों में अग्रणी बिष्णुपुराण में बुद्ध की उत्पत्ति के विषय में एक महत्वपूर्ण उल्लेख मिलता है। इसमें विवृत है कि एक बार पाराशर ऋषि ने मैत्रेय से यह प्रश्न किया कि किस प्रकार के आचरण वाले व्यक्ति को नग्न कहा जाता है।[4] इस प्रश्न का उत्तर देते हुए पराशर जी ने कहा ऋक्, साम और यजु ये वेदत्रयी हैं जो वर्णों के आवरण स्वरूप हैं। जो व्यक्ति मोहवश इसका त्याग कर देता है। वही पाप आत्मा 'नग्न' कहलाता है।[5] उक्त पुराण में ही अन्यत्र कहा गया है कि बुद्ध की उत्पत्ति के विषय में वशिष्ठ ने भीष्म को बताया कि एक बार देवों एवं असुरों में युद्ध छिड़ गया यह युद्ध सैकड़ों वर्षों तक चला

3. द्रष्टव्य शास्त्रीयच कृष्ण मेमोआयर न० 26 आर्कलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया पृष्ठ 5

4. बिष्णु पुराण– 3.17.4 को नग्नः किंसमाचारो नग्नसंज्ञां नरे लभते
नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावत्कथितं त्वया
श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ न ह्यस्त्यविदितं तव।।

5. वही– 3.17.5-6 ऋग्यजुस्सामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज।
एताभुज्झति यो मोहात्स नग्नः पातकी द्विजः।।
त्रयी समस्तवर्णानां द्विज संवरणं यतः।
नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः।।

जिसमें असुरों ने देवताओं को पराजित कर दिया तत्पश्चात् पराजित देवताओं ने भगवान बिष्णु की आराधना की। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर बिष्णु ने अपने शरीर से माया मोह को उत्पन्न करके देवताओं को दिया और कहा कि बुद्ध के रूप में अवतार ग्रहण करके असुरों को ऋग, साम एवं यजुर्वेद (वेदत्रयी) से मोहित करके उनको भ्रष्ट आचरण करने वाला बनाऊँगा।[6]

बुद्धावतार ग्रहण करने के पश्चात बिष्णु ने अपना शरीर दिगम्बर, मयूरपिच्छधारी, मुण्डित केश वाले मायामोह के स्वरूप को धारण कर[7] नर्मदा नदी के तट पर जहाँ असुर तपस्या कर रहे थे पहुँच कर उनसे उनकी तपस्या करने का कारण पूछा। और इन असुरों को अनेक प्रकार के नास्तिक वचनों से वैदिक धर्म के अनुसरण से रोक दिया। माया मोह ने उसी समय एक नया धर्म 'अर्हत' को स्थापित करके उसके अनुसार आचरण करने के लिए कहा ऐसे धर्म के अनुगामियों को 'आर्हत' कहा जाने लगा[8] यही बुद्धधर्म के नाम से प्रसिद्ध है। मायामोह ने बुद्धधर्म के मार्ग पर चलने के लिए असुरों को प्रोत्साहित करते हुए कहा कि इस धर्म को जानो और समझो तथा इसी धर्मानुसार आचरण करो क्योंकि यही धर्म श्रेष्ठ है। इस तरह के उपदेश देकर मायामोह (बिष्णु) ने असुरों को वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड स्वरूप को नष्ट कर दिया जिससे देवों ने शीघ्र

---

6. वही– 1.17.41-42 समुत्पद्यदयौविष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान्।
   मायामोहोप्यमखिलान्दैत्यां स्तान्मोहयिष्यति।।
7. वही– 3.18.2 - ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपिच्छधरो द्विज
   मायामोहोऽसुरान श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत।।
8. वही– 3.18.12 - अर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेनतेयतः
   प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन ते भवन्।।

ही असुरों को पराजित कर दिया।[9] बिष्णु पुराण बौद्धधर्म की घोर निन्दा करते हुए इसे असुरधर्म कहा है।

बिष्णु के अवतारों में बुद्धावतार का स्पष्ट एवं निश्चित निर्देश महाभारत की प्रमाणिक पांडुलिपियों में नहीं मिलता है परन्तु कुछ पांडुलिपियों में दशावतारों में बुद्ध को भी परिगणित किया गया है। महाभारत शान्ति पर्व के 348वें श्लोक में बिष्णु के अन्य अवतारों में बुद्ध की भी गणना की गई है–

''मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।

रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्कीति ते दश।।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शान्तिपर्व के उक्त श्लोक के अंतिम चरण का पाठ भिन्न-भिन्न हस्तलिपियों में भिन्न-भिन्न मिलता है यथा बुद्धः के स्थान पर कृष्णः पाठ अथवा बुद्ध के स्थान पर हंस का पाठ[10] –

हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भाव द्विजोत्तम।

वराहो नरसिंहश्य वामनो गम एव च।

रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च।।

आचार्य बलदेव उपाध्याय एवं कतिपय अन्य विद्वान महाभारत में प्राप्त बुद्ध के पाठान्तरों के आलोक में यह विचार व्यक्त किया है कि महाभारत काल में बिष्णु के अवतारों में सम्भवतः बुद्ध को परिगणित नहीं किया गया था। उपाध्याय जी का विचार यौक्तिक प्रतीत होता है। अधिकांश पुराणों में बुद्ध को

---

9. वही– 3.18.17 - एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन्

मायामोहः सदैतेयान्धर्ममत्याजयन्निजम्।।

10. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 248 श्लोक 55

विष्णु का अवतार स्वीकार किया गया है भागवत[11] अग्नि पुराण [12] विष्णु पुराण[13] स्कन्द पुराण[14] तथा भविष्य पुराण[15] तथा बिष्णु धर्मोत्तर पुराण[16] आदि में किया गया है। बुद्धावतार से सम्बन्धित प्रतिमा लक्षण वरामिहिर कृत वृहत्संहिता (58.44) हयशीर्ष संहिता(30-34-36) तथा अपराजितपृच्छा (29.1-3) में वर्णित मिलता है। अपराजितपृच्छा में कहा गया है कि भगवान बिष्णु ने मनुष्यों को मोहित कर वैष्णव धर्म में समाहित इतर तत्वों को पृथक् करने के लिए कपिलवस्तु में शुद्धोधन के पुत्र के रूप में अवतार लिया था[17] इस ग्रन्थ में बुद्ध की प्रतिमा निर्माण के सन्दर्भ में निर्देश किया गया है। कि बुद्ध को केशरहित तथा कषायवस्त्रधारी निर्मित करना चाहिए।[18] रूपमंडन में उनको केश तथा आभूपणों से रहित ध्यानस्थ दो भुजाओं से युक्त तथा लाल कमल के आसन पर आसीन मूर्तित करने का विधान दिया गया है।[19] इस प्रकार बुद्ध को ध्यानमुद्रा तथा दो भुजाओं में अंकित करने में अधिकांश शिल्पकारों को अभीष्ट था। इस रूप में बुद्ध को मध्यकाल में प्रायशः अंकित किया गया है। खजुराहो

11. भागवत 2.7.37, 6.8.19, 11.4.23, 10.40.22 आदि
12. अग्नि पुराण 49.8
13. विष्णुपुराण 3.18.2
14. स्कन्द पुराण 29.27, 25–26
15. भविष्य पुराण 4.12, 26–29
16. विष्णु धर्मोत्तरपुराण 3. 85–81
17. दृष्टव्य अपराजित पृच्छा 29.1 –3
18. वही– 29.2
19. रूपमंडन– 3.27–28 बद्धः पद्मासनो (बुद्धः पद्मासनो) रक्तस्त्यक्ताभरणमूर्धजः।।

कषायवस्त्रो ध्यानस्थो द्विभुजोऽङ्कोर्ध्वपाणिकः

में इस तरह की प्रतिमा का उल्लेख प्रो० रामाश्रय अवस्थी ने किया है।

उक्त पुराण में बुद्ध को रक्तवस्त्र पहने हुए दिगम्बर मुण्डित केश वाला कहा गया है। ध्यातब्य है कि अन्य पुराणों एवं ग्रन्थों में भी बुद्ध को इसी तरह का रूप धारण वाला बताया गया है। कुछ पुराण बुद्ध को बिष्णु के दशावतार का ही एक रूप बताते हैं तथा कुछ पुराण इसे बिष्णु के अवतार परिकल्पन में नहीं रखते हैं।

बुद्ध को प्रसन्नचित्त मुद्रा में पद्मासन में बैठे हुए बृहत्संहिता में संक्षेप में वर्णित किया गया है[20] पुराणों में अन्यत्र अग्निपुराण में वर्णित है कि बुद्ध गौराङ्ग, शान्तआत्मा, पद्म पर विराजमान, लम्बे कान वाले श्वेत वस्त्रधारी तथा उनका एक हाथ अभयमुद्रा एवं एक हाथ वरद मुद्रा में रहता है।[21] पुराणों से इतर बिष्णु धर्मोत्तर पुराण में बुद्ध के स्वरूप को अधिक स्पष्ट एवं स्वाभाविक रूप में वर्णित किया गया है। उक्त पुराण में कहा गया है कि बुद्ध पद्मासन लगाए हुए, कन्धों पर वत्कल वस्त्र धारण किये हुए, कषाय वस्त्रधारी, दो भुजाओं वाले, उनके हाथ अभय एवं वरद मुद्रा में होने चाहिए तथा ऐसे ही रूप में उन्हें अंकित किया जाना चाहिए।[22]

विष्णु के दशावतारों में बुद्ध को बिष्णु की प्रभावली में उनके पीछे अंकित करने का विधान है। इस अवतार में बिष्णु को ध्यानमग्न मुद्रा में चित्रित

20. बृहत्संहिता अ० 56.36 –पद्मांङ्कितकरचरणः प्रशन्नमूर्तिस्सुन्नीचकेशश्च

पदमासनोपविष्टः पितेव जगतो भवेद बुद्धः।।

21. अग्निपुराण 49.9– शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गचाम्वरावृतः।

ऊर्ध्वपदमस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः।।

22. विष्णु धर्मोत्तर पुराण– 85.81– कषायवस्त्रसंवीतस्स्कन्धसंसक्तचीवरः।

पद्मासनस्थो द्विभुजोध्यायी बुद्धः प्रकीर्तितः।।

किए जाने का उल्लेख ग्रन्थों में दिया गया है। गोपीनाथ राव के अनुसार बुद्ध को ध्यानमग्न मुद्रा में पद्मासन में बैठे हुए, दोनों हथेली एक दूसरे के ऊपर अपनी गोद में रखे हुए के रूप में वर्णित किया जाना चाहिए।[23] डा० आनन्द के० कुमार स्वामी के अनुसार जावा के बोरोबुदुर मंदिर में स्थित एक ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा अंकित की गई है इसमें बुद्ध को योगासन में स्थित दोनों नेत्रों को ध्यानस्थ (अर्थात बन्द किए हुए) मुख पर परम सौम्य एवं शान्त के साथ तथा दोनों हाथ को गोद में एक दूसरे पर रखे दर्शाया गया है।[24]

शिल्पांकनों में बिष्णु के बुद्धावतार की एक विशेष उल्लेखनीय प्रतिमा चित्तौड़गढ़ के विजय स्तम्भ की सातवीं मंजिल में लगे एक दशावतार पट्ट पर अंकित मिलती है यह लेखयुक्त प्रतिमा है। मूर्तिफलक के ऊपरी भाग पर ''श्रीबुधरूप'' अभिलेख अंकित है।

यह मूर्ति चतुर्भुजी है जिसमें पद्मासन पर बैठे ध्यानमुद्रा में बुद्ध को रूपायित किया गया है। ऊपर के दोनों हाथों में क्रमशः गदा एवं चक्र है। तथा नीचे के दोनों हाथ जिनकी हथेलियाँ ऊपर हैं योगमुद्रा में सामने निर्मित किए गए हैं बुद्ध को बिष्णु की तरह किरीट मुकुट, कुण्डल, हार, श्रीवस्त्र, केयूर, कंकण, मेखला, पादकटक तथा पादिमुद्रिका आदि के साथ उकेरा गया है। इस मूर्ति की सबसे बड़ी विशेषता सघन आभूषण तथा जटामुकुट का अंकन माना जा सकता है। जो रूपमंडन आदि शिल्पग्रन्थों से इतर अंकित प्रतीत होता है। मूर्तिकला में अंकित योगासन बिष्णु की प्रतिमा से यह मूर्ति बहुत मेल खाती है। ज्ञातव्य है कि योगासन बिष्णु की मूर्तियाँ दक्षिण भारत के मंदिर शिलापटों

---

23. राव गोपीनाथ ए०हि०आ० भाग 1 सं० 1 प्लेट 3 पृष्ठ 220

24. वही प्लेट 58 पृष्ठ 221

25. दृष्टव्य राव गोपीनाथ एलीमेण्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफी वाल्यूम 1 भाग 1 पृष्ठ 85–86

के अतिरिक्त इलाहाबाद में गढ़वा तथा मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित विष्णु मूर्ति से पर्याप्त साम्य रखती है।

गोपीनाथ राव ने चित्तौड़गढ़ से प्राप्त मूर्ति को सिद्धार्थसंहिता में वर्णित बिष्णु प्रतिमालक्षण से बहुत कुछ प्रभावित बताया है।[25] बिष्णु के बुद्धावतार की दूसरी उल्लेखनीय मूर्ति हिमांचल प्रदेश में स्थित चम्बा से प्राप्त हुई है। जो भूरसिंह संग्रहालय चम्बा में सुरक्षित है। यह 17वीं सदी की मूर्ति है जो दशावतार शिलापट्ट पर अंकित मिलती है। इसमें बुद्ध को द्विभुज रूप में एक उच्चपीठ पर ध्यानमुद्रा में बैठा हुआ दिखाया गया है। उनका बायाँ हाथ नीचे की ओर भूमिस्पर्श मुद्रा में झुका हुआ तथा दायाँ हाथ योगमुद्रा में अंकित है। सिर के पीछे कमलाकृति प्रभामण्डल है। तथा बुद्ध के वक्ष पर बिष्णु का लांछन श्रीवत्स अंकित है। इस प्रतिमा में बिष्णु को कुण्डल, केयूर तथा हार से विभूषित किया गया है।

विष्णु के बुद्धावतार की स्वतन्त्र मूर्तियाँ बहुत कम मिल सकी हैं परन्तु 10वीं सदी ई० तथा उसके बाद अंकित दशावतार शिलापट्टों पर बुद्ध की मूर्ति प्रायः अंकित की गई है। इन पट्टों पर अंकित बुद्ध को रूपमंडन में प्रदत्त विवरण के अनुसार ध्यानमुद्रा में स्थानक अवस्था में तथा एक हाथ को वरद[26] अभय[27] अथवा भूमिस्पर्श[28] मुद्रा में देखा जा सकता है।

---

26. द्रष्टव्य मुकर्जी आर० के० द कास्मिक आर्ट आफ इण्डिया चित्रफलक 27

27. द्रष्टव्य अवस्थी रामाश्रय - खजुराहो की देव प्रतिमाएँ पृष्ठ 98 चित्र 31

28. वही पृष्ठ 68 चित्र 17 तथा पृष्ठ 98 चित्र 30

अध्याय 11

कल्कि अवतार

कल्कि अवतार का सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत के वनपर्व[1] में मिलता है। महाभारत के अतिरिक्त अन्य कतिपय पुराणों यथा हरिवंश पुराण[2] तथा ब्रह्मपुराण में उल्लिखित है कि संभल या शम्भल नामक स्थान पर कल्कि का जन्म होगा। हरिवंश पुराण में एक स्थान पर यह कहा गया है कि सम्भल प्रदेश गंगा और यमुना के बीच में होगा जहाँ पर कल्कि के असंख्य अनुयायी होंगें एवं कल्कि इसी स्थान को अपना कर्मक्षेत्र बनाऐंगें। श्रीमद्‌भागवत् में यह उल्लेख मिलता है कि जब समस्त राजा प्रजा को लूटने एवं उन पर अत्याचार करने लगेंगे, सर्वत्र धर्म का विनाश होने लगेगा, याज्ञिक अनुष्ठान बंद हो जायेगें, कभी शंखादि की ध्वनि सुनाई नही देगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अत्याचारी, दुराचारी एवं पाखण्डी तथा वाह्याडम्बर में लिप्त हो जायेगें और शूद्र राजा बनकर

---

1. महाभारत वनपर्व 190-91– कल्कि विष्णुयशा नाम द्विजः काल प्रचोदितः
   उत्पत्स्यते महावीर्यो महा बुद्धि पराक्रम।
   सम्भूतः सम्भलग्रामे ब्राह्मणा बसथे शुभे।
   (महात्मा वृत्त सम्पन्नः प्रजानां हितकृन्नृप)
   मनसा तस्या सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च।।''
2. हरिवंश पुराण 1/41
3. ब्रह्मपुराण अध्याय 104

उन पर राज करेगें,[4] तत्समय विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर में भगवान विष्णु कल्कि रुप में अवतरित होगें।[5] महाभारत के शान्तिपर्व[6] तथा मत्स्यपुराण[7] में भी विष्णुयश ब्राह्मण को ही कल्कि के पिता के रूप में मान्यता दी गयी है। महाभारत में अन्यत्र भी सभापर्व एवं वनपर्व में कल्कि का ही परिवर्तित नाम ''विष्णुयशस्'' उल्लिखित है।

हरिवंश पुराण में याज्ञवल्क को विष्णु का पुरोहित बताया गया है। इसी तरह मत्स्य पुराण में याज्ञवल्क के साथ परायर्श को भी बिष्णु के पुरोहित के रूप में उल्लिखित किया गया है। मत्स्य पुराण तथा महाभारत के अनुसार कल्कि व्राह्मण के घर में जन्म लेकर, अनेक आयुधों से युक्त होकर, धर्म का विनाश

---

4. श्रीमद्भागवत 2.7.37-38 देवद्विषांनिगमवर्त्मनि निष्ठितानां
पूर्भिर्मयेन विहिताभिर दृश्यततूर्भिः।
लोकान न्घतां मतिविमोहमतिप्रलोभं
वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम्।।
यर्ह्यालयेप्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः
पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः
स्वाहास्वधावषाडिति स्म गिरो न यत्र।
शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान युगान्ते।।''

5. वही 1.3.25

6. महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 348

7. मत्स्य पुराण 47.248-49 कल्की तु विष्णुयशसः पराशर्यःसरः।
दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरः सरः।।
सर्वांश्च भूतान स्तिमितान पाषण्डाश्चैव सर्वसः
प्रगृहीता युधैविप्रैर्वृतः शतसहस्त्रशः।।

करने वाले दुष्ट अत्याचारियों का वध करेंगे तथा समस्त दुष्टों का संहार करने के उपरांत एक नये युग कृतयुग को संस्थापित करेगें। उक्त ग्रन्थों में कल्कि को हरे एवं भूरे रंग के समिश्रण वाला तथा घोड़े पर सवार होकर पृथ्वी के भार को हरने का कार्य करने वाला बताया गया है। उक्त ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि कल्कि की सहायता में ब्राह्मण भी घोड़े पर सवार होकर उनके कार्य में सहायक होंगे। हरिवंश[8] तथा मत्स्य पुराण[9] में एक महत्वपूर्ण सूचना यह भी प्रदान की गयी है कि भगवान कल्कि के द्वारा नष्ट किये जाने वाले अधार्मिक तथा दसगुण कौन होंगे। मत्स्य पुराण[11] में विष्णु के दसवें अवतार कल्कि को भाब्यसंभूत बताया गया है। (दसमोभाव्य सम्भूतो) हरिवंश में उद्धत इस शब्द की व्याख्या टीकाकार नीलकंठ ने इस प्रकार किया है (भव्यैः क्षणिकवादिभिः सह सम्पन्नः वादे युद्धे च संगतः इति भाव्य सम्पन्नः) प्रस्तुत व्याख्या के अनुसार कल्कि ने जिन्हें विचार तथा युद्ध दोनों से पराजित किया था वे विरोधी गण क्षणिकवादी अर्थात् बौद्ध थे। भागवत पुराण[13] में इस बात का निर्देश किया गया है कि भगवान कल्कि का अवतार वैदिक धर्म की स्थापना के लिए तथा

---

8. हरिवंश पुराण 1.41.65

9. मत्स्यपुराण 47.249 सर्वांश्च भूतान स्तिमितान पाषण्डांश्चैव सर्वसः
   प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्त्रशः।।''

10. वही 47.251-52– अष्टाविंशे स्थितः कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः।
    शूद्रान संशोधयित्वा तु समुद्रान्तंच वै स्वयम्।।
    प्रवृत्त चक्रो बलवान संहारं तु करिष्यति।
    उत्सादयित्वा बृषलान प्रायशस्तान धार्मिकान्।।

11. वही 47.248

12. हरिवंश 1.41.65

13. भागवद पुराण 2.7.38

अवैदिक धर्म के विध्वंस के लिए हुआ था–

''यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः

पाखडिनो द्विजजना बृषला नृदेवाः।

स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो नयत्र

शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान युगान्ते।।''

विष्णु पुराण[14] में कलियुग के अंत में कल्कि के रूप में भगवान विष्णु के अवतार का उल्लेख मिलता है। अन्यत्र इस पुराण में कलियुग को पाप कर्म से मुक्त करने के लिए विष्णु के कल्कि अवतार का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।[15] अग्नि पुराण[16] में कल्कि अवतार को शीलरहित तथा वेद विरुद्ध आचरण करने वाले तथा शोषण करने वाले मनुष्यों के विनाश के लिए कल्कि अवतार होगा। उसमें यह भी कहा गया है कि याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे। इसी प्रकार गरुण पुराण[17] में भगवान विष्णु के कल्कि अवतार का बहुत संक्षेप

---

14. विष्णु पुराण 3.2.59– वेदांस्तु द्वापरे व्यस्य कलेरन्ते पुनर्हरिः।

कल्कि स्वरुपी दुर्वृत्तान्मार्गे स्थापयति प्रभुः।।

15. वही 4.24.98– श्रौते स्मार्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेपजगत्सृष्टुश्चराचरगुरोरादिमध्यान्तरहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरुपिणौ भगवतो वासुदेवस्यांशश्शम्बल ग्राम प्रधान ब्राह्मणस्य विष्णुयशसो गृहेष्टगुर्णार्द्धि समवितः कल्किरुपी जगत्यत्राव वीर्यसकलम्लेच्छदस्युदुष्टाचरण चेतसामशेषाणाम परिच्छिन्न शक्ति माहात्म्यः क्षयं करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलमेव संस्थापयिष्यति।।

16. अग्नि पुराण– 49.6-8– कल्कि विष्णुयशः पुत्रो याज्ञवल्क्य पुरोहितः।

उत्सादियिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्र कृतायुधः।।

कल्किरुपं परित्यज्य हरिः स्वर्ग गमिष्यति

तथा कृतयुगं नाम पुण्यवत् सम्भविष्यति।।

17. गरुण पुराण अध्याय 149

में उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि जव कलियुग का समापन होने लगेगा तव भगवान विष्णु पृथ्वी पर प्रकट होगें तथा धर्म की स्थापना करेगें।

अग्नि पुराण में भगवान कल्कि को दो रुपों में प्रतिमायित करने का विधान दिया गया है–(1) म्लेच्छों के संहार में तत्पर धनुष पर बाण चढ़ाये हुए कल्कि का मूर्तन।

(2) अश्व पर सवार अपने चारों हांथों में खड्ग, शंख, चक्र तथा बाण लिए हुए भगवान कल्कि का रुपायन।

इस प्रकार अग्नि पुराण में कल्कि को द्विभुजी तथा चतुर्भुजी दोनों प्रकार से मूर्तित करने का निर्देश देता है जबकि विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कल्कि प्रतिमा को द्विभुजी बनाने का विधान दिया गया है।[18]

महाभारत एवं पुराणों की भांति शिल्पग्रन्थ अपराजित पृच्छा, रुपमंडन तथा देवतामूर्ति प्रकरण इत्यादि में कल्कि को विष्णु का दसवाँ अवतार बताया गया है। अपराजित पृच्छा[19] में भगवान कल्कि को केवल अश्वारुढ़ बताया गया है। रूपमंडन[20] में भगवान कल्कि को अश्व पर सवार तथा आयुध के रूप में खड्ग को धारण किए हुए वर्णित किया गया है। देवतामूर्ति प्रकरण[21] में भी

---

18. विष्णु धर्मोत्तर पुराण– 3.85.71

खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो ह्यारुढो महाबलः।

म्लेच्छोच्छेदकरः कल्कि द्विभुजः परिकीर्तितः।।

19. अपराजित पृच्छा 29.20

20. रुपमंडन 2.28– ''कल्कीसखड्गोश्वारुढ़ो हरेखतरा इमे''

21. देवतामूर्ति प्रकरण 5.60

कल्कि को खड्गधारी कहा गया है। उपर्युक्त शास्त्रों में भगवान कल्कि को द्विभुजी रूप में रुपायित करने का विधान दिया गया है। इसी प्रकार का वर्णन स्कन्द पुराण[22] में भी मिलता है। मध्यकालीन प्रस्तर फलकों पर कल्कि को अश्वारोही तथा खड्गधारी रूप में उकेरा गया है। कल्कि अवतार की एक महत्वपूर्ण, जम्मू कश्मीर प्रान्त के देवसर नामक स्थान से प्राप्त हुई है जो दसवीं सदी ई० पू० की है यह प्रतिमा सम्प्रति एस० पी० एस० संग्रहालय श्रीनगर में सुरक्षित है इसमें देवता को अश्वारोही रुप में अंकित किया गया है। मध्यकालीन दशावतार पट्टों पर विष्णु के कल्कि अवतार का अंकन प्रायसः देखने को मिलता है ऐसा ही एक पट्ट म० प्र० के मुरैना जनपद के पढ़ावली नामक स्थान पर निर्मित दसवीं सदी के एक शिवमंदिर से प्राप्त हुआ है। इसमें विष्णु के दसवें अवतार के रूप में खड्गधारी अश्वारुढ़ कल्कि को अंकित किया गया है। इसी प्रकार मध्ययुगीन विष्णु की प्रभावलियों में प्रदर्शित विष्णु के अवतारों में भी उनके कल्कि रूप को अश्वारुढ़ मुद्रा में तथा कभी-कभी हांथ में खड्ग लिये अश्वारुढ़ स्थिति में अंकित किया गया है।

---

22. स्कन्द पुराण 2.9.27-28

उपसंहार

अवतार शब्द अव उपसर्ग पूर्वक त्रि धातु में घञ्य प्रत्यय के योग से बनता है। जिसका तात्पर्य है किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया अथवा स्थान। यह तो सामान्य अर्थ हुआ परन्तु भारतीय आध्यात्मिक वांङ्मय में इसका एक विशिष्ट अर्थ है किसी महान शक्ति सम्पन्न जीव, पुरुष, लोकोत्तर व्यक्तित्व अथवा ईश्वर का ऊपर से नीचे के लोक में अवतरण अथवा लोककल्याणार्थ रूप ग्रहण करना। पुराणों में अवतार शब्द का एक पर्यायवाची आविर्भाव भी मिलता है। इस प्रकार आविर्भाव अवतार शब्द के भीतर का भाव प्रस्तुत करता है। बिष्णु पुराण में प्रह्लाद की रक्षा के लिए बिष्णु का नृसिंह के रूप में आविर्भाव अवतार माना गया है।[1] अवतार का उल्लेख वैदिक, जैन, बौद्ध, पांचरात्र आगम, पौराणिक वाङ्मय तथा प्राचीन संस्कृति महाकाव्यों आदि में किया गया है। पांचरात्र आगम में वर्णित व्यूहवाद अथवा विभववाद अवतार का ही स्मरण दिलाता है। यद्यपि अवतार का प्रयोग प्राचीन भारतीय साहित्य में सामान्य अर्थों में भी हुआ है परन्तु त्रिदेवों में बिष्णु के अवतारों का उल्लेख प्राचीन भारतीय वाङ्मय में बहुत गम्भीर रूप से वर्णित किया गया है। बिष्णु का इन्द्र के साथ सम्बन्ध माया के द्वारा विभिन्न कार्यों की साधना युगानुरूप व्यवस्था पद्यति को लोककल्याणार्थ समुचित रूप प्रदान करने तथा लोककल्याण के हेतु समय-समय पर बिष्णु के अवतारों का अनुरेखन प्राचीन भारतीय वाङ्मय तथा कला का मुख्य विकास रहा है। पौराणिककाल व्यवस्था में कृतयुग का काल 4000 वर्ष त्रेता का काल 3000 वर्ष द्वापर का 2000 वर्ष तथा कलियुग का 10000 वर्ष माना जाता है। इन10000 वर्षों के काल मान में प्रत्येक 1000 वर्ष के अन्तर पर बिष्णु के एक अवतार लेने की परिकल्पना पौराणिक वाङ्मय

---

1. विण्णु पुराण– 1.20.14 तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः।

आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः।।

को अभीष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार कृतयुग में बिष्णु के 4 अवतार त्रेतायुग में तीन द्वापर में दो तथा कलियुग में एक अवतार का परिगणन किया जा सकता है।

श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में अर्जुन को अपने अवतार ग्रहण करने के मूल प्रयोजनों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सत् मार्ग में स्थित साधुजनों का परित्राण अथवा रक्षा करने के लिए असत् मार्ग पर चलकर पापकर्म में लिप्त दुष्टों का विनाश करने के लिए, सम्पूर्ण व्यवस्था को धारण करने वाले धर्म की अच्छी प्रकार से स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतार ग्रहण करके प्रकट हुआ करता हूँ।[2] भगवद्गीता में ही यह भी कहा गया है कि ईश्वर का मायामय जन्म और साधुरक्षण आदि कर्म दिव्य अथवा अलौकिक हैं इस बात को जानलेना ही अवतारवाद को समझना है।[3] जैकोबी ने अवतारवाद को एक महत्वपूर्ण वैष्णवीय सिद्धान्त मानते हुए नारायण एवं वासुदेव कृष्ण के साथ एकीकरण से उसके विकास को निरूपित करने का प्रयास किया[4] अवतारवाद सिद्धान्त का मूल वीज को अधिकांश विद्वान ऋग्वेदोक्त कतिपय उद्धरणों[5] से जोड़ते हैं। ऋग्वेद में बिष्णु के द्वारा एक दूसरा रूप धारण करने का उल्लेख किया गया है। इस भावना को निरुक्तकार[6] ने भी प्रकट करने का प्रयास किया है कि कुछ ऐसे वैदिक देवता हैं जिनके सगुण तथा निर्गुण दोनों रूप वर्णित हैं। इनमें बिष्णु का

2. भगवद्गीता– 4.8 परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

3. वही– 4.9 जन्म कर्म च में दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

4. जैकोबी इन्साइक्लोपीडिया रीलिजिएन एन्ड इथिक्स जिल्द 7 पृष्ठ 195

5. ऋग्वेद– 7.100.6

6. निरुक्त– 7.6–7

व्यक्तित्व विशेष उल्लेखनीय है जो क्रमशः देवताओं में अपनी प्रधानता स्थापित करते हुए पौराणिक वाङ्मय के लेखन एवं संकलन काल तक नानारूपों में अवतार लेते रहे हैं। गीता की भांति पुराणों में भी आख्यात है कि जब संसार पर किसी प्रकार का घोर संकट आता है, पृथ्वी दुष्टजनों के अत्याचारों से पीड़ित होती है तब विश्वरूप सर्वात्मा संसार को कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए तथा लोगों के हित के लिए अपने शुद्ध सत्वांश से अवतरित होकर पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करते हैं[7] वे योगमाया का आश्रय लेते हैं तथा लीला से अवतार धारण करते हैं। अपने को अवतार विशेष के आवरण में छिपाये हुए उसी के समान प्रतीत होते हैं।[8]

अवतार की भावना संसार के सभी धर्मों में पायी जाती है। सभी धार्मिक सुधारक किसी न किसी दैवी शक्ति का अवतार माने गए हैं। शंकराचार्य को लोग शिव का अवतार तथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस को ईश्वर का अवतार जैसे अनेक उदाहरण इसके समर्थन में दिए जा सकते हैं यद्यपि भारतीय धर्म चिंतन में अनेक देवों के अवतार का उल्लेख मिलता है। किन्तु उन सब में बिष्णु के अवतार सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं सृष्टि के पालनकर्ता के रूप में बिष्णु पृथ्वी पर दैवी तथा दानवी इन दो रूपों में अवतरित हुए। ऋग्वेद में भी बिष्णु को क्रियात्मक देवता कहा गया है। इसी से अवतारवाद परिकल्पन में बिष्णु का ही प्राधान्य मिलता है।

भागवत पुराण में देवता, ऋषि, मनुष्य आदि सबको ही बिष्णु का अंश बताते हुए उनके असंख्य, अवतारों की चर्चा की गयी है। किन्तु पृथ्वी का भार उतारने के लिए युग-युग में उनके कुछ विशेष अवतार हुए हैं– जिन्हें भारतीय

---

7. विष्णुपुराण 5.1.32– सर्वथैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मयः

   सत्वांशेनावतीर्योऽयां धर्मस्य कुरुते स्थितम्।।

8. श्रीमद्भागवत् पुराण– 11.20

मूर्तिकला में रूपायित किया गया है। बिष्णु के अवतार तीन प्रकार के कहे गए हैं–

(1) पूर्ण

(2) आवेश

(3) अंश

जो अवतार एक विशेष प्रयोजन के लिए सोलह कलाओं से युक्त होता है। उसे बिष्णु का पूर्णावतार माना जाता है। वासुदेवकृष्ण को पूर्णावतार कहा जा सकता है। आवेशावतार का सर्वोत्तम उदाहरण भगवान बिष्णु का नृसिंहावतार है। इसी प्रकार बिष्णु के अंशावतार अनेक हुए हैं। दशावतार रूपों में राम, बलराम, परशुराम, कल्कि, बुद्ध आदि अवतारों को अंशावतार प्रतिपादित किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपसंहार को छोड़कर कुल ग्यारह अध्याय रखे गये हैं। प्रथम अध्याय में अवतारवाद की अवधारणा तथा बिष्णु के दशावतार परिकल्पन पर गहन समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। शेष 10 अध्यायों में प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला में अनुरेखित बिष्णु के दशावतार रूपों को समीक्षित करने का प्रयास किया गया है।

अवतारवाद आज जिस रूप में हमारे सामने है उसका अंतिम स्वरूप 10वीं, 11 वीं शताब्दी ई० तक निर्धारित हुआ। यह समय भारत के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह तत्कालीन भारत में दो युगों के बीच संक्रमण का युग माना जाता है। इस समय भारतीय समाज अनेकानेक जातियों उपजातियों में बँटा हुआ था और परस्पर बँटता जा रहा था शंकराचार्य अपने अद्वैतवादी दर्शन और देश के चार सिरों पर चार धामों की स्थापना कर भारत राष्ट्र एवं जन के एकीकरण के लिए प्रयत्नशील थे। बौद्ध धर्म जो अब उत्कर्ष के बाद

कई भागों में विभाजित हो चुका था और विदेशों की भूमि पर अपनी विजय पताका फहरा रहा था हिन्दू धर्म के लिए बराबर अड़ंगा खड़ा कर रहा था। हिन्दू धर्म का तथाकथित नीचा तबका जिसे 'शूद्र' और 'अंत्यज' नाम से अभिहित किया जाता था हिन्दू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म एवं नये परिचित इस्लाम धर्म की तरफ उन्मुख हो रहा था। इस विषय स्थिति में भारतीय विद्वानों ने पुराणों के माध्यम से अवतारवाद की प्रतिस्थापना कर जनमानस में हिन्दू धर्म के लचीले स्वरूप की तरफ ध्यान आकृष्ट किया एवं हिन्दू धर्म के एक बड़े भाग को धर्मांतरित होने से रोकने में सफलता प्राप्त की।

दशावतार की परिकल्पना में नवां एवं दसवां अवतार सामयिक दृष्टि से (और वैचारिक दृष्टि से भी) पहले के अन्य अवतारों से अपनी विशिष्ट महत्ता रखते हैं। नवां अवतार जिसमें बुद्ध को विष्णु का ही अंश (अवतार) घोषित किया गया हिन्दू धर्म के समन्वयकारी पहलू की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। अभी तक ऐसा नहीं हुआ था कि अपने से इतर धर्म को अपने में समाविष्ट करने के लिए उसके प्रतिपादक को अपने धर्म के प्रतिपादकों के साथ जोड़ा जाए।

हिन्दू धर्म में (स्वयं में दो संप्रदायों को जोड़ने की) यद्यपि यह प्रक्रिया लगभग 5000 वर्ष पूर्व ही दिखायी पड़ती है। जब वैष्णव संप्रदाय के साथ शैव संप्रदाय को जोड़ने की व्यवस्था की गयी और हिन्दू धर्म के नये स्वरूप 'हरिहर' की परिकल्पना हमारे सामने दिखायी पड़ती है। हिन्दू धर्म के ही एक अन्य संप्रदाय 'शाक्त संप्रदाय' (या शक्ति संप्रदाय) को भी जोड़ने की कोशिश अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना में साकार होती है दिखाई पड़ती है। यह उस प्रसंग से भी उद्भासित होता है। जब दैत्यों का संहार करने के लिए देवी दुर्गा को विभिन्न देव अपनी शक्ति का एक अंश प्रदान करते हैं। और अंततः विभिन्न शक्तियों से सुसज्जित देवी आसुरी शक्तियों का विनाश कर तादात्म्य स्थापित करती हैं। नयी परिस्थितियों में बुद्ध को विष्णु का अवतार घोषित कर भारतीय

चिन्तकों ने न केवल बौद्ध धर्म का हिंदूकरण ही किया अपितु उन तबकों के लिए भी एक उम्मीद की किरण जगायी जो तथाकथित सवर्णवाद ब्राह्मणवाद की व्यवस्था से पीड़ित एवं व्यथित थे। बौद्ध धर्म को अपने में समाहित कर हिंदू धर्म ने उस लचीलेपन का भी परिचय दिया जो किसी भी धर्म को समय के साथ चलने के लिए आवश्यक माने जाते हैं। हिंदू धर्म ने एक तरह से अपने में व्याप्त कुरीतियों को छोड़ने एवं बौद्ध धर्म की प्रगतिशील बातों को स्वीकार करने की अपनी प्रत्यक्ष स्वीकृति दे दी।

दशावतार के क्रम में अंतिम अवतार कल्कि अवतार है। अपने-आप में यह एक विशिष्ट अवतार है जिसके बारे में विभिन्न पुराणों में उल्लेख मिलता है। विशिष्टता इस मायने में कि यह अभी भविष्य में होना है। परिस्थितियाँ कमोवेश वहीं होंगी जिनका जिक्र पहले नौ अवतारों के संदर्भ में मिलता है। विश्व में जब अत्याचार, अनाचार बढ़ जायेगा और धरती पाप के बोझ से दबने लगेगी उसी समय जन-जन की उम्मीदों को एक बार फिर साकार करने के लिए भगवान विष्णु कल्कि का अवतार धारण करेंगे और पृथ्वी को, यहाँ के जनमानस को अत्याचार, अनाचार एवं पापों से मुक्त करायेंगे। संभवतः यह विश्व की दार्शनिक विचारधाराओं में एक अकेली परिकल्पना है जिसे भविष्य में अभी साकार होना है। इस तरह आज के वैज्ञानिक युग में भौतिक संसाधनों से लिप्त लेकिन मानसिक रूप से अशांत मानव के लिए भी अभी उम्मीदें हैं कि सब कुछ ऐसा नहीं रहेगा। अंत में जीत होगी सत्य की और झूठ चाहें कितना भी समसामयिक रूप से सशक्त क्यों न दिखता हो अंततः पराभूत होगा।

अवतारवाद का एक अन्य पक्ष जो इसे विशिष्ट बनाता वह है इसका लोक-जीवन से जुड़ाव। किसी भी धर्म का सतत अस्तित्व उसके अनुयायियों से ही संभव होता है न कि प्रतिपादकों से। हिंदू विचारक इस धारणा से भलीभाँति अवगत थे कि लोक से इतर धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है कोई महत्व नहीं है। हिन्दू धर्म की अवतारवादी धारणा में सर्वशक्तिमान सत्ता को

लोक के साथ जोड़ा। ये अवतार लौकिक रूपों में ही थे। जैसा कि हम स्वयं अपने जीवन में देखते हैं। यह लौकिक से अलौकिक को जोड़ने का स्तुत्य प्रयास था। मत्स्य, कूर्म वाराह, मनुष्य का आदिम रूप की कल्पना नरसिंह और फिर साक्षात् मानव रूप में ईश्वर के अस्तित्व की कल्पना। यह एक तरह से समाज को नैतिक उदाहरण भी था कि सद्कर्मों से जुड़ा व्यक्ति या मानव मात्र की भलाई के लिए जूझने वाला व्यक्ति समाज द्वारा बाद में ईश्वर रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार अवतारवाद समाज को नैतिक मार्ग पर चलने के लिए रास्ता उपलब्ध करने वाली एक अनोखी विचारधारा थी जिसके द्वारा मानव समुदाय के अन्तस में देवत्व बोध और भगवन्ता की अनुभूति जाग्रत की गयी जिससे लोक वृत्ति धर्म संचालित हुई।

सृष्टि सतत विकास की प्रक्रिया का ही परिणाम है। मानव का विकास करोड़ों वर्षों के विकास की ही गाथा है। अमीबा को उत्पत्ति से लेकर सृष्टि के श्रेष्ठतम प्राणी मनुष्य जाति के उद्भव तक का इतिहास सतत जैव विकास की परिणति है। भारतीय मनीषियों ने मानव विकास के परिणाम क्रम में आयी हुई अंतर्दशाओं को अवतारवाद की परिकल्पना के माध्यम से स्पष्ट किया है। पृथ्वी पर सबसे पहले जीव की उत्पत्ति जल में हुई। इस प्रकार उत्पन्न प्राणि समुदाय केवल समुद्री जल में ही विचरण कर सकता था। इसे मत्स्य दशा का नाम दिया गया जो अवतारों के क्रम में पहला अवतार स्वीकार किया जाता है। जीव विकास क्रम की दूसरी प्रक्रिया तब शुरू हुई जब कुछ जलीय जीव समुद्र जल से धरातल पर आना शुरू हुए इस प्रकार के जीवों के समुद्र तट पर जी सकने की दशा को 'कूर्म दशा' कहा गया। अवतारवाद की दूसरी श्रृंखला कूर्म अवतार के रूप में ही अभिहित है। जीवों के विकास की तीसरी अवस्था रेंगने और उड़ने वाले जीवों यथा सर्प, पक्षी एवं अन्य पशुओं के रूप में सामने आयी। अवतारवाद की परिकल्पना में इसे 'वराह दशा' अर्थात् वराह अवतार का नाम दिया गया। पशुओं (बंदर) से मानव के विकास की प्रक्रिया जैव विकास की

चौथी अवस्था मानी जाती है। भारतीय मनीषियों ने इसे अवतारवाद की श्रृंखला में नृसिंह अवतार का नाम दिया। इस अवतार के साथ ही मानव से अवतारों का क्रम जुड़ने लगता है। आदिमानव के आविर्भाव की दशा को 'वामन अवतार' की संज्ञा दी गयी। अवतारों की परम्परा में वामन अवतार पाँचवा अवतार है। इसके बाद की कहानी मानव के सभ्य बनने की कहानी है। लगातार प्रयोगों और अपने अनुभवों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करते मानव प्रगति पथ पर बढ़ा। शुरू में वह पूरी तरह से जंगल पर ही निर्भर रहा। धीरे-धीरे उसने जंगल साफ करने शुरू किए। अवतारवाद की परम्परा ने मानव की इस अवस्था को परशुराम अवतार के साथ जोड़ा जो छठां अवतार है। मनुष्य ने अपने विकास क्रम की दूसरी अवस्था में पशुपालन शुरू किया। इस अवस्था का द्योतन अवतारवाद में राम के अवतार में किया गया है। पशुपालन के पश्चात् मानव ने शुरुआत की कृषि की। अवतारों की परिकल्पना में इस अवस्था को बलराम अवतार (कहीं-कहीं कृष्ण अवतार) के साथ जोड़ा गया। 'कृषि अवस्था' के बाद मनुष्य परस्पर प्रगति पथ पर अपने कदम बढ़ाता रहा। अब खाने-पीने से इतर वह आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से सोच भी सकता था। अवतारों की परम्परा में नवां अवतार जिसे बुद्ध अवतार की संज्ञा दी जाती है मानव विकास प्रक्रिया की इसी दशा का द्योतक है। दसवां अवतार कल्कि अवतार भविष्य का अवतार है। कहना न होगा कि यह अवतार भी अपने समय और परिवेश से जुड़ा हुआ ही होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि अवतारवाद की भारतीय मनीषियों की सोच केवल कपोल कल्पना ही नहीं थी अपितु इसका एक वैज्ञानिक आधार भी था जिसे उन्होंने अपने वर्णनों में कल्पनात्मक रूप से जनता के सामने प्रस्तुत किया।

साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि विष्णु के सभी अवतारों की पूजा-आराधना पूरे भारत में किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है। तमिल प्रदेश में आलवारों ने वामन और वराह को अपना उपास्य देव

माना तथा समाज में इनकी पूजा करने की परंपरा स्थापित की। राम और कृष्ण जैसे अवतार तो न केवल भारतीय जनमानस में अपितु देशज सीमाओं को तोड़कर अन्य देशों में भी अत्यंत लोकप्रिय हुए। इनके चरित्र को आधार वनाकर लिखे गये ग्रंथ रामायण एवं महाभारत व भागवद्पुराण भारत के हरेक क्षेत्र में अत्यंत श्रद्धा एवं विश्वास के साथ आज भी पढ़ा जाता है अन्य अवतारों यथा मत्स्य, नृसिंह, वराह और कूर्म भी जनता के बीच प्रतिष्ठित हुए जिनके प्रमाण देश भर में बिखरे हुए तमाम मंदिर आज भी मिल जाते हैं। यद्यपि ये अवतार अन्य अवतारों की अपेक्षा उतने लोकप्रिय नहीं हुए।

भारत क्षेत्रफल में एक विशाल देश रहा है। यहाँ विविध जातियों एवं भाषाओं के लोग अलग-अलग क्षेत्रों में निवास करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु के अवतारों का क्रम इन अलग-अलग क्षेत्रों में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुआ होगा। प्राचीनकाल में यह परम्परा आम प्रचलन में थी जब मनुष्य ईश्वर की कल्पना मनुष्य रूप से इतर अन्य जीव-जन्तुओं में भी करता था। दशावतार के प्रारंभिक अवतार जो जीव-जंतुओं से जुड़े हुए हैं इसी प्रक्रिया के विकास का अंग संभव हो सकते हैं बाद में चलकर पुराणकारों ने एक समग्र राष्ट्रीयता को बोध जागृत करने के उद्देश्य से इन सभी पूजा प्रणालियों से संबंधित देवों को जोड़कर इन्हें सर्वशक्तिमान सत्ता भगवान विष्णु का अवतार घोषित किया होगा। कहना न होगा कि वे अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल रहे और तात्कालिक समय में इतने बड़े क्षेत्र की जनता को एक-दूसरे से जोड़ने का माध्यम धर्म के अलावा हो भी क्या सकता था। धर्म तो भारतीय संस्कृति का मूल तत्व ही है या यूँ कहें कि उसकी पहचान ही है।

भारतीय संस्कृति की एक विशेषता स्वीकार की जाती है सातत्यता। दशावतार में भी यह सातत्यता मिलती है। एक ही ईश्वर विष्णु के अलग-अलग समयों में दस अलग-अलग अवतारों की कल्पना और वह भी तब जब उनकी जरूरत सामान्य जनता महसूस करे यह एक विशिष्ट उपलब्धि है। यही नहीं

भविष्य के लिए भी उम्मीदें हैं। फिर इस वातावरण में निराशा की बात ही कहाँ उठती है। विष्णु के दसों अवतारों के क्रम में मिलती यह सातत्यता भारतीय संस्कृति को पूर्णता ही प्रदान करती है।

भिन्न-भिन्न अवतारों में भिन्न-भिन्न जीव-जंतुओं और संस्कृतियों को अपनाकर प्रायः सभी को एक जैसा महत्व देने की भारतीय मनीषियों की कोशिश दिखायी पड़ती है। इसके मूल में उपनिषदों का निर्गुण ब्रह्म का दर्शन भी दिखाई पड़ता है ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। वह एक तुच्छ से जीव मत्स्य से लेकर सृष्टि की अद्‌भुत रचना मानव में एक जैसे ही विद्यमान है। ऐसे में सभी का यह कर्त्तव्य है कि इन जीवधारियों की रक्षा की जाय। आज वैज्ञानिकों ने भी अपने नवीनतम शोधों द्वारा यह तथ्य सुस्थापित कर दिया है कि प्रकृति की प्रवहमानता उसकी निरन्तरता बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि उसके सभी अभिकरण सुरक्षित रहें। प्रकृति में सभी जीवों की अपनी विशिष्ट भूमिका है जिसे दूसरा अन्य कोई जीव पूरा नहीं कर सकता। किसी जीव के प्रजाति के नष्ट होने की दशा में पूरा प्राकृतिक संतुलन ही गड़बड़ हो जाता है ऐसे में इस संतुलन को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि सभी जीवों की सुरक्षा की जाय। सभी जीवों में दैवत्व के आरोपण से यह कार्य भारतीय मनीषियों ने सहजता से कर डाला। इस प्रकार जैव सुरक्षा के अर्थ में भी दशावतार की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

(अकारादि क्रम से)

प्राचीन भारतीय मूल ग्रन्थ

ग्रन्थ नाम	लेखक–प्रकाशक
ऋग्वेद भाग 1 से 4	संस्कृति संस्थान, बरेली द्वितीय संस्करण, 1962 (रि० वे०)
यजुर्वेद	संस्कृति संस्थान, बरेली प्रथम संस्करण 1960 (य० वे०)
अथर्वेद भाग 1	संस्कृति संस्थान, बरेली, द्वितीय संस्करण 1962
अथर्वेद भाग 2	संस्कृति संस्थान, बरेली द्वितीय संस्करण 1962
तैत्तिरीय संहिता	आनन्दाश्रम प्रेस पूना (तै० सं०)
मैत्रायणी संहिता	1923 (मै० सं०)
ऐतरेय ब्राह्मण	सायण व्याख्या सहित आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज पूना, 1930
शतपथ ब्राह्मण	अच्युत ग्रन्थमाला काशी
तैत्तिरीय ब्राह्मण	आनन्दाश्रम प्रेस पूना
ऐतरेय आरण्यक	आनन्दाश्रम प्रेस पूना
तैत्तिरीय आरण्यक	आनन्दाश्रम प्रेस पूना

बृहदारण्यकोपनिषद	सायण भाष्य सहित गीताप्रेस, गोरखपुर तृतीय संस्करण सं० 2014
छान्दोग्य उपनिषद	आनन्दाश्रम प्रेस पूना 1913
मुण्डकोपनिषद	आनन्दाश्रम प्रेस पूना 1913
बाल्मीकि रामायण	भाग 1 गीता प्रेस गोरखपुर सं० 2017
वाल्मीकि रामायण	भाग 2 गीता प्रेस गोरखपुर सं० 2017
महाभारत खण्ड 1 से 6	चित्रशाला प्रेस पूना 1929-1933
आपस्तम्ब धर्म सूत्र	(आ० ध० सू०)
विष्णु धर्म सूत्र	डा० जाली द्वारा संपादित।
मनुस्मृति	पं० तुलसीराम द्वारा सम्पादित दिल्ली
श्रीमदभागवतपुराण	प्रथम खण्ड गीताप्रेस गोरखपुर
श्रीमदभागवतपुराण	द्वितीय खण्ड गीता प्रेस गोरखपुर
अग्निपुराण	आनन्दाश्रम प्रेस पूना
गरुण पुराण	पंडित पुस्तकालय काशी 1963
कूर्मपुराण	बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
देवीभागवत्	बैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
मत्स्यपुराण	गुरुमण्डल सीरीज कलकत्ता 1954
मार्कण्डेयपुराण	वी० आई० सीरीज कलकत्ता
पद्म पुराण	प्रथम खण्ड प्रथम संस्करण कलकत्ता सं० 2013

पद्मपुराण	द्वितीयखण्ड प्र० संस्करण कलकत्ता सं० 2014
ब्रह्म पुराण	आनन्दाश्रम प्रेस पूना
ब्रह्माण्ड पुराण	वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
ब्रह्मवैर्वत पुराण	गुरुमण्डल सीरीज कलकत्ता 1954
लिंग पुराण	वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
वाराह पुराण	वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
वायुपुराण	आनन्दाश्रम प्रेस पूना
विष्णु पुराण	गीताप्रेस गोरखपुर
स्कन्दपुराण	वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई सन् 1906
वृहत् संहिता	बराह मिहिर
शिल्परत्न	श्री कुमार त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज 1922
अपराजित पृच्छा	(अ० प्र०)
रूपमण्डन	सूत्रधार मण्डन
याज्ञवल्क स्मृति	मिताक्षरा की व्याख्या सहित चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस 1930
अर्थशास्त्र	कौटिल्य प्रथम संस्करण महाभारत कार्यालय दिल्ली 1997 वि०
वामन पुराण	पंचानन तर्करत्न द्वारासम्पादित तथा वंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित कलकत्ता वि० सं० 1314

वामन पुराण — पाठ समीक्षात्मक संस्करण, सर्वभारतीय काशिराज न्यास, दुर्ग, रामनगर, वाराणसी, 1968

वायु पुराण — हरिनारायण आप्टे द्वारा प्रकाशित पूना 1905

विष्णुधर्मोत्तर पुराण — क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, वैंकटेश्वरप्रेस बम्बई

मनुस्मृति — कुल्लूकभट्ट भाष्य सहित, पंचातन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा सम्पादित वि० सं० 1320

मुद्राराक्षस — आर० के० ध्रुव द्वारा संपादित पूना 1930

शिवपुराण — बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित कलकत्ता वि० सं० 1314

श्री भाष्य — वासुदेव शास्त्री अभयंकर द्वारा सम्पादित बम्बई 1914

हरिवंश पुराण — नीलकण्ठ भाष्य के साथ पंचानन तर्करत्न द्वारा संपादित तथा बंगवासी प्रेस द्वारा प्रकाशित कलकत्ता वि० सं० 1312

रघुवंश (कालिदास) — चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी 1961

वृहत्संहिता (वराहमिहिर) — सरस्वती प्रेस कलकत्ता 1880

अष्टाध्यायी (पाणिनि) — चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी 1950

समरांगणसूत्रधार (भोजदेव)	त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज त्रिवेन्द्रम 1925
रूपमण्डन (सूत्रधारमंडन)	डा० बलरामश्रीवास्तव, मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी वि०सं० 2021
मानसोल्लास (सोमेश्वरदेव)	गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज बड़ौदा 1950
महाभाष्य (पतंजलि)	निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1912, ज्ञानमण्डल प्रेस काशी 1938-39

आधुनिक शोध ग्रन्थ

लेखक	प्रकाशक
कुमार स्वामी ए०के०	यक्षाज वाल्यूम 11–हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट लन्दन 1927
खोण्डा जे०	आस्पेक्टस ऑफ अर्ली इण्डियन विष्णुइज्म
कीथ, ए० वी० एवं मैकडॉनल	ए० ए० वैदिक इण्डेक्स
बुल्के फादर कामिल	रामकथा इलाहाबाद 1964
अग्रवाल वासुदेवशरण	प्राचीन भारतीय लोक धर्म अहमदाबाद 1964 भारतीय कला पृथ्वी प्रकाशन वाराणसी– 1977, भारत की मौलिक एकता इलाहाबाद वि० सं० 2011, मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद, वामन पुराण ए स्टडी–पृथ्वी प्रकासन वाराणसी 1964
उपाध्याय बलदेव	अग्निपुराण चौखम्बा वाराणसी भारतीय धर्म एवं दर्शन का अनुशीलन वाराणसी

1981, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त चौखम्बा वाराणसी

काणे पी० वी० — धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम-पंचम भाग हिन्दी समिति लखनऊ।

कीथ ए० बी० — द रिलिजिएन ऐण्ड फिलासफी ऑव द वेद ऐण्ड उपनिषद हार्वर्ड ओरिएण्टल सीरीज वाल्यूम 31, 32, 1925, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्लेचर

दुवे हरिनारायण — पुराण समीक्षा आई० आई० डी० आर० प्रकाशन इलाहाबाद

भण्डारकर डी० आर० — सम आस्पेक्टस ऑव एन्शियन्ट हिन्दू पालिटी द्वितीय संस्करण वाराणसी 1963

भण्डास्कर आर० जी० — वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टम स्ट्रांसवर्ग 1913, वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत

मिश्र इन्दुमती — प्रतिमा विज्ञान म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल द्वितीय संस्करण

हापकिंस इ० डब्लू — सोशल एण्ड मिलिटरी पोजीशन आफ द अलिंग कास्ट इन ऐन्सियन्ट इण्डिया द्वितीय संस्करण वाराणसी, 1972 द ग्रेट एपिक ऑव इण्डियन कलकत्ता 1978

त्रिपाठी गयाचरण — वैदिक देवता, भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली– कलकत्ता 1981

देसाई कल्पना यस– आइकोनोग्राफी आफ विष्णु नई दिल्ली 1973

अवस्थी रामाश्रय खजुराहो की देवप्रतिमाएं आगरा 1967

अभिलेखीय तथा स्मारकीय ग्रन्थ

कलानिधि

मरुभारती

राजस्थान भारती